हिन्दी की नयी कविता
और
तेलुगु की दिगंबर कविता
का
तुलनात्मक अध्ययन

❁

डॉ. श्री हेच. भास्कर मीनन, एम.ए.,पी हेच.डी

❁

सिन्धुजा प्रकाशन,
D. No. 5-3-22, दोम्मेटिवारि गली,
अमलापुरम - 533 201

हिन्दी की नयी कविता और तेलुगु की
दिगंबर कविता का तुलनात्मक अध्ययन

ले : डॉ.सी हेच. भास्कर मीनन

प्रथम संस्करण : 2000

मूल्य : रु. 200-00

प्रो : सी हेच.वी.वेणी, बि.एस.सी.,
सिन्धुजा प्रकाशन

मुद्रक :
आर लक्ष्मणराव
वीरभद्रा ग्राफिक्स
D. No. 57-8-34/1, गोकुल नगर,
परमेश्वरी थियेटर के सामने की गली, कंचरपालेम,.
विशाखपट्टणम - 530 008.
फोन : 727114

प्रो.जी. सुन्दर रेड्डी,
प्राक्तन हिन्दी आचार्य

Prof. G. Sundara Reddi, (Retd.)
Hon. D.Litt. (Andhra & Allahabad)
Former Head of The Dept.of Hindi, A.U.
Former Dean, Faculty of Oriental Learning, A.U.,
Former Syndicate Member, Andhara University
Former President, A.P. Hindi Academy, Hyderabad.

Phone : (0891) 573086
First Cross Road,
Vidyanagar
Visakhapatnam
Pin Code - 530 003
Andhra Pradesh

गौरव अध्यक्ष,
विशाखा हिन्दी परिषद

Date : 10-5-2000

आशीर्वाद

चि. सी हेच. भास्कर मीनन के शोध - प्रबन्ध " हिन्दी की नयी कविता और तेलुगु की दिगंबर कविता "का तुलनात्मक अध्ययन को प्रकाशित रूप में देखते हुए मुझे बडा हर्ष हो रहा है। इस अवसर पर, मेरे स्मृति-पटल पर विभिन्न शोध-कर्ताओं (तथा उनके शोध-प्रबन्धों के भी) चित्र अंकित हो जाते हैं जिन्होंने आन्ध्र विश्वविद्यालय की ओर से तुलनात्मक अध्ययन का कार्य किया था।

जब मैं हिन्दी विभाग का अध्यक्ष रहा था, तब हिन्दी तथा तेलुगु की किसी धारा या विधा अथवा लेखक किंवा उसकी कृति का तुलनात्मक शोधाध्ययन कई शोध - विद्यार्थियों ने किया था। मैंने पाया कि कई एक के अध्ययन कार्य की उपलब्धियाँ बहुत ही महत्वपूर्ण रहीं ; परंतु मुझे इस बात की निरन्तर चिन्ता रही है कि इनमें से कई आज भी अप्रकाशित हैं । इस स्फुरण की पृष्ठ-भूमि में मीनन के ग्रन्थ का प्रकाशन मेरे हर्ष को दुगुना बना देता है ।

नागपुर विश्वविद्यालय ने (हिन्दी तथा तेलुगु) तुलनात्मक अध्ययन स्वीकार कर चुका, यह एक महत्वपूर्ण विषय है । मीनन एम.ए.में मेरा शिष्य रहा था । उसे नागपुर विश्वविद्यालय ने शोधाध्र्ययन की अनुमति प्रदान की ,उसे वहाँ एक सुयोग्य पथ-प्रदर्शिका डॉ. योगेश्वरी शास्त्री मिल गयीं और पी हेच.डी. की उपाधि भी मीनन को प्रदान की गयी।

मैंने आमूलाग्र इसकी टंकित प्रति पढी है; उसकी गुणात्मकता पर मैं मुग्ध हूँ और निस्संकोच कह सकता हूँ कि इस दिशा में शोधाध्ययन की जो सम्भावना अभी बनी रही है, उसमें यह ग्रन्थ आधारी सामग्री की भूमिका निभा पायेगा ।

मेरी यही कामना है कि मीनन आगे भी अध्ययनशील बना रहे और अपनी शैक्षिक एवं साहित्यिक रचनाओं से प्रगति की दिशा में आगे बढता रहे।

(जी. सुन्दररेड्डी)

निवेदन

हिन्दी की नयी कविता और तेलुगु की दिगंबर कविता शीर्षकवाले इस शोध प्रबन्ध पर सन् 1993 में नागपुर विश्वविद्यालय ने मुझे पी हेच.डी की उपाधि प्रदान की थी। शोधाध्ययन के क्रम में मेरी पथ-प्रदर्शिका **डॉ. योगेश्वरी शास्त्री**, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एल.ए.डी.कॉलेज, नागपुर लगातार जो परामर्श एवं निर्देश की सहायता पहुँचाती रहीं, उसके बदले में कितनी ही वाचिक-लिखित कृतज्ञता प्रकट करता जाऊँ, वह थोडी ही रह जायेगी। आपके पर्यवेक्षण में हिन्दीतर क्षेत्र से प्रथम शोधाध्येता होने का मैं कितना ही अभिमान करता हूँ । आपके परिवार का एक सदस्य बन जाने का भाव मुझे महसूस हो गया था और आपके पति-महोदय **डॉ. अजयमित्र-शास्त्री**, अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं पुरावस्तु विज्ञान विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय भी मेरी विविध प्रकार से अनुराग-पूर्वक सहायता पहुँचाया करते थे। डॉ. महोदय एवं उनके पूरे परिवार का मैं नतशीर्ष कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ।

डॉ.के.पी.राव,रीडर,इतिहास-विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति, जो उस समय नागपुर में रहते थे, मेरी साध जानकर मेरी पथ-प्रदर्शिका से मेरा परि-चय कराया था। अत: मैं **डॉ. राव** का बडा आभार मानता हूँ ।

मेरे आराध्य गुरु आन्ध्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के संस्थापक, उर्थापक एवं हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रकांड विद्वान महामना महामहोपाध्याय प्रो.जी. सुन्दररेड्डी का शिष्य होने से ही मेरी आगे की यह प्रगति सम्भव हुई है। मैं नतमस्तक मनसा आपके चरणों का प्रणाम करता हूँ ।

श्री ए.वी. सुब्बाराव, निर्देशक, ऐडियल कान्वेंट, जिन्नूरु ने मेरी अनेक प्रकार से, विशेषकर आर्थिक रुप से, जो सहायता पहुँचायी, उसका आभार किसी भी प्रकार मैं प्रकट नहीं कर पाऊँगा ।

वीरभद्रा ग्राफिक्स, विशाखपट्टणम के अधिपति श्री आर लक्ष्मणराव ने आकार प्रकार में सौन्दर्य भरते हुए प्रबन्ध का मुद्रण किया है । उनका मैं बडा ही कृतज्ञ हूँ ।

अन्तत: इतना भर निवेदन करूँ कि अपनी कृति का मुद्रित रूप देख पाने की लेखक-सहज चपलता मुझेमें रही; परन्तु साथ साथ इस बात का भी ध्यान सजग रहा था कि इस विषय पर शोध - कार्य की अभी आवश्यकता है ; अत: आगे के शोधान्वेषकों के सौलभ्य का भी ध्यान प्रबन्ध के प्रकाशन में क्रियाशील रहा था ।

अमलापुरम,
1-5-2000

सी हेच. भास्कर मीनन

विषयानुक्रम

II. हिन्दी की नयी कविता : तारसप्तक के कवि

III. दिगम्बर कविता

IV. तुलनात्मक अध्ययन : काव्य-प्रवृत्तियाँ

मेरे

तात

मात

भ्रात

बन्धु

जीवन - त्राता दयालु

श्री एम. अप्पलराजुजी

को

सादर समर्पित

शोध - प्रबन्ध

हिन्दी की नई कविता और तेलुगु की दिगम्बर कविता का तुलनात्मक अध्ययन

शोध - प्रबन्ध की विषय-वस्तु, उसकी परिधि, प्रसार एवं सीमाएँ ।

1. प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में विवेच्य वस्तु हिन्दी की नयी कविता और तेलुगु की दिगंबर कविता है। दोनों क्रमशः हिन्दी और तेलुगु के भाषा-साहित्यों में नव्यतम काव्य - विधायें हैं। नयी कविता का प्रारम्भ गण्य-मान्य आलोचकों ने श्री अज्ञेय से सम्पादित "तार सप्तक" से मान लिया है। जिस संकलन के बाद "दूसरा सप्तक" और "तीसरा सत्पक" शीर्षक से दो और भाग उन्हीं के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुए थे । उन-उन संकलनों के प्रकाशनों तक तीनों भागों के कवियों के काव्य - ग्रंथ नहीं के बराबर प्रकाशित थे। यीद कुछ एक निकले भी तो उनकी संरव्या विरल थी । प्रत्येक सप्तक में सात - सात कवियों की कुछ - कुछ कविताएँ संकलित हैं। तीनों संकलनों में तीन गुना सात् 3x7, अर्थात् इक्कीस कवियों की रचनाएँ समाविष्ट हैं। उन-उन प्रकाशनों के अनन्तर उन सभी तारसप्रकों के कवियों के काव्य - ग्रंथ निकलने लगे; पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कवितायें छपने भी लगीं; अब भी वह क्रम जारी है। एक तरह से "तारसप्तक" के तीनों भागों में समाविष्ट कविताओं को उन सब कवियों का प्रारम्भिक प्रयास अथवा, 'शिशु-प्रयास' माना जा सकता है। प्रस्तुत निबंध को इन्हीं तीन संकलनों की विषय वस्तु की परिधि में सीमित कर दिया गया है और आवश्यक लगने पर ही

उन उन कवियों की उत्तरकालीन सामग्री से भी काम लिया गया है। विषय वस्तु की उक्त परिधि, प्रसार एवं सीमा के दो उद्देश्य हैं – (शोध – कार्य को अनियंत्रित हो जाने से बचाना और भविष्य के शोध – कर्ताओं के निमित्त विशेषीकरण की सुविधा को सुरक्षित रखना)

2. इसी प्रकार तेलुगु के साहित्य में दिगम्बर कविता भी विवेच्य वस्तु के अन्तर्गत समाविष्ट है। दिगम्बर कविता के कवि भी तीन संकलन प्रकाशित कर चुके हैं। प्रत्येक संकलन में कवियों की कविताएँ हैं। तीनों संकलनों की कविताओं के कवि वे ही छे कवि हैं। प्रथम संकलन के पूर्व उनमें से दो एक व्यक्ति कवि के रूप में ज्ञात रहे थे और उनके काव्य – ग्रंथ भी या तो विरल थे अथवा विवादास्पद।

अत: तेलुगु में विवेच्य वस्तु – दिगंबर कविता की इन तीनों संकलनों तक ही सीमा निर्धारित है। उसके पूर्व की अथवा उत्तरकालीन उनके काव्य – ग्रंथों से अगर कभी काम लिया गया, तो आवश्यक जँचने पर ही ऐसा हुआ है।

कहने का अभिप्राय यह है कि, हिन्दी के कवियों के जैसे ही, तेलुगु के **दिगंबर कवियों की प्रारम्भिक कविताओं अथवा शिशुप्रयास को विवेच्य वस्तु स्वीकार किया गया है।**

3. उक्त दोनों धाराओं के कवियों की कविताओं के तुलनात्मक अध्ययन का आशय है काव्य – वस्तु के अन्तर्गत निहित विभिन्न विषयों की तुलना करना जिनका सम्बन्ध जीवन से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से लक्षित होता है। आधुनिक युग में कवि के दायित्व को "सामाजिक" कहा जा सकता है; अत: तुलना के अवसर पर कविताओं में **सामाजिक पक्ष के साथ – साथ** कवियों पर तत्कालीन प्रभावों का भी यथोचित प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार सामूहिकता ही नहीं, **वैयक्तिकता को भी ध्यान में रखा गया है** क्योंकि व्यक्तियों ही से समाज बनता है।

4. तुलनात्मक अध्ययन के अवसर पर सामान्य रूप से एक भ्रामक विश्वास कई लोगों में स्थिरता प्राप्त कर गया है कि विवेच्य वस्तु जब दो भिन्न भाषाओं के साहित्यों की हो, तो उसमें साम्यों का होना अनिवार्य है और उनका उद्घाटन करना अवश्यंभावी है; परंतु अध्ययन किये बिना

साम्यों के होने न होने की बात कैसे अवगत हो जायेगी? पूर्वधारणा। साम्य की हो सकती है और शोधाध्ययन के फलस्वरूप उपलब्धियों में वैषम्यों का आधिक्य तथा साम्यों की न्यूनता लग सकती है। अतः पूर्वधारणा के विफल होने पर खेद नहीं करना चाहिए; इतना ही नहीं साम्य बिठाने का अनुचित प्रयास भी नहीं करना चाहिये। इस ईमानदारी भरे दृष्टिकोण को मैंने लगातार निभाया है।

5. **हिन्दी और तेलुगु भिन्न परिवारों की भाषाएँ हैं**। हिन्दी आर्य - परिवार की भाषा है और तेलुगु द्रविड परिवार की। अतः भावात्मक साम्य के होने पर भी शिल्पगत एवं शैलीगत वैषम्य अनिवार्यतः दिख जाता है। फिर भी भारत की सांस्कृतिक एकता मूलतः एक होने से कहीं कहीं समता के उदाहरणों के हाथ लगने की संभावना है। ऐसे अवसरों पर साम्य एवं वैषम्यों, दोनों की, संक्षेप में चर्चा की गयी है। **समता के अवसर पर उदाहरणों से काम लिया गया है** और वैषम्य के अवसर पर उदाहरणों को अनुपयुक्त माना गया है।

6. भारतीय काव्य - शास्त्र तथा पाश्चात्य काव्य - शास्त्र, दोनों के अध्येता होने से तथा साहित्य के अध्ययन के अवसर पर भी, दोनों भाषाओं के कवियों पर उन दोनों शास्त्रों के लक्षण - ग्रंथों एवं उनके लक्ष्य - ग्रथों के अध्ययन - मनन के परिणाम - स्वरूप कुछ विशिष्ट शिल्प - निर्माण विवेच्य दोनों काव्य - साहित्यों में सहज है। इस तथ्य का भी अध्ययन प्रस्तुत शोध - प्रबंध में समाविष्ट किया गया है।

7. प्रस्तुत शोध - प्रबंध का प्रमुख **लक्ष्य काव्य - वस्तुगत एवं शैलीगत विभिन्न विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन करना है**। अतः काव्य, "कविता", साहित्य, "प्रबंध" इत्थादि विधापरक परिभाषाओं की क्रमागत सूची देने की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी। लेकिन छन्द, लय, गति, अलंकार, प्रतीक, बिंब जैसे काव्यान्तर्गत सहज तत्वों की तुलना को यथायोग्य स्थान दिया गया है।

8. **विवेच्य वस्तु नव्यतम अथवा प्रायः समकालीन है**। अतः कवियों पर संघातशील प्रभावों पर भी, संक्षेप में ही, प्रकाश डाला गया है; क्यों कि पाठक लोग उन प्रभावों से परिचित ही होते हैं।

9. दोनों विवेच्य काव्य-साहित्यों पर गण्य-मान्य विद्वानों के विचारों पर भी प्रकाश डाला गया है और अन्ततः शोधकर्ता उनकी भी समीक्षा करके अपना मन्तव्य देने का विनीत प्रयास कर चुका है।

10. नयी कविता और दिगम्बर कविता की पृथक रूप से **उन-उन भाषा-साहित्यों की देन का निष्कर्ष** निकाला गया है और इस अवसर पर उनको **तुलनात्मक दृष्टि से भी परख कर मूल्यांकन** करने का यत्न किया गया है।

प्रथम अध्याय : प्रस्तावना

1. कविता : भाषा समाज की उपज है और साहित्य व्यक्ति की। भाषा समाज की अनिवार्य आवश्यकता है और साहित्य व्यक्ति की आत्माभिव्यक्ति का माध्यम है। कविता साहित्य की एक सुन्दर विधा है।

2. काव्यशास्त्र : विश्व की किसी भी भाषा के साहित्य का प्रारम्भ कविता की विधा के साथ ही हुआ था। अतः साहित्य की परिभाषाएँ कविता अथवा काव्य की परिभाषा से निकली थीं। कविता-रूप के पश्चात् साहित्य की अन्य विधाएँ भी प्रचलित हो गयीं तो "काव्यशास्त्र" का नाम 'साहित्यशास्त्र' बन गया। प्रस्तुत प्रबन्ध में इन विभिन्न परिभाषाओं की चर्चा उद्दिष्ट नहीं है। यहाँ केवल यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि साहित्य की सब विधाओं में से कविता की विधा सबलतम है।

3. काव्य-प्रयोजन : काव्य के प्रयोजन पर भी अनादिकाल से आज तक बहुत कुछ कहा गया है। "सत्य, शिव, सुन्दर" का निर्वहण अथवा संवहन उनमें प्रमुख है। अद्यतन समय के साहित्य का प्रयोजन पूर्णतः सामाजिक है। वैयक्तिक आनन्द भी सामाजिकता के अन्तर्गत संलीन हो जाती है क्योंकि व्यक्ति समाज का एक अंग मात्र है।

4. भारत का भाषा-परक स्वरूप : भारत बहु भाषी देश है। बहुत समय पूर्व यहाँ के दूर-स्थित लोग एक-दूसरे केलिये अजनबी थे। वार्ता-प्रसार एवं यात्रा के साधनों ने जनता को नजदीक ला रखा है। जब इन साधनों के अभाव में, विदेशों से भी हमारे देश में भावों का आगमन हो पाता था, तो स्वदेश में ऐसा होना कौन आश्चर्य की बात होगी? इस विचार से प्रस्तुत शोधार्थी ने समझ लिया कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी और शोध-कर्ता की मातृ-भाषा तेलुगु के साहित्य की वस्तु एवं गतिविधियों में साम्य विद्यमान है। उसने पाया कि विदेशी प्रभाव से विरहित स्वदेशी राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ दोनों क्षेत्रों के लोगों पर क्रियाशील रहीं जिससे जनता के सच्चे प्रतिनिधि कवियों ने उसकी एवं तज्जन्य परिणामों को वाणी दी। उक्त पृष्ठ भूमि में, प्रस्तुत शोध-कार्य, सुयोग्य पर्यवेक्षण में, चालू रहा और उसे प्रबंध का स्वरूप प्राप्त हो गयी जो नागपूर विश्वविद्यालय व्दारा सन् 1993 में, पी. हेच डी. उपाधि केलिये स्वीकार किया गया था।

5. परिस्थितियों का प्रभाव : इस अवसर पर कविता लिखने की ओर लेखकों को प्रवृत्त करनेवाली सामान्य परिस्थितियों पर थोडा प्रकाश डालना आवश्यक है। साहित्य के गण्य-मान्य आलोचकों तथा साहित्य के यशस्वी इतिहासकारों ने साहित्य पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रभावों की अनिवार्यता बतला दी है यथा धार्मिक , सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक इत्यादि। कवि लोग कहाँ तक उन क्षेत्रों पर अपने खुद का प्रभाव स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर चुके हैं, शायद ही आज तक इसकी कोई विस्तृत चर्चा की गयी है। कोई यहाँ रेखा खींच नहीं सकता कि अमुक क्षेत्र में अमुक बात का परिणाम अमुक कवि की अमुक रचना है। हिन्दी साहित्य को ही उदाहरण स्वरूप लिया जाय, तो पं. रामचंन्द्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. श्यामसुंदरदास जैसे हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने कवियों पर उक्त चारों परिस्थितियों के प्रभाव की तो भूरि-भूरि चर्चा की थी, परंतु कबीर, तुलसी अथवा किसी अन्य कवि ने समाज को किस विषय में किस प्रकार मोडा था, इसकी स्पष्ट चर्चा नहीं की थी. ऐसा करना असाध्य भी है। वास्तव में किसी एक कवि अथवा अगुए कवि के युग की काव्यधारा का जनता पर आंशिक रूप से प्रभाव हो सकता है, किंतु अस्थायी रूप से मात्र। भारत जैसे देश में निरक्षरता इसका प्रबल कारण है, तो जनता में सहज विस्मृति की चित्तवृत्ति गौण कारण है। यह मनुष्य के सामाजिक अस्यितत्व की विशेषता है।

6. विवेच्य वस्तु की पृष्ठ-भूमि : (नयी कविता): अब हिन्दी की नयी कविता एवं तेलुगु की दिगंबर कविता पर कुछ चर्चा करने से पहले उन दोनों काव्य-धाराओं के निकट-पूर्ववर्ती साहित्यों पर थोडा-सा प्रकाश डालना अप्रासंगिक नहीं होगा; क्यों कि **किसी भी कवि अथवा लेखक एवं उसकी कृति पर न केवल उसकी समकालीन विभिन्न परि-स्थितियों का प्रभाव रहा करता है, अपितु उसके पूर्ववर्ती लेखकों की रचनाओं का भी प्रभाव रहता है।**

हिन्दी की नई कविता की जड़ें प्रगतिवादी धारा की कविता में अधिक और छायवादी-रहस्यवादी काष्य-धारा में कम पायी जाती हैं। तेलुगु की दिगंबर कविता की जड़ें श्री श्री से चली आती हुई अभ्थुदय कविता-घारा (प्रगतिवादी काव्य-धारा) में अधिक और परंपरावादी भावकविता (छायावादी-रहस्यवादी) की धारा में कम पायी जाती हैं। इस प्रकार दोनों के जन्म का मूल स्रोत एक ही प्रकार की पूर्ववर्ती काव्य-घारा है। इस

प्रकार दोनों के जन्म का मूल स्रोत एक ही प्रकार की पूर्ववर्ती काव्य-धारा है। ये मूलस्रोत चेतनात्मक या प्रभाव-चेता न होकर ऋणात्मक भावजन्य विमुखता का आविर्भाव करनेवाले हैं जिससे दोनों भाषाओं की इन इन कविता-रूपों का जन्म हुआ समझना चाहिये।

हिन्दी में श्री निराला, पंत, दिनकर जैसे कवियों की कविताओं में, नैतिकता के ध्यान से, पतनशील समाज के प्रति उनकी खीज एवं दुःख का अभिव्यंजन हो पाया है। निराला जी की "भिक्षुक" "वह तोडती पत्थर"[1] "विधवा"[2] में जैसी कविताओं में व्यक्ति-निष्ठ प्रतीकात्मक चित्रण व्दारा में वर्ग-विशेष के प्रति अपने ुःख की अभिव्यक्ति स्पष्ट है। "जागो फिर एक बार"[3] वाली कविता में लोगों में सामूहिक अथवा सामाजिक चेतना की पुकार स्पष्टतः गोचर होती है।

यद्यपि पंतजी छायावाद से लेकर अरविन्द दर्शन तक के विभिन्न वादों के फेरोमें पडकर वैविध्यपूर्ण जीवन-दर्शन को व्यक्त करते चले भे, तथापि सामाजिकता से वे दूर नहीं रह सके। वैषम्यपूर्ण समाज में शोषित वर्ग पर होनेवाले अन्यायों एवं अत्याचारों के विरुद्ध उनकी आवाज जोरदार भाषा में मुखरित होती रही थी। "सुख दुःख" कविता में वह अस्फुट रही, तो "द्रुत झरो" में अपना अनावरण कर नग्न दर्शन दे गयी। शुष्क एवं अर्थहीन पतनशील पुरानेपन के निराकरण की कैसी ओजभरी माँग है-

> द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र।
> हे स्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण,
> हिमताप पीत मधुवात बीत
> तुम वीतराग, जड, पुराचीन। [4]

समाज के हर एक शोषित का वे उद्‌बोधन करते हैं कि वह अपने को मानव होने के नाते अपने हकों केलिए शोषक-वर्ग के विरुद्ध लड़े। उनकी वाणी की चिनगारियों की आकांक्षा थी कि "जग में फिर से जग जावे सोया मानवपन"

---

1) 'अनामिका,' 'निराला पृ. - 81
2) अपरा' ----"---- 57
3) वही --- --- पृ. 16
4) 'युगान्त' (पन्त) पृ. 15

"जूठे पत्ते" [5] वाली कविता में भी मनुष्य के आगे हाथ पसारनेवाले मनुष्य की शोचनीय दशा पर लेखक इस हद तक पहुँच जाता है कि वह मिल जाने पर भगवान का गला दबा देगा। श्री दिनकर जी ने जाति-पाँति-जन्य वैषम्य को लेकर "रश्मि-रथी" काव्य लिखा और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिज्ञ लोगों से उत्पन्न किये जानेवाले युद्धों का काव्यात्मक विरोध किया। अबोध जनता नेताओं के हाथों कठपुतली बन उनके आगे अपने जीवन का विश्वासपूर्ण दिल समर्पित कर देती है तो वे अपने पद एंव अधिकार को बनाये रखने के हेतु युद्ध के बीज बोते हैं, देश की सुरक्षा के नाम पर, स्वाभिमान के नाम पर, यश के नाम पर, पूर्वजों के प्रति श्रद्धा के नाम पर युद्ध चलाते हैं। आप तो खुद लडते नहीं, उन विश्वासी अबोधों को युद्ध ज्वाला में आहुति कर डालते हैं। यह सब उनके "कुरुक्षेत्र" खंडकाव्य में भली-भाँति निर्भीकता एवं सुस्पष्टता के साथ प्रकट किया गया है। श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' अपनी "विप्लवगायन" नामक कविता में कवियों से ओजभरी माँग करते हैं। वर्तमान भद्दे, गंदे, निकृष्ट जीवन-भरे समाज में विप्लव की ज्वाला का उनका स्वागत दुःख-तप्त हृदय केलिये मरहमपट्टी का काम करता है। ऊपर के कवियों में से कुछ ने कविता का कर्तव्य अथवा कवि-कर्म का संकेत कर पाठकों में चेतना भरने का भूरि-भूरि प्रयास किया था।

7. विवेच्य कविता की पृष्ठ-भूमिः(दिगंबर कविता):

तेलुगु में भी बात यही रही थी। निराला की "भिक्षुक" कविता की वस्तु को, सिर्फ लिंग-भेद के साथ, जरा परखें, तो स्पष्टरूपेण अवगत हो जायेगा कि प्रान्तीय भाषा-भेद भाव-बोध की दूरी का अवरोध कभी नहीं बनता। श्री श्री की निम्न लिखित अवतरण की निरालाजी की "भिक्षुक" कविता की वस्तु से तुलना की जायः

> रास्ते पर एक पेड के नीचे बुझी अं-
> गीठी-सी बैठी है इक बुढिया कराहती-
> चूने का सिर उसका, झुर्रियों का शरीर
> कान्तिहीन आँखें हैं शीशे के दो टुकडे-
> उस से है शव अय्छा।
> उम्र ढली, सड हड्डी, जीवन से हो विरक्त
> उस पत्थर की सी वह बैठी है ....[6]

5) " वनिका" (सं, रामानन्द चयर्मा), 'विप्लवगायन (श्री, बालकृष्ण शर्मा "नवीन", पृ. 76-77

6) तेलुगु की भिक्षुवर्षीयसि का हिन्दी काव्यानुवाद "महाप्रस्थान" ले. श्री श्री कविता-2

इसी कवि की श्रमिकों व उनके वर्ग के विभिन्न व्यक्तियों की अकथनीय दयनीयता को व्यक्त करनेवाला एक और उदाहरण:

पेट दह लेनेवाली
रंडी की राक्षस रति ......
फाँसी लगाये गये सिर का कहा रहस्य ....
हडताल चलानेवाले मजदूरों
और उनकी पत्नियों व संतानों का हाहाकार [7]

शोषकों के अत्याचार और उनके समर्थन में प्रचारित उनके भाग्यवाद का यह प्रसंग देखने योग्य है। :

सबसे मिल कर बनाये गये
इस सुंदर वस्तु-समूह सब कुछ को
कोई एक ही एक व्यक्ति को आकर
उडा ले जाते देख,
'अन्याय है, अन्याय है' यों हम कहते हैं,
तो कहता है कि सहना चाहिये, तुम्हारा भाग्य है [8]

श्री श्री युग के प्रख्यात कवि श्री बालगंगाधर तिलक की एक कविता का यह अंश भी देखें --

ऐ छोटी माँ !
ये सब पूँछ कटे चूहे हैं
अपने छेदों से बाहर निकल आ नहीं सकते
अंदर अंदर ही घूमते रहते हैं
मूढतावश बलशाली हैं
अविवेकवश अविनाशी हैं
सामाजिक बन्धनों के रक्षक-कर्मचारी हैं
शिथिल आलयों के पुजारी हैं [9]

सामाजिक युग के वाहक श्री श्री कविता के लक्षणों को यों व्यक्त करते हैं जो कविता का नवीन लक्ष्य है जिसे हर कवि को ध्यान में रखकर ही कुछ लिखना चाहिये

7-8) हिन्दी काव्यानुवाद, श्री श्री साहित्यं, काव्य-विभाग-दो पृ 86
9) काव्यानुवाद, "अमृतं कुरिसिन रात्रि", (बालगंगाधर तिलक) पृ.15

खुद स्पन्दित होनेवाला
औरों में स्पन्दन भरनेवाला
खुद गाये, गान कराये
आगे आगे लेता जावे
मस्त खुमारी फाड भगावे
परिपूरन जीवन देवे
आवश्यक यह नव कविता को [10]

इसकी तुलना नवीन की 'विप्लवगायन' वाली कविता से की जाये, तो दोनों भाषाओं में गुप्त साहित्यिक भाव-साम्य का सुंदर अवबोध हो जायेगा।सुविधा केलिए चंद पंक्तियाँ मात्र यहाँ पर उल्लिखित की जाती हैं:

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल- पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये.....
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाये
बरसे आग, जलद जल जावें,
माता की छाती का अमृतमय पय काल कूट हो जाये [11]

8. नयी कविता का अविर्भावः (तारसप्तक):

संक्षेप में होने पर भी उर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जब प्रगतिवादी अथवा प्रगतिशीलता के बीज उगे और उसकी जड मजबूत बनती जा रही थी, तब हिन्दी में नयी कविता अथवा प्रयोगवाद ने जन्म लिया था। नयी कविता की प्रतिनिधि रचनाएँ प्रधान रूप से तीन मानी जाती हैं जो "तारसप्तक" शीर्षक से संकलित हैं। प्रथम भाग का नाम "तारसप्तक" है, दूसरे का नाम "दूसरा सप्तक" है और तीसरे का "तीसरा सप्तक"। इन तीनों भागों में क्रमशः सात - सात कवियों की कविताएँ समाविष्ट हैं, स्वतंत्रतापूर्वकाल की रचना "तारसप्तक" है और स्वातन्त्र्योत्तरकालीन रचनाएँ हैं -- "दूसरा सप्तक" और "तीसरा सप्तक"।

तेलुगु की दिगंबर कविता स्वातन्त्र्योत्तर काल की प्रक्रिया है। इसके भी तीन ही संकलन निकले हैं। तीनों संकलनों में छे कवि हैं और उन्हीं छे कवियों की रचनाएँ अन्य संकलनों में भी पायी जाती हैं। फिर ये सब कवि प्रायः इन्हीं संकलनों के साथ 'कवि' और 'दिगम्बर कविता

10) काव्यानुवाद "श्री श्री साहित्यं" काव्य-विभाग भाग-2 पृ. 90-91
11) "चयनिका" (सं. रामानंद शर्मा), विप्लवगायन (श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन) पृ. 76-77

के कवि' के रूप में रव्याति प्राप्त कर गये हैं। इन कवियों की अन्य रचनाएँ "तारसप्तकों" के बाद की रची हैं। इसी प्रकार दिगम्बर कवियों की प्राथमिक रचनाएँ उक्त तीनों संकलनों के साथ हुई हैं। उनकी परवर्ती रचनाएँ उनके प्रकाशन के अनन्तर ही हुई हैं।

जिस प्रकार "तारसप्तकों" के कवियों ने अपने और अपनी कविता के सम्बन्ध में खुलासा विवरण दिया है, उसी प्रकार दिगम्बर कवियों ने भी अपनी तथा अपनी कविता के उद्देश्य पर संक्षेप में प्रकाश डाला है। "तारसप्तकों" के कवियों ने नयी कविता की मूल-प्रवृत्ति को स्वीकार करते हुए अपने वैयक्तिक विचारों को व्यक्त किया है, तो दिगंबर कवियों ने सामूहिक रूप से अपनी कविता एवं उद्देश्य को स्पष्ट किया है। [12]

हिन्दी की नई कविता का प्राय: आलोचकों ने 'प्रयोगवाद' का नाम स्वीकार किया; तो तेलुगु के इन कवियों ने खुद अपने को 'दिगम्बर कवि' घोषित करते हुए अपनी कविता को दिगम्बर कविता का नामकरण कर डाला है। "धर्मयुग"[13] और "दिनमान"[14] जैसे हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में "दिगंबर

12) ["दिगम्बर कवुलु" संयुक्त संकलन है।] तृतीय अध्याय में विस्तृत निवरण संपन्न किया गया है।

दिगम्बर कवि छे हैं; वे अपने छद्म नामों से ही अपने काव्य-क्षेत्र में पदार्पण कर चुके थे जो इस प्रकार हैं:

छद्मनाम	*सर्वश्री असली नाम*
1) नग्नमुनि	*केशवराव*
2) निखिलेश्वर	*यादव रेड्डी*
3) ज्वालामुखी	*राघवाचारी*
4) चेरबंडराजु	*बालनरसिंहम*
5) भैरवय्या	*भास्कर रेड्डी*
6) महास्वप्न	*वेंकटेश्वर राव*

प्रथमत: इनकी कवितएँ तीन संकलनों में प्रकाशित हुईं:
प्रथम संकलन (सन 1965) "दिगंबरशकंलोकि" (दिगंबर सदी में)

द्वितीय संकलन (सन् 1966) "दिक्लु"-30 (तीस दिशाएँ) तृतीय संकलन (सन् 1968) "नेटिकुष्तुव्यवस्थ पै दिगंबर कवुलु" (आज की कोढ की व्यवस्था पर दिगंबर कवि)

13) 15, जुलाई 1976, "धर्मयुग"
14) सितम्बर, 76, "दिनमान"

पीढ़ी" का नाम तक सुझाया गया है जो केवल भ्रमोत्पादक है। इन छहों कवियों के पीछे न कोई एक भी चला न ही उनकी कविता से मिलती-जुलती शैलीवाली कविता किसी और ने लिखी। फिर दिगंबर कविता भावों में विप्लवाप्मक है, तो उसकी बाद की कविता विप्लववादी कविता है जो पाठकों से क्रियात्मक चेतना की माँग करती है।

अगर नयी कविता में कवियों व्दारा कुछ काव्यात्मक प्रयोग किया गया है, तो दिगंबर कविता व्दारा नग्नतापूर्ण चित्रण का प्रयोग किया गया है। **वस्तुतः हर युग एवं समय के प्रत्येक कवि की रचना उसकी पूर्ववर्ती सब कृतियों से नयी ही होती है।** कोई कवि यह नहीं मानता कि मैं अमुक पूर्ववर्ती कवि अथवा उसकी कृति का अनुकरण कर रहा हूँ। वाल्मीकि रामायण की तुलना में तुलसी की "रामचरितमानस" नया है और "रामचरित मानस" की तुलना में केशव की "रामचंद्रिका" नयी है और इन तीनों ग्रंथों की तुलना में "साकेत" नया है; फिर "साकेत" को भी मिला कर तुलनात्मक रूप से परखा जाय, तो "कैकेयी" "ऊर्मिला" इत्यादि हर एक काव्य नया है। यह केवल एक ही मूल-कथा-वस्तु के हिन्दी की प्रचलित कथा-वस्तु के उदाहरण स्वरूप उल्लेख हैं। मूल कथानक को ध्यान में न रखा जाय, तो वाल्मीकि की रामायण से कबीर का "बीजक" सूर का "सूर-सागर" जायसी का "पद्मावत" मीरा की "गीतावली," बिहारी की "सतसई" भूषण का "शिवराज-भूषण," हरिऔध का "प्रिय-प्रवास" मैथिलीशरण का मेघनाद वध," धर्मवीर भारती का "अन्धायुग," रामकुमार वर्मा का "एकलव्य," जयशंकर प्रसाद की ""कामायनी"" महादेवीजी की "यामा" इत्यादि सब काव्य-ग्रंथों में से प्रत्येक रचना क्या, उसकी पूर्वलिखित रचना से नयी नहीं है?

सारांश यह है कि नयी कविता का नामकरण भ्रामक ही नहीं, निष्प्रयोजक है, फिर काव्य क्षेत्र में यही नयापन एक प्रयोग है- जो हर समय हर कवि व्दारा दुनिया भर में किया जाता ही रहता है जिस तथ्य के ध्यान से प्रयोगवाद नामकरण भी निरुपयोगी एवं अर्थहीन है। क्योंकि हर समय की कविता पूर्वर्क्ती समय की कविता की तुलना में एक नये प्रयोग का परिणाम होता है।

9. दिगम्बर कविता का आविर्भाव : अब तेलुगु की दिगम्बर कविता के नामकरण के सम्बन्ध में भी कुछ न कहा जाय, तो कसर रह जाती है। प्रत्येक कवि, वह किसी भी समय का क्यों न हो अथवा किसी भी स्थल का भी क्यों न हो, सभी कवियों की भाँति अपने कथ्य

को सुन्दर बनाना चाहता है, समझ में आने योग्य बनाना चाहता है, भाव-प्रेषक रूप देना चाहता है। तब 'दिगम्बरता' की बात कैसी? भले ही प्रतीकों व्दारा कबीर से लेकर छायावादी-रहस्यवादी कवियों तक की कृतियों में कुछ छिपाते हुए दिखाने की प्रवृत्ति हिन्दी में रही और तेलुगु में भी द्व्यर्थी एवं त्र्यर्थी-काव्यों में तथा भाव-कविता (छायावादी - रहस्यवादी कविता) व्दारा भी ऐसा ही काव्य प्रयास जारी रहा, तथापि परवर्ती काल में,अर्थात हिन्दी के 'प्रगतिवाद' एवं तेलुगु के 'अभ्युदयवाद' के आविर्भाव से लेकर कविता में मानों छद्मवेष का तत्व कुछ भी न बचा रहा। अत: भावों की नग्नता या दिगम्बरता आधुनिक युग के साहित्य में एक अनिवार्यता बन गयी ही थी जिसके प्रारम्भ का नये तौर से ठेका लेने की कोई आवश्यकता नहीं रही। हाँ, एक बात अवश्य है, वह है अधिकार का उपभोग करके उसके प्रति द्रोह करनेवाले राजनीतिज्ञों की करतूतों का निर्भीकता से भंडाफोड करने की नग्नता का निराकरण नहीं किया जा सकता; साथ ही प्रगतिवाद के पूर्व ही 'कविते ! तुझे क्या चाहिए अंलकार ?'। कहकर स्वच्छन्द कविता का श्रीगणेश करनेवालों से जागरूक नयी कविता एवं दिगम्बर कविता के लेखकों की शैलीगत विशेषतओं का भी हम निराकरण नहीं कर सकते। इस विषय पर आगे विस्तृत चर्चा की गयी है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि संरव्या में छे इन दिगम्बर कवियों ने अपने नाम पर छे ऋतुएँ।[15] बना दीं, अपनी कविताओं को दिक् का नामकरण दिया और अपने तीनों संकलनों की संयुक्त प्रस्तावना में अपने मन्तव्य की अवतारणा उतारी जो सैद्धान्तिक विचारों का सार रूप है और उनकी रचनाएँ उनका प्रयोग पक्ष है। इन छहों कवियों में श्री चेरबंडराजु एक हैं जो अब जीवित नहीं हैं। शेष पाँचों में से दो कवियों की एक टोली है। तो अन्य तीनों की एक और टोली है। यह सैद्धान्तिक विचारजन्य विभेद का एक परिणाम है। यों तो इन शेष पाँचों में से दो कवि अब रचना कार्य से विदा ले चुके मालूम होते हैं। श्री नग्नमुनि और श्री चेरबंडराजु के उल्लेखनीय काव्य-संकलन हैं जो उक्त

15) आपने व्दितीय संकलनके आवरण के पृष्ठ के पीछे अपना यह कालमान अंकित किया है
दिगम्बर सदी: वर्ष छे हैं ; नग्ननामवर्ष, निखिलेश्वर नाम वर्ष, ज्वालामुखी, नाम वर्ष, चेरबंडराजु नाम वर्ष, भैरवनाम वर्ष, महास्वप्ननाम वर्ष
ऋतुएँ छे ये हैं: आशा ऋतु, तपन ऋतु, अश्रुऋतु, मदिर ऋतु, विरह ऋतु, विषाद ऋतु
सप्ताह छे ये हैं: स्नेहवार, विश्रृंखलवार, क्रांतिवार, सृजनवार, विकासवार और अनंतवार।

तीनों संयुक्त संकलनों के प्रकाशनानंतर की उपज हैं। शेष कवियों की अनन्तर की रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित मु क्त क रचनाएँ हैं। प्रस्तुत प्रबंध में तारसप्तकों एवं तेलुगु के दिगम्बर संकलनों की वस्तु को प्रधान रूप से विवेच्य सामग्री बना लिया गया है; विशेष अवसरों पर ही अन्य कविताओं अथवा कविता-संकलनों से काम लिया गया है।

ध्यान देने की एक और बात यह है कि विवेच्य काल के, दोनों भाषाओं के कवियों ने कविता की परिभाषा कविता के माध्यम से दी है। [16] उनके पहले के कवियों व्दारा भी ऐसा प्रयास हुआ था। निकट पूर्ववर्ती श्री श्री जैसे कवियों की भाँति ये कवि भी पाठकों में सामाजिक चेतना की आशा करते हैं जो वैयक्तिक स्पन्दन व्दारा संभव है।

10. संक्षिप्त विवरण : ऐतिहासिक अध्ययन-जन्य एवं सामाजिक अनुभव-जन्य तथ्य: भले ही पाश्चात्य प्रभाव का दोनों भाषाओं के इन कवियों पर आरोप लगाया जाता है, फिर भी इसका पूरा निराकरण नहीं किया जा सकता कि इनकी भी अपनी निजी कुछ देन है। उनमें सामाजिक विषमता जन्य घोर दुःख है,[17] उसका विरोध कर लेने की सच्ची उमंग है, इन दोनों को व्यक्त कर सकने की भाषाई बलवत्ता है। जिस प्रकार निराला के साथ प्रारम्भ करके कविता ने अपने अलंकारों को उलीच फेंका, उसी प्रकार तेलुगु में श्री श्री के साथ भी हुआ। यद्यपि कुछ समय तक कुछ कवि पूर्वनिश्चित काव्य-नियमों से लिपटे तथा लटकते रहे, तथापि उन्होंने अपने कवि-कर्म को अनति काल में ही महसूस किया। दोनों भाषाओं के ये कवि गद्यात्मकता को निभाते हुए भी गति एवं लय से मुक्त नहीं हो सके। तेलुगु में दिगम्बर कवि एवं हिन्दी नई कविता के कवियों ने इस बात का अनुभव किया कि अब तक की कविता ने यद्यपि गद्यात्मकता को अपना लिया था, तथापि वह विवश दशा में अपनायी गयी प्रक्रिया मात्र रही है, उसकी वह यथार्थ प्रकृति नहीं है। प्रगतिवादी (तेलुगु में अभ्युदयवादी) कविता शोषित वर्ग को उद्दिष्ट करके लिखी गयी थी,[18] अर्थात् उत्पादन करते हुए भी उत्पाद्य वस्तु का उपभोग करने में असमर्थ निरीह श्रमिकों को उद्दिष्ट करके लिखी जा चुकी थी;

---

16) "दिगम्बरकवुलु" प्रथम संकलन, "सूर्यस्नान पृ 8-12

17). "दिगम्बरकवुलु" तृतीय संकलन, ओटमि तिरुगुबाटु, ज्वालामुखी (हार का विद्रोह) पृ. 226-239

18) श्री श्री की "भिखारिणी",श्री रेंटाला की 'पालकी वाहक',श्री नारपरेड्डी की 'कथा नहीं-वध है' जेसी कविताएँ उदाहरण स्वरूप उल्लिखित की जा सकती हैं।

उनके व्दारा साहित्य-पठन का क्या क्या प्रयोजन निकला था? शोषित वर्ग निरक्षर होने से मध्य वर्गीय लेखकों की कलम से निकली इन कविताओं के पठन से इसी वर्ग के पाठकों में सहानुभूति जगी अवश्य थी। कुछ मेधावी अथवा बुद्धि - जीवी लोगों में भी इस धारा की रचनाओं का चलन था, उनमें मार्मिकतापूर्ण संवेदना जगी थी; परंतु निरक्षर श्रमिकों केलिए इस साहित्य ने क्या साध लिया था? इन प्रश्नों का एक ही उत्तर होगा-यद्यपि इस साहित्य का लक्ष्य शोषितों को चेताना और उन्हें अपने अधिकारों के पीछे संघर्ष करने की ओर प्रवृत्त करना है, तथापि वास्तव में यह अव्यावहारिक है। पूँजीवादी व्यवस्था को समसामाजिक व्यवस्था में बदलना, वर्तमान व्यवस्था में, शोषित वर्ग के बूते की बात नहीं, नही पूँजीपति-वर्ग दूषण के लायक है। इस व्यवस्या का मूलस्रोत राजनैतिक व्यवस्था है। इसीलिए तो तेलुगु के दिगम्बर कवि राज-नीतिज्ञों अथवा राजनीति के क्षेत्र के नेता लोगों को खुलकर कोसते हैं[19] जिनके हाथों अपने सहज स्वार्थ के कारण कवि लोग बिक जाते हैं, कलाकार हिजडे बन जाते हैं और विभिन्न धर्मों के ठेकेदार उनसे हाथ मिलाकर अपना व्यापार दुगुना नफादार बना लेते हैं, वे ही जनता के प्रतिनिधि तेलुगु के इन कवियों के लक्ष्य-बिदु हैं। इनका विश्वास है कि आजकल की सामाजिक व्यवस्था स्वतंत्र भी नहीं, अपने आप में व्यक्तित्व-संपन्न भी नहीं, और मानवता के मूल्यों से युक्त भी नहीं। समाज का हर क्षेत्र, हर अंश राजनीतज्ञों के हाथों में के बूते की बात नहीं, नही पूँजीपति-वर्ग काम नहीं होता, खेत में पानी के वास्ते, पक्की सडक केलिए कांट्रैक्ट के परमिट केलिए या किसी और काम केलिए किसी न किसी राजनीतिज्ञ के पीछे-दौड्ना होता है। इतना ही नहीं, दरबारी कवि की उपाधि, विश्वविद्यालयों के कुलपति का पद, साहित्य की अकादमियों की सदस्यता, यहाँ तक कि उत्तम अध्यापक, उत्तम कलाकार अथवा किसी पुरस्कार योग्यता की प्राप्ति की भी योजना उन्हीं की दया-भिक्षा के अधीन है, जिसकेलिए उनकी सेवा-शुश्रूषा या दूसरे शब्दों में याचना की जानी पड्ती है। एक तरह से सारा समाज निर्वीर्य-सा हो गया है। इस समाज को चेताने केलिये दिगम्बर कवियों ने न केवल भावों को नग्नता के साथ चित्रित किया है, बल्कि भाषा को भी जोरदार बना लिया है। भाषा के जोर के साथ शिल्प -विधान में भी एक प्रकार का नयापन लाया गया है। इसके पहले जो अश्लीलता काव्य के क्षेत्र में निषिद्ध रही थी, उसी को इन्होंने अपनी कविता को सबल बनाने का माध्यम बना लिया है।

19) "दिगम्बर कवुलु" तृतीय संकलन, 'कुष्ठुरोगि' (कोढ का रोगी) पृ. 214-218

वर्तमान सामाजिक कुव्यवस्था का कारण वर्तमान राजनैतिक कुव्यवस्था है। अत: तेलुगु के दिगम्बर कवि गद्दी पर आसीन व्यक्तियों को और इन दोनों के पीछे व्यक्तित्वहीन कापुरुषों को खुलकर उक्त अश्लील पद-समूह का फंदा लगाकर कोसते हैं क्योंकि वे सब अपने स्वार्थ केलिए जीते हैं।

हिन्दी के नये कवियों की आवाज. पुरानी परम्परा की काव्य-शैली के विरुद्ध खुली व स्फुट है; तेलुगु के दिगम्बर कवियों की आवाज तो चुनौतीदार भी है। 1943 में श्री अज्ञेय के संपादन में निकले "तारसप्तक" में, उनके 'स्व' वक्तव्य पर पथमत: ध्यान देना आवश्यक हे। अज्ञेय मूलत: कविता को प्रयोग का विषय स्वीकार कर चलनेवाले हैं। यह प्रयोगवादी दृष्टि सत्य के अन्वेषण से पृथक नहीं है। "अन्वेषण" शब्द के प्रयोग से ही स्पषट है कि वे और उनके पीछे-पीछे कतार में चलनेवाले लेखक गन्तव्य अथवा अस्पष्ट लक्ष्य तक पहुँचने के प्रयास से अधिक अनिश्चित दिशा में जानेवाले यात्री हैं, यात्री होते हुए वे अन्वेषी हैं। अर्थात् यात्रा के क्रम में जो कृछ चीज उनके अन्वेषण किंवा खोज में मिल जावे, वही उनका स्वीकार्य प्राप्य है। वे अपनी भूमिका में कहते हैं: --

"संग्रहीत कवि सभी ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं -- जो दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है .... वे किसी मंजिल पर पहुँचे हुये नहीं हैं, अभी राही हैं -- राही नहीं, राहों के अन्वेषी" [20]

यहाँ के अंतिम शब्दों में स्पष्ट है कि लक्ष्य या मंजिल ही नहीं, यात्रा का मार्ग भी उनके आगे अनिश्चित है। वे ऐसे ही चलते रहेंगे और संप्राप्त वस्तु लक्ष्य की मान्यता प्राप्त कर गयी जिस राह से वे हो चले, वह राह निश्चित हो जायेगी; तब तक उसे अन्वेषण के उपक्रम में समझना चाहिये।

फिर, अज्ञेय छायावादी-रहस्यवादी कवियों की वैयक्तिकता से अपनी धारा के कवियों को मुक्त घोषित करते हैं। उनका कहना है कि छायावादी कवियों की रचनाएँ व्यक्तिनिष्ठता से भरी हुई हैं और रहस्यवादी कवियों की अलख-अगोचर-अगम्य पदार्थ से। दोनों ही धाराओं की कविताएँ सामाजिक्ता से खाली हैं। भले ही उन्हें अपनी कविताओं में अपना सत्य अथवा व्यक्ति-सत्य मिल जाय, समाज के सम्बध में वह लागू नहीं होता। प्रगतिवादी कवियों की कविताएँ विशुद्ध भौतिकता को लिये हुये हैं और

20) तार-सप्तक, भूमिका, पृ.-5

परम्पराबद्ध काव्य-तत्वों की श्रेणी में भोतिकता काव्य-वस्तु नहीं है, कविता तो सौंदर्य का निलय होती है और काव्य-सौंदर्य से खाली कविता का मूल निम्न कोटि का है।

छायावादी-रहस्यवादी काव्य-धारा सौंदर्य से भरी होकर सामाजिकता अथवा शिव से शून्य है और प्रगतिवादी काव्य-धारा शिव से भरी रहकर सौंदर्य से दूर है। इसी बात को ध्यान में रख कर श्री अज्ञेय कहते हैं --यह भी कहना ठीक होगा कि वह सत्य व्यक्ति बद्ध नहीं है, व्यापक है और जितना ही व्यापक है, उतना ही काव्योत्कर्षकारी है। किन्तु यदि हम मान लेते हैं, तब हम व्यक्ति सत्य और 'व्यापक सत्य' की दो पराकाष्ठाओं के बीच में उसके कई स्तरों की उद्‌भावना करते हैं और कवि इन स्तरों में से किसी पद पर भी हो सकता है।"[21]

श्री अज्ञेय का एक और प्रस्ताव भाषा के सम्बध में है। उनके अनुसार भाषा या कविता का कच्चा माल शब्द और प्रयोग उद्दिष्ट भावों को वांछित रूपेण पाठकों तक वहन करने में असमर्थ हैं। आदि कवि से लेकर आज के कवियों तक के अनुभव में आनेवाली इस सहज बात को वे बढा-चढाकर यों कहते हैं:

"कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है -- शब्दों के साधारण अर्थ से बडा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं, पर उस बडे अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं। वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न पाता है।" [22]

भाषा की इस अपर्याप्तता को भर देने केलिए एक प्रयोग टाइप को बदलना, अर्थात् मोटी या पतली टाइप में कविता के कुछ विशिष्ट अंशों को छपवाना, तिरछी रेखाएँ, अक्षरों के बदले में अंक, अक्षरों को उलटना, वाक्यों को असंपूर्ण छोड देना-इत्यादि प्रक्रियाओं व्दारा वे कर चुके हैं।

11 नयी कविता और प्रयोगवादः नई कविता के प्रस्ताव में प्रयोग शब्द का अनेक बार इन कवियों द्वारा "तारसप्तक" में पाकर कुछ विव्दान आलोचकों नें इसे 'प्रयोगवाद' की उपाधि दी थी जो श्री अज्ञेय को इष्ट न रही; क्यों कि 'वाद' शब्द में काव्यात्मकता की न्यूनता का आभास मिल जाता है। इसलिये वे अपने "दूसरे सप्तक" की भूमिका में इस विषय पर ज़ोर देकर अपनी सफ़ाई देते हैं जो इस प्रकार है --

21) तार सप्तक, भूमिका, पृ.-72
22) --- वही --- पृ.-75

"हम वादी नहीं रहे, न हैं ही। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साहस है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है। अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना हमें कवितावादी कहना" [23]

इस कथन में उनका यह उद्दिष्ट भाव है कि प्रयोग सत्य की उपलब्धि का एक साधन मात्र है। प्रयोग केलिए 'प्रयोग' बुरा है जैसे कि 'कला केलिए कला' का सृजन। उनके अनुसार "आज के नये कवि नयी नयी समस्याओं एवं दायित्वों को अनुभव करते हुए एक दिन गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत, दिनकर आदि की ही कोटि में अवश्यमेव गिने जायेंगे।"[24]

अज्ञेय कविताओं की सामग्री और कविता की वस्तु को पृथक मानते हैं। इस कथन में हमें स्पष्टता की कमी नजर आती है। सामग्री और वस्तु से उनका आशय "कथ्य" और "कंटेंट" है। उनके विचार में कई कवियो के आगे दोनों में विभेदन की दृष्टि की कमी है। वस्तु और वस्तुओं को प्रेषित करने की सामग्री अलग होती है जिसे साधारणतः हम भाव-पक्ष और कला-पक्ष कहा करते हैं। इसी प्रकार कथ्य और "वस्तु" भी पृथक विषय हैं। उनकी भाषा में "वस्तु" आधार है जो कथ्य अथवा संप्रेष्य पर आधारित होता है। भाव-पक्ष और कला-पक्ष के स्थान पर श्री अज्ञेय अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का प्रयोग करते हैं; परंतु शब्दावली की यह भिन्नता मूल तथ्य में कोई परिवर्तन नहीं करती-सी मालूम होती है।

नयी कविता के सभी कवि वस्तु-सत्य अथवा तथ्य के प्रति अत्यंत जागरूक हैं, इतने जागरूक कि उनकी प्रतिक्रियाएँ सदा नयी एवं विचित्र सी महसूस होती हैं। विषय में नवीनता के आविष्करण के साथ-साथ अभिव्यक्ति में भी नवीनता उनका काव्यात्मक प्रयास-सा लगता है। नयी कविता में युगीन जीवन में व्यक्ति-व्यक्ति में सामान्य पीडा, निराशा, विषाद, घुटन, कुंठा आदि का निरूपण अधिक हो पाया है। श्री नंन्ददुलारे वाजपेयी, श्री राजनाथ शर्मा, श्री पद्मधर जैसे विव्दानों के अनुसार नयी कविता दमित वासनाओं एवं कुंठाओं की बहिर्गमन की चीज़ है। जीवन में अतृप्त इच्छाएँ, चाहे वे वासनाएँ भी क्यों न हों, कला का रूप धारण कर जाती हैं। काव्य एक कला है; कविता उसकी एक विधा है; तब आश्चर्य की बात नहीं है कि नयी कविता के ही नहीं, सभी कवि अपनी रचनाओं

23) "दूसरा सप्तक" भूमिका, पृ.-6
24) "दूसरा सप्तक" भूमिका, पृ.-14

में दमित अथवा अतृप्त कामनाओं की पूर्ति तो किया करते ही रहते हैं। फिर विशेष रूप से नयी कविता के कवियों के विषय में यह सिद्धान्तीकरण अनावश्यक है।

व्यक्तिवादी अनुभूति, नागरिक जीवन की उपेक्षा, ग्राम जीवन की अभिव्यक्ति, व्यक्ति एवं वर्ग-चेतना के संघर्ष का चित्रण, पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति असंतोष, जीवन-संभोग की अपेक्षा वियोग के चित्रण का मोह, जीवन की सफ़लताओं की संप्राप्ति के बजाय जटिलताओं एवं विषमताओं का वर्णन-संक्षेप में, श्री अज्ञेय के अनुसार नयी कविता की वस्तु-निष्ठ विशेषताएँ हैं। शास्त्रीय मान्यता-प्राप्त कला-पक्षपात वैशिष्ट्य के विरोध में नये अलंकार, नये बिम्ब, नये प्रतीक इत्यादि से लेकर नये गढे शब्दों की योजना भी इन कवियों ने की है। इस प्रवृन्ति को परम्परा के प्रति अनास्था की उपाधि दी गयी है। इस विषय की एक पृथक अध्याय में विस्तृत चर्चा की गयी है।

12. दिगम्बर कविता का विवेचनः हिन्दी के समान तेलुगु में भी सन् 1940 से लेकर, अर्थात् स्वातन्त्र्योत्तर काल से, राजनीति का क्षेत्र भृष्टाचार से परिव्याप्त हो गया था। अपार जनता के प्राणों से मोल ली गयी स्वतन्त्रा के आंदोलन में भाग लेनेवाले नेताओं के हाथों राष्ट्र के शासन का सूत्र आ गया था। नेहरूजी के प्रधान-मंत्री के नेतृत्व में प्रायः यावत भारत में कांग्रेस की सरकार जम गयी और शनैः शनैः बन्धुप्रीति, उत्कोच, आश्रित पक्षपात जैसे भृष्टाचार बढने लगे। एक तरफ़ दारिद्र्य भूख, रोग, अविद्या बढते गये, तो दूसरी तरफ़ एक अभिजात वर्ग बना-ठना सुख-विलासमय जीवन चलाते हुए लखपति से करोड-पतियों की टोली में स्थिरता पाने लगा। बेकारी, दहेज प्रथा, अज्ञान-जन्य सामाजिक कुप्रथाएँ, ग्रामीण दुरवस्था इत्यादि से स्पन्दित युवक-कवि सामाजिक सुधार की कामना से प्रेरित हो कर प्रगतिशील कविताओं की रचनाएँ करने लगे। कहा गया है कि तेलुगु में इसी को अश्युदय कविता [25] कहते

25) तेलुगु में अभ्युदय कविता का नामकरण श्री श्री की "महाप्रस्थान" कविता से प्रयुक्त होने लगा है। इनके पीछे चलते हुए मार्क्सवादी विचार-धारा पर आधारित कविताएँ अभ्युदय कविता की कोटि में मानी जाने लगी हैं। एक प्रकार से अभ्युदय कविता (प्रगतिवादी कविता) के पितामह भी श्री श्री हैं और नाम देनेवाले भी वे ही हैं। श्री आरुद्र, श्री पठाभि, श्री अनिसेट्टी, श्री सोमसुंदर, श्री कुंदुर्ति इत्यादि के नाम अभ्युदयवादी कवियों की श्रेणी में आते हैं (दे. उद्यम-दर्शनमु,) ले.डॉ. मुदिगोंड शिवप्रसाद, पृ.-147

हैं। श्री श्री (श्रीरंगं श्रीनिवासराव) का अनुकरण करते हुए आरुद्र, बेल्लंकोंड रामदास, बैरागी, अजंता, सोमसुंदर, बालगंगाधर तिलक, कुंदुर्ति जैसे कवियों को इसी कोटि में रखा जाता है। परंतु जैसे कि इसके पूर्व कहा जा चुका है, ये रचनाएँ साक्षर जनता की पहुँच तक मात्र रह गयीं। इनका मूलभूत उद्देश्य सामाजिक चेतना लाकर धनाढ्य वर्ग अथवा पूँजीपति-वर्ग के विरुद्ध संघर्ष द्वारा समसमाज स्थापित करना था, तो निरक्षर जनता में इन रचनाओं का असर ही क्या होता? फ़िर भी अपना उद्वेग-शमनार्थ लिखे बिना कवियों से बैठा नहीं जा सकता। एंग्री यंगमैन वाले विदेशी साहित्यि आंदोलन का ढाँचा बँगला साहित्य ने पकड़ा और कोपोद्रिक्त युवक कोपोद्रिक्त युवकुलु (तेलुगु) अनुवाद शीर्षक से कुछ अनुवादों एवं निबन्धों के द्वारा प्रचार किया। ये छे कवि, जिन्हें बाद में दिगम्बर कवि कहा जाने लगा, वे उस साहित्य से प्रभावित हुए। उनके उद्वेगपूर्ण ह्दय पर ऐसा असर पड़ा कि किसी नयी प्रक्रिया द्वारा वे लोगों को जागृत करने की अपनी इय्छा को और दृढ़ बनाते गये। नामी-गरामी आत्मीय कवि-मित्रों के घर में यदा-कदा वे मिलने लगे और परस्पर विचार-विनिमय भी करने लगे; श्री अरिपिराला विश्वं, श्री भाग्यनारायण मूर्ति, श्री कुंदुर्ति इत्यादि कवियों के घर में हर इतवार को समाविष्ट हो कर उस अवधि में लिखी गयी अपनी कविताएँ पढने लगे; तब तक श्री केशवराव की "उदइंचनि किरणालु" वाली पुस्तक (उदित किरणें) प्रकाशित हो गयी थी। श्री केशवराव का नाम दिगम्बर कवि के रूप में नग्न मुनि है। नग्नमुनि, ज्वालामुखी, निखिलेश्वर और चेरबंडराजु एक ही विचार श्रेणी के रहे। उन्होंने एक दिन के समावेश के उपरान्त तय कर लिया कि किसी नयी प्रक्रिया का प्रारंभ कर लेना चाहिए। लेकिन किसी ने उसका नेतृत्व स्वीकार नहीं किया।

हैदराबाद के अबिड्स् में स्थित ओरियंटल होटल में वे मिलने लगे। शाम के 4-5 बजे जाकर रात के 10-11 बजे तक चाय पर चाय के प्याले का मजा लेते हुए वे चर्चाएँ भी चलाते और अपनी लिखी कविताओं को परस्पर पढ़ कर सुनाते रहते। इस प्रक्रिया की कविता को प्रोत्साहित करनेवाली प्रमुख मूल-प्रेरणा सन् 1965 में विदेशों के बीट्नर्स और कलकत्ता के "हंग्री पोयट्स" (भूख के कवि अथवा भूखे कवि) हैं। ये कवि यह नहीं मानते कि उनकी कविता के पीछे उक्त प्रेरणएँ रही थीं क्योंकि इन में से एक दो का अंग्रेजी साहित्य से परिचय नहीं के बराबर रहा; और अंग्रेजी विश्व साहित्य का प्रधान द्वार है। श्री चेरबंडराजु के विषय में यह सत्य है कि अंगोजी का उनका ज्ञान नहीं के बराबर

है; परंतु शेष के बारे में यह सही नहीं है। हो सकता है कि शेष कवियों पर यह प्रभाव पड़ा हो और फिर उनके द्वारा थोड़ा-बहुत चेरबंडराजु पर भी पड़ा हो।

13 नामकरण: 'दिगम्बर कवि' नामकरण स्वयं उन्हीं का अपना है -- उनमें से एक महास्वप्न ने उस नाम का प्रस्ताव किया जिसे शेष पाँचों ने मान लिया था। इन्होंने यह भी निर्णय कर लिया था कि अपने छहों के नाम पर कविता-संकलन निकलें और अन्य कवियों को अपने में मिला लेने की बात बाद में सोची जाय।

दिगम्बर कविता कोई आन्दोलन नहीं, भले ही उसके ये छे कवि यह घोषणा कर चुके थे और विश्वास भी प्रकट कर चुके कि तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों के संदर्भ में इस प्रकार की कविता अनिवार्य है। संरव्या में ये छे ही रह गये और आज दो टोलियों में बटँ गये हैं। एक श्री चेरबंडराजु मर गये और तीन की एक टोली और दो की एक टोली बन गयी, जिसका कारण वैचारिक विभेद है। समय के साथ मानव के विचारों में एवं चिंतन-प्रक्रिया में बदलाव आते हैं। एकसमान अथवा निकटतम विचारवाले अपने को एक समूह में व्यवस्थित करते हैं, उनमें से कोई विभेद करता हो, तो वह अलग हो जाता है या अलग कर दिया जाता है। इनके विषय में भी सच्याई यही है न कि वैयक्तिक और कोई कारण।

इसके पूर्व कहा जा चुका है कि दिगम्बर कवि सामाजिक दुस्थिति का मूलकारण राजनीतिक परिस्थितियाँ मानते हैं। किंतु यह बात उनमें से एक मात्र ने प्रत्यक्ष में घोषित की जिसका नाम अज्ञात रखा गया। उसने 'तेलुगु वेलुगु' नामक पत्रिका में एक निबंध भी लिखा कि दिगम्बर कवि राजनीति में बहते जा रहे हैं। झट ही शेष कवियों ने उसका उत्तर देते हुए उसका भंडाफोड़ कर एक निबंध प्रकाशित किया। फलत: उनका साहित्यिक स्नेह-बन्धन दो खण्डों में बँट गया। [26]

14 'विरसं' का अविर्भाव: एक बात तो सत्य है कि दिगम्बर कविता ने विरसं (विप्लव साहित्यकारों का संघ) को जन्म दिया। सन् 1970 के प्रारंभिक दिनों में विशाखापट्टणम में श्री श्री की षष्टिपूर्ति-उत्सव के अवसर पर वहाँ के विद्यार्थियों ने आये हुए लेखकों को एक चुनौती दी थी कि **केवल कलम को हाथ में सँभाले रहने से क्या होगा? बंदूक को भी दूसरे हाथ में ले लेना चाहिए।** किसानों का आन्दोलन

26) दे. 'ना जीवित रेखलु' ले. श्री चेरबंडराजु पृ.-11

तब पूरे जोर पर था। "हे लेखक लोगो ! आप किस तरफ़?" --- इस सवाल के साथ कुछ पैंफ्लेट फेंक दिये गये थे। तब तक श्री सुब्बाराव पाणिग्राहि कलम और बंदूक, दोनों हाथों में थामे संघर्ष अथवा क्रांति चला रहा था। श्री कोडवटिगंटि कुटुंबराव, राविशास्त्री इत्यादि विप्लव साहित्यकारों के संघ में संगठित हुए। दिगम्बर कवियों ने भी उसमें भर्ति होने की संसिद्धता व्यक्त की। [27]

15. 'अरसं' का अविर्भावः उसी वर्ष 'विरसं' की होड़ में 'अरसं' का अविर्भाव हुआ। 'अरसं' का अर्थ अभ्युदयवादी साहित्यकारों का संघ है। इसके सदस्य बहुतायत में चलन-चित्र के नायक पात्र, सरकारी कार्य-कर्ता और प्रगतिशील कविता लिखनेवाले तिरोगामी प्रवृत्तिवाले लेखक हैं। एक प्रकार से 'विरसं' और दिगंबर कवियों को धक्का देने तथा अपने अस्तित्व को बनाये रखते हुए स्वयं को सुरक्षित रखना इसके सदस्यों का उद्देश्य रहा। 'विरसं' के सदस्यों पर सरकार की निगरानी रहा करती थी और मीसा (MISA) का सहारा लेकर, किसी कारण बिना, उन्हें आजीवन जेल में बन्द किये रखा जा सकता था। 'अरसं' के सदस्यों के सम्बन्ध में ऐसे खतरे की संभावना नहीं कयों कि ये सरकार के विरुद्ध क्रिया-कलाप नहीं चलाते जब कि 'विरसं' के सदस्य साहित्य के द्वारा जनता को क्रान्ति की उत्तेजना देने के अतिरिक्त क्रांति में भाग लेने की स्वीकृति भी दे चुके होते थे। श्री वरवरराव और श्री चेरबंडराजु को सरकार ने सालों कैद में बन्द कर रखा; आपात स्थिति ने श्री चेरबंडराजु को कैदखाने में बन्द रखने का सहारा दिया और श्री वरवरराव को उनकी निर्भीक सच्चाई ने।

16.परम्परा-विरोधः वास्तव में दिगम्बर कविता विप्लवात्मकता की पुत्री है। परम्परा को तोड़ना इसकी प्रवृत्ति है। क्या कला के क्षेत्र में, क्या संस्कृति के नाम पर, क्या राज-नीति में और क्या साहित्य में, सर्वत्र परम्परा अथवा प्राचीन प्रथा (TRADITION) के नाम पर -- पुरानेपन को बनाये रखकर प्रगति को स्तम्भित रखना मानसिक रूप से बूढ़ों की चेष्टा है; पुराना सभी कुछ वांछनीय नहीं है। वांछनीय की हिफ़ाज़त करते हुए अवांछनीय को निकालना प्रगति है। अपने प्रथम संकलन की प्रथम कविता द्वारा (निखेलेश्वर की आत्मयोनि) अवांछनीय तिरोगामी सब कुछ का मूलोच्छेदन करने की माँग करते हुए दिगम्बर कवि अपनी कविता की प्रस्तावना प्रस्तुत करते हैं।

---

27) --- वही --- पृ.-12

नन्नय्या को नरेंद्र की देह में ही सोने दो मत जगाओ
गला घोंटकर गढ़े में खींच लेगा।
प्रबंधांगनाओं की जाँघें ताड़ के धड़ हैं
छूने पर पैर तोड़ दो
पंडित श्रेष्ठ ! रिकार्ड के-से मुँह न घुमाओ
नव सृष्टि को लात न मारो
भाव कवियों के नपुंसक-हाव-भावों को चुनौती है हे अभ्युदय कवि!
अफ़ीम खाकर सो गये हो
नयागरा जलप्रपात में - कूद पड़ न सके हो भैय्या
गुड़बै। आप सब को सलाम वा लेकुम
गद्य नहीं है
स्वादहीन चपाती का-सा जीवन
फ़ाईलों के बीच में पिसा कागज़ी भूत
तुमने आरोहण किया बिगबेन ज्वलामुखी पर[28]

यह प्रारंभिक कविता साहित्य रचना को, खासकर काव्य- रचना को, लक्ष्य करके कविता करनेवालों में, वास्तविक मानसिक सुधार की आवश्यकता बताने केलिए की गयी है।

दिगम्बर कविता वचन (गद्य) कविता है। वचन कविता का प्रारंभ इसके बहुत ही पूर्व हो चुका था। उन कविताओं के पाठक व श्रोता वे लोग रहे जो उत्पादन के साधनों को नियंत्रित करते थे। दूसरे शब्दों में उत्पादकों या श्रमिकों के अधिपति थे, गद्य रूप में होकर भी यह कविता श्रमिकों तक नहीं पहुँचती थी। सभा-सम्मेलन या समावेश-गोष्ठियाँ चला करे भी, तो वहाँ श्रमिक अथवा उत्पादक अनुपस्थित रहते थे। तथाकथित "येंकिपाटलु" और श्री श्री प्रभृति कवियों के तथाकथित श्रमिक-गीत उनकी पहुँच से दूर थे। दिगम्बर कवियों ने इसलिए यह जान लिया कि गद्य लिख कर भी 'रमणीय अर्थ' एवं शब्द-सौंदर्य को साधनेवाले पूर्व के अभ्युदय कवि सामाजिक प्रयोजन को साध न सके। इसका कारण उनके विचार में गद्य रूप कविता होने पर भी सामग्री की अपटुता है। उन्होंने

28) नन्नय्या तेलुगु का आदि कवि है जिसने संस्कृत के महाभारत के ढाई पर्वोंका (आदि, सभा एवं अरण्य [illegible] का आधा) तेलुगु में अनुवाद किया। वे राजराज नरेंद्र के दरबारी कवि थे। प्रबन्धांगना से मतलब प्रबन्ध काव्यों में 'नायिकाओं" से है जिनका वख-शिख नर्णन श्रृंगार की अति से भरा है। 'पंड़ित श्रेष्ठ' प्राय:श्री विश्वनाथ सत्यनारायण से आशय है। 'अभ्युदय कवि' कहने में कवि श्री श्री उद्दिष्ट है। 'भैय्या' श्री कुंदुर्ति है।

इसलिए हेयतापूर्ण वस्तु-सामग्री, असुंदर वर्णन-पद्धति तथा श्रवण-असुखदायी शब्द-सम्मेलन, अश्लीलता-पूर्ण साम्यमूलक अलंकार, बिंब, प्रतीक इत्यादि को अपना लिया। इसे अपने वस्त्रों को फ़ाड़कर घड़ा चौराहे पर फोड़कर लोगों की दृष्टि आकृष्ट करने का प्रयत्न नहीं समझना चहिए। रमणीयता की सजावट में लैस अकविता के स्थान पर विकारपूर्ण आकृति में सजी कविता है, यह दिगंबर कविता। इसी विकृति में उसका आकर्षण है क्योंकि मानवता के मूल्यों से आपूर्ण है। सभी दिगंबर कवियों की शैली एकसमान नहो कर भी लिखने के लक्ष्य में साम्य है, मानवतावादी सामाजिक चेतना सब में है, क्रांति की भावना भी समान है, उव्देग एवं आवेश, सब में सम मात्रा में मिलते हैं; किसी में मार्क्सवाद मिलता है, परंतु सब में मानवतावाद का धरातल सामान्य है।

17) गाली-गलौज का विवादः बहुत समय पूर्व से तेलुगु साहित्य में गाली देने की कवियों में प्रथा थी। वैसी कविता को 'तिट्टु कवित्वमु' नाम दिया गया है। हिन्दी में उसे 'गाली-गलौज़ की कविता' कह सकते हैं। कूचिमंचि जग्गकवि तेलुगु में ऐसी कविता केलिए प्रसिद्ध हैं। श्री अवंत्स सोमसुंदर दिगम्बर कवियों को गालियाँ देनेवाले कवि कहते हैं; [29] पाद टिप्पणी में उक्त पुस्तक के लेखक दो तीन पंक्तियों द्वारा गाली-गलौज़ की कविता और दिगम्बर कविता का अंतर ठीक ही स्पष्ट करते हैं कि कूचिमंचि जग्गकवि की कविता पढ़ते समय मालूम हो जाता है कि उस कवि को क्रोध आ गया; **दिगम्बर कवियों की कविता को पढ़ने पर पाठक को क्रोध आ जाता है।** [30] **क्रोध किसलिये? किसपर? सामाजिक कुव्यवस्था के कारण; उस कुव्यवस्था के उत्तरदायी -- ठेकेदारों पर।**

18) अश्लीलता का आरोपः दिगम्बर कवियों का मुख्य साधन अश्लीलता है। इसके पहले अश्लीलता की परिभाषा करने की आवश्यकता की चर्चा की गयी थी। **यौन-भावना अथवा वासना का जो कोई भी अंग मानव शरीर का हो, उसका प्रस्ताव अश्लील माना जा सकता है।** संस्कृत साहित्य में स्त्री-पुरुषों के ऐसे अवयवों का वर्णन अति विस्तार से हुआ है। क्या, जयदेव के "गीत गोविन्द" में, विशेषकर मेघसंदेश में, आज सर्वत्र सुनाई देनेवाले "वेंकटेशसुप्रभात" में अश्लीलता के चिन्ह बिछे नहीं पड़े है? साधारणत; स्त्री-पुरुषों के जननावयवों का उल्लेख अश्लीलता

29) दे. तेलुगुलो कविता विप्लवाला स्वरूपं ले. श्री वेल्चेरु नारायणराव पृ.-151

30) दे. तेलुगुलो कविता विप्लवाला स्वरूपं ले. श्री वेल्चेरु नारायणराव पृ.-151

की चरमसीमा माना जाता है। संस्कृत भाषा में अश्लील प्रयोग मर्यादित माने जाते हैं। किंतु देश की आज की प्रान्तीय भाषाओं में उनकी चर्चा अश्लील मानी जाती है। संस्कृत में श्रृंगार पर भक्ति का आवरण है, नग्नता पर कला या संस्कृति की मुहर है। प्रान्तीय भाषाएँ मानों वयस्क स्त्रियाँ हैं, उनमें वास्तविकता के नग्न दर्शन का नामकरण अश्लीलता है। काव्यशास्त्रज्ञों ने काव्य-दोषों की चर्चा की, बल्कि अश्लीलता की चर्चा नहीं की थी। संसार में आज जो अश्लीलता है, वह कल मर्यादित मानी जायेगी और आज जो मर्यादित माना जायेगा, वही, संभव है, कल अश्लील माना जाय। इतना ही नहीं, कुछ प्रांतों में जो शब्द अश्लील अर्थ का स्फुरण कराते हैं, वे कुछ अन्य प्रातों में अश्लील नहीं हैं। बात विपरीत दशा में भी यही है। इसलिए अश्लीलता का निर्धारण करने केलिए प्रसंग का अध्ययन करना आवश्यक होता है; फिर भी उसमें अश्लील अंर्थ की अवस्थिति का निर्णय करना होता है और अत: वैसे प्रयोग की आवश्यकता के कारण का अन्वेषण करना होता है।

दिगम्बर कवियों ने आखिर अश्लील का आश्रय क्यों ले लिया? उनके अपने द्वारा दिये गये नामकरण में ही यह संलीन है कि वे दिगम्बरता या नग्नता के साथ-कविता के क्षेत्र में अवतरित हुए थे। उनका सब कुछ वर्णन नग्नतापूर्ण होता है। वे छिपाव-दुराव से दूर हैं। **सत्य का उद्घाटन करते समय सुंदर से हाथ धोना पड़ेगा, तो भी सच्चाई के साथ काम लेना होगा। उनका लक्ष्य शिव है। शिव केलिए सुन्दर को त्यागना बुरा नहीं है। सुन्दर की रक्षा केलिए सत्य को तिलांजलि देना या छिपाना ही बुरी बात है।**

कुछ भी हो, दिगंबर कविता उसके पूर्व के सभी कविता-रूपों पर, विशेष कर निकटपूर्व अभ्युदयवादी कविता पर धावा बोलती है।

19) विषय का महत्व और इस शोध-कार्य की मौलिकता:

अब तक के विवरण-द्वारा इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि हिन्दी में नयी कविता और तेलुगु में दिगंबर कविता ऐसी नव्यतम धाराएँ हैं जिन पर बहुत कम चर्चा की गयी है, विशेषकर तेलुगु की दिगम्बर कविता के सम्बन्ध में, और दोनों अभी विवादास्पद हैं। साधारणत: कवि लोग रचनाएँ करते हैं और विद्वान लोग उनकी उपादेयता का भिन्न-भिन्न कोणों से परीक्षण कर मूल्यांकन करते हैं। गुण-दोष-विचारण वास्तव में आलोचकों के जिम्मे होता है। परंतु दोनों भाषाओं के इन

कवियों ने खुद अपने विचार-विधान एवं रचना-प्रक्रिया के बारे में बहुत कह दिया। मानव की यह सहज प्रकृति है कि अपने कार्य में उसे गलती कभी महसूस नहीं होती। कवि लोग भी आखिर साधारण जीव हैं। अतः ये कवि अपने लेखनों के विषय में बुरा क्या कहेंगे? दोष क्या पायेंगे? नये कवि अपने पूर्व के कवियों पर विद्रोह करते हैं और दिगम्बर कवि अपने पूर्व के ही नहीं, समाज के इने-गिने गण्य-मान्य व्यक्तियों-क्षेत्रों पर भी विद्रोह करते हैं। इसी कारण से दोनों भाषाओं की इन नव्यतम धाराओं का अध्ययन-विश्लेषण बड़े महत्व का मालूम पड़ा और यह शोध-कार्य स्वीकार किया गया है।

यहाँ इस अवसर पर इतना नम्र निवेदन करना आवश्यक है कि आज तक नयी कविता पर हिन्दी में आलोचनात्मक अध्ययन काफ़ी मात्रा में हुआ है और हो भी रहा है; तेलुगु की दिगम्बर कविता पर एक ही सज्जन श्री प्रसाद ने विशेष अध्ययन किया है और उन्हें शोध-प्रबंन्ध-रूप उस कार्य पर नागार्जुन विश्वविद्यालय ने पी. एच. डी. की उपाधि प्रदान की है। यहाँ-वहाँ पत्र - पत्रिकाओं में लघु निबन्ध-मात्र दिगम्बर कविता पर प्रकाशित हैं। वे भी समग्र एवं कविता के सभी अंगों का संपूर्ण विश्लेषण करने के काबिल सिद्ध नहीं हुए हैं। उन छहों कवियों में से किसी एक की संपूर्ण रचनावली पर भी अध्ययनात्मक निबंध शायद आज तक अप्रकाशित है। कारण कुछ भी हो सकते हैं यथा, उनकी कविता को स्वीकृति देने की अनिच्छा, उनकी कविता में अश्लीलता, अरुचि की भरमार को देखकर, उनका भय कि कहीं वे इन आलोचकों पर टूट पडेंगे। अब रही इन दोनों प्रकार की कविताओं के तुलनात्मक शोध-परक अध्य्यन की बात। आज इस विषय को लेकर शायद ही किसी ने शोध-कार्य किया हो। इसलिए प्रस्तुत निबंध की आधार सामग्री नहीं के बराबर है। दोनों भाषाओं में अलग-अलग जो विरलता से प्राप्त सामग्री है, उससे इस शोध-कार्य में जो सहायता पहुँची है, वह भी बहुत कम्म है। इसी से प्रस्तुत शोधकर्ता को तेलुगु की दिगम्बर कविता का आलोचनात्मक अध्ययन करने का कष्ट भी करना पड़ा और फ़िर हिन्दी की नई कविता से तुलनात्मक अध्ययन करना पड़ा। इस प्रकार यह शोध-प्रबन्ध अपने आप में पहला है, यों शोधकर्ता नम्र निवेदन करता है।

प्रस्तुत अध्ययन द्वारा जो निष्कर्ष आगे के अध्यायों में निकाले गये हैं, उनसे भारत की जनता में भाषाई भिन्नता के होते हुए थी चालू विचारात्मक समता एवं भावात्मक अनुभूति की एकता का अवश्य पता चल जायेगा।

हिन्दी भाषी प्रान्तों की जनता ने दिगम्बर कवियों तथा उनकी कविता के बारे में सुना होगा। यह शोध-प्रबंध ऐसे व्यक्तियों को विस्तार से उनके बारे में जानकारी लेने का अवसर भी सम्पन्न कराने का प्रयास कर सकेगा ताकि वे नये सिरे से अपने विचार व्यक्त कर सकें।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी की नई कविताः

तारसप्तक के कवि

नयी कविता एवं निकटपूर्ववर्ती काव्य-साहित्यः

1) स्वतंत्रतापूर्व भारत में प्रगतिशील कविता अपने पूरे वेग से जोर पकड़ रही थी, कि नयी कविता अथवा प्रयोगवाद का अविर्भाव हो गया। बीसवीं सदी की चार दशाब्दियों के पश्चात् जनता के जीवन में राष्ट्रीय आन्दोलन एक अनिवार्य अंश-सा बन गया था। अंग्रजों की दमन नीति जिस पैमाने से बढ़ने लगी थी, जनता में साविनय विदोह की भावना भी उसी हिसाब बद्रती से बढ़तीजा रही थी। काव्य के क्षेत्र में उस समय तक निराशा एवं पलायन की प्रवृत्तियाँ छायावाद एवं रहस्यवाद की संयुक्त धाराएँ बढ़ने लगी थीं। राष्ट्रीय चेतना भी लगातार कविता के क्षेत्र में युगपत्र क्रियाशील थी। परन्तु गद्य की रचनाओं में एक तरफ़ अनुवाद-कार्य हो रहा था और दूसरी तरफ़ भारतीय संस्कृति अथवा इतिहास के वैभव के दर्शन का कार्य चलता था। इस तथ्य की पुष्टि में स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रेमचंद और सुदर्शन जैसे राष्ट्रीयवादी, बुद्धिवादी एवं मानवता-वादी लेखकों में जीवन की बहुरूपता के साथ-साथ यथार्थ व आदर्श का सुयोग्य मिश्रण पाया जाता है। यथार्थ का पल्ला न छोड़ते हुए ही वे आदर्श का भवन खड़ा करना चाहते थे। गाँधीवादी विचार-धारा से उद्भूत राष्टीयवाद का उन पर यह प्रभाव सहज था। बाद की अपनी रचनाओं में प्रेमचन्द विशुद्ध यथार्थ का चित्रण करने लगे क्योंकि आपने जीवन की वास्तविकता का विश्वात्मक परिस्थितियों से परिचया प्राप्त कर लिया था।

इसी अवसर पर मानों कविता के क्षेत्र में नयी कविता का आविर्भाव हो गया जो एक क्रांतिकारी प्रक्रिया है, नयी कविता का आविर्भाव आकस्मिक है।

'सन 1941 में अखिल भारतीय लेखक-सम्मेलन की आयोजना की गयी थी। तब छोटे फुटकर संग्रह छापने के बजाय एक संयुक्त संग्रह छापा जाये, क्योंकि छोटे-छोटे सग्रहों की पहले तो छपाई एक समस्या होती है, फिर छपकर वे सागर में बूँद-से खो जाते हैं' [1]

---

1) दे. तारसप्तक (सं.अज्ञेय) विकृति और पुनरावृति, (पथम संस्करण की भूमिका)

ऊपर की सफ़ाई उतनी ठीक नहीं जँचती, आर्थिक समस्या का एक परिष्कार अवश्य संयुक्त संस्करण हो सकता है। योजना का मूलाधार आर्थिक दृष्टि से सहयोग हो सकता है। 'छपाई की समस्या' से यदि यही अर्थ उद्दिष्ट हो, तो बात सही है; परन्तु 'छपकर भी वे सागर में बूँद-से खो जाते हैं, का कोई औचित्यपूर्ण अर्थ नहीं निकलता। पन्त, महादेवी, निराला जैसे कई कवियों ने अपनी खंडकविताओं के संकलन निकाले थे जिनका मूल्य बूंदों से बना रत्नाकर-सा आज भी चालू है।

दूसरी बात विचारणीय यह है कि नयी कविता का राष्ट्रीयवाद, छायावाद व रहस्यवाद की कविता से विरोध है। राष्ट्रीयतावादी कविता पर सामाजिकता का आरोपण है और छायावादी-रहस्यवादी कविताओं पर 'भावुकता, कल्पना-प्रवणता, रंगीनी का अति का आरोप है।
यद्यपि प्रगतिवाद पर कोई खुला आरोप नहीं है, विशुद्ध यथार्थ की शुष्कता को स्वस्ति देना भी इन कवियों का उद्देश्य है। श्रीअज्ञेय कहते हैं कि आप 'योजना-विश्वासी' के नाम से बदनाम थे ही। बदनाम जो रहे, तो विशृंखलता आ गयी और आपने एक नयी योजनो को संस्थापित करने का साहसपूर्ण जिम्मा लिया। "तारसप्तक" के बारे में वे कहते हैं---

"ये सभी कवि एक-दूसरे से परिचित तो हैं, किन्तु एक स्कूल के कवि नहीं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए भी नहीं हैं, अभी राही हैं- राही नहीं, राहों के अन्वेषी" [2]

इसके आगे आपका वक्तव्य है--

"जीवन के विषय में, समाज और धर्म के विषय में और राजनीति के विषय में, काव्य-वस्तु और शैली के, छन्द और तुक के, कवि के दायित्वों के-प्रत्येक विषय में उनका आपस में मत-भेद है" [3]

उक्त अवतरण "तारसप्तक" के कवियों के अलग-अलग विशिष्ट व्यक्तित्व को प्रामाणित करने के विचार से उद्दिष्ट है, वे कहते हैं कि "तारसप्तक" के कवियों में गुटबन्दी नहीं है। दूसरे व तीसरे सप्तकों के सम्बन्ध में भी आपका यही दावा समझना चाहिए। काव्य के प्रति उनका **'अन्वेषी' मात्र का दृष्टिकोण उन्हें एकसूत्र में बाँध चुका है। 'अन्वेषी'**

2) दे. तारसत्पक (सं:अज्ञेय) विकृति और पुनरावृति पथम संस्करण पृ.-11
3) वही-पृ.-12

शष्द में 'प्रयोगशीलता' अन्तर्लीन है। दूसरे शब्दों मे प्रयोगशीलता का अवलम्बन कविता में नयी राहों के अन्वषण की वृति है जो सामाजिक परिवर्तनों की चेतना का परिणाम है और समसामयिक सामाजिक व्यवस्था एवं व्यक्ति के बीच के सम्बन्ध को स्वर देने की उत्कंठा, काव्यशैली में नये अलंकारों, नये बिम्बों-प्रतीकों इत्यादि का आग्रह इसमें दर्शन देता है। एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इन संकलनों के कवियों के, "तार सप्तकों" के प्रकाशन के पूर्व, काव्य-ग्रंथ अप्रकाशित थे।

सन् 1951 में दूसरा सप्तक का प्रकाशन हुआ था और सन 1959 में तीसरे सप्तक का। तीनों सप्तकों में सात-सात नये कवियों की रचनाएँ संकलित हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रथम सप्तक स्वतन्त्रता पूर्व प्रकाशन है। तारसप्तक (प्रथम भाग) और दूसरे सप्तक के बीच में आठ वर्षों की कालावधि की दूरी है और दूसरे सप्तक एवं तीसरे सप्तक के प्रकाशन के बीच में भी उतनी ही कालावधि की दूरी है। दूरी की यही समानता शायद यादृच्छिक है न कि पूर्वनिश्चित। समय के प्रवाह में विभिन्न परिस्थितियों में अन्तर का पड़ना सहज होता है। फलस्वरूप, कवियों पर उनका-संघात अवश्यंभावी होता है। इससे हर सप्तक में समाविष्ट कविता की वस्तु, भाव एवं शैली-विधान में अन्तर अनिवार्य है। परंतु 1943 से लेकर सन 1959 तक के इन सप्तकों में जनजीवन का चित्रण बहुतायत से तथा परिवेश से उत्पन्न है और विषय-वस्तु में साधारणीकरण के स्थान पर विशिष्टीकरण की प्रक्रिया द्रष्टव्य है।

2) अनुभूतिगत विशेषताएँ:- यहाँ पर नयी कविता के पीछे क्रियाशील अनुभूतिगत विशेषताओं पर थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक मालूम होता है। बहुत ही संक्षेप में सभी कवियों में सामान्य काव्यगत 'विशेषताओं' पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जाता है। ये सभी कवि वस्तुगत सत्य को प्रधानता देते हैं **और व्यक्ति में सामाजिक संघात-जन्य कुंठाओं की विशेष अभिव्यक्ति करना चाहते हैं।** इसे व्यक्तिवाद समझने की भूल नहीं करनी चाहिए, बल्कि वैज्ञानिक वास्तविकता का अभिव्यंजन-मात्र जान लेना चाहिए। श्री अज्ञेय फ्रायड़, जुंग और एड़लर के यौन-विज्ञान के विशेष अध्येता हैं और व्यक्ति-जीवन मे उसके सत्यत्व से सजग हैं। अत: उनका कलाकार कविता में उस विज्ञान के सिद्धान्तों को आदरणीय स्थान देना चाहता है। शेष कवि सहजतया (उन्हीं की लीक पर) अन्धी भेडों की भाँति चलते रहे-यों नहीं मानना चाहिए, बल्कि उस-सैद्धान्तिक सत्य को मनसा महसूस करके ही कविता में उसकी

अन्विति की थी-यों जान लेना उपयुक्त होगा। मूलत: प्रेम जीवन का सार-सर्वस्व है। इसी से संस्कृत के हमारे आलंकारिकों और क्रमागत जीव-विश्लेषक कवि-श्रेष्ठों ने श्रृंगार को रसराज मान लिया था। रीतिकालीन सभी कवि एककंठ हो इसी एक सिद्धान्त को मानों काव्य-रूप दे चुके थे। श्रृंगार के दोनों पक्ष सर्व-विदित हैं। संयोग का सुख चन्द क्षणों का होता है, वियोग के क्षण असंख्यक एवं लंबी अवधि में लटका रखनेवाले होते हैं। अत: **प्रेम की तृष्णा सदा अतृप्त रह जाती है। इसी को अतृप्त वासना, दमित इच्छा, कुंठा, घुटन आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं।** प्रेम की इस अतृप्त वासना का पक्ष व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में उसके हरेक विचार तथा क्रिया में झलकता रहता है। इसी कारण से इनकी पूर्ववर्ती कविता की वस्तु निजी वाणी में नया रूप ग्रहण कर जाती है, जैसे प्रकृति, स्त्री, पुरुष, काम-भाव इत्यादि। हर प्रसंग के अवसर पर कवि की 'स्व' की भावना व्यक्त हो जाती है। इसको कुछ आलोचक 'अहं' एवं दम्भ के नामों से अभिहित करना चाहते हैं। [4] परन्तु यह कवि का निजी व्यक्तित्व मात्र है जिससे विरहित कोई भी कवि कविता के इतिहास में नहीं दिखेगा। अनादि काल से विश्व के किसी भी भाषा-साहित्य के इतिहास में ऐसा कौन-सा कवि रहा था अथवा आगे रहेगा जो 'स्व' से खाली हो। यदि 'अहं' की भावना को 'स्व' के अर्थ से जाना जाय, तो कोई आपत्ति नहीं होगी; परंतु उसे 'दम्भ' कहना अनुचित-सा लगता है। 'दम्भ' के अवसर पर जहाँ-तहाँ दिखेंगे, तो उन पर अनिवार्यत: हमें अपनी दृष्टि प्रसारित करनी ही होगी।

नयी कविता में जीवन के जटिलतापूर्ण वैषम्य का वैविध्यपूर्ण चित्रण तो मिलता ही है। बीभत्सपूर्ण, दूषित अथवा अश्लील माने जानेवाले विषयों का भी वर्णन इस धारा की कविता की एक विशेषता है। आगे के अध्यायों में, उचित अवसरों पर उक्त विशेषताओं की विस्तृत चर्चा की जायेगी।

3) शैलीगत विशेषताएँ: नयी कविता की, शैलीगत विशेषताओं पर भी, इस अवसर पर दो बातें कहना आवश्यक है- चली आती हुई परम्परा अथवा पूर्वनिश्चित काव्यशास्त्रीय प्रथाओं पर इन कवियों की बिलकुल आस्था नहीं है। विचारात्मकता-प्रधान गद्यात्मकता नये कवियों की प्रक्रिया का माध्यम है। यदा कदा गति-लय का अभास मिल जाय, तब भी इनकी काव्य-शैली में उसे अुनद्दिष्ट ही मानना पड़ेगा। भावों को व्यक्त

4) 'हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि' ले. द्वारका प्रसाद सक्सेना,-पृ.422

करने का एकमात्र माध्यम भाषा है। फिर भी हम रोज़मर्रे की दुनिया में यह देखा करते हैं कि वक्ता बोलकर अपने विचारों अथवा भावों को व्यक्त करने के क्रम में सिर, आँखें, हाथ इत्यादि को हिलाने-डुलाने का काम किया करता है जो क्रियाएँ उसके कथ्य की संपूरक होती हैं। इसी प्रकार लेखन के क्रम में भावाभिव्यक्ति की भाषाई असमर्थता की संपूरक कुछ बातें इनके द्वारा प्रयुक्त हुई हैं, यथा विराम चिन्ह, अंक,आडी-सीधी रेखाएँ, छोटी या बड़ी से शुरू करके क्रमशः बडी या छोटी टाइप के अक्षर-क्रम को अपनाना इत्यादि।

पुराने शब्द-जाल में से निरर्थक, नीरस, भोगवाद के पोषक समझे जानेवाले शब्दों-प्रयोगों का विसर्जन एवं नई भाषा, शब्दों, बिम्ब-योजना, प्रतीकों इत्यादि का अवलम्बन नयी कविता की प्रक्रिया के कुछ अंश हैं।

ऊपर की शैलीगत रात प्रक्रिया के कारण नयी कविता में पाठक को कुछ गूढ़ता अथवा क्लिष्टता का अनुभव ज़रूर होता है; परंतु उसके अधिवाहक श्री अज्ञेय ने इसका अन्तर निम्नांकित पंक्तियों में इस प्रकार बताया है-

"जीवन की जटिलता को अभिव्यक्त करनेवाले कवि की भाषा किसी हद तक गूढ, कुछ अलौकिक अथवा दीक्षा द्वारा गम्य हो जाना अनिवार्य है, किन्तु वह उसकी शक्ति नहीं, विवशता है; धर्म नहीं आपद्धर्म है"[5]

इस से स्पष्ट यह होता है कि नयी कविता में प्रायः सब कुछ गूढ़ एवं अलौकिक भावों की अस्पष्ट भाषा द्वारा अभिव्यक्ति उद्धिष्ट है। इस सम्बन्ध में विभिन्न आलोचकों के विचारों को आगे के अध्यायों में स्पष्ट किया जागेगा। यहाँ इतना भर स्पष्ट करना आवश्यक है कि **नयी कविता में उसके लेखक पाठकों को रसास्वादन की मानों एक विशिष्ट पद्धति सिखाते हैं,** भले ही प्रेषणीयता में उन्हें भारी कठिनाई होती है।

प्रस्तुत अध्याय की इस संक्षिप्त पृष्ठ-भूमि की आवश्यकता का उद्देश्य यह है कि नयी कविता के कवियों की सामान्य काव्य- प्रक्रियाओं को ज्ञात किये बिना उनके वैयक्तिक काव्य-तत्वों का अवबोध कष्टतर हो जायेगा, फ़िर इस स्थल पर इस तथ्य का जिक्र करना भी आवश्यक

5) **दे.** "तार सप्तक" श्री अज्ञेय का वक्तव्य पृ. 273

है कि **कवि-जीवन की अपेक्षा कवियों के काव्य-जीवन को इस प्रबंध में अधिक मूल्य दिया गया है।** कवियों-लेखकों के जन्म-स्थल-सम्बन्धी विवाद, जन्मकाल-सम्बन्धी बहसें, माता-पिता, गुरु इत्यादि के समाचार पूर्णतः अर्थहीन हैं। तर्क किया जाता है कि उनके द्वारा उनकी रचनाओं पर उनके पारिवारिक प्रभाव का पाठकों को बोध हो जाता है। इसी प्रकार लेखकों पर तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक इत्यादि प्रभावों की भी चर्चा आवश्यक मानी जाती रही है। यह परिपाटी-सी हो गयी है कि हिन्दी-साहित्य का हर एक इतिहासकार पृष्ठभूमि के शीर्षक से उक्त परिस्थितियों पर विस्तृत प्रकाश डालकर अन्ततः कहता है कि उपर्युक्त परिस्थितियों के समानान्तर उसकी पूर्ववर्ती शैली की भी रचनाएँ लिखनेवाले कुछ कवि रहे हैं। प्रायः विश्व की हर भाषा के साहित्य के इतिहास में बात यही है।

4) **सामाजिकता का बोध:** उपर्युक्त सिद्धान्त की समीक्षा करना आवश्यक है। **सच्चा कवि समकालीन परिस्थितियों का उत्पादक होकर भी उनके प्रभाव से परे रहता है;** अन्यथा उसे 'द्रष्टा,' 'क्रान्तदर्शी,' 'स्रष्टा' 'ब्रह्मा का भाई' इत्यादि उपाधियों से भूषित करने का कोई अर्थ नहीं होता। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रस्तुत अध्याय में, इसी विचार से, कवि-जीवन पर कुछ न कहकर उनकी सामूहिक काव्य-जीवन की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा करने की यह योजना अपनायी गयी है। तार सप्तकों के प्रकाशन के समय तक शायद नये कवियों ने कुछ भी प्रकाशित नही किया था। शोध-प्रबंध की सीमाओं के उल्लेख के अवसर पर निवेदन किया जा चुका है कि विवेच्य वस्तु "तारसप्तकों" तक सीमित रखी गयी है और आवश्यक जँचने पर ही उनकी अन्य रचनाओं से उदाहरण दर्शाये गये हैं।

"तारसप्तक" से आशय उस शीर्षक से निकला प्रथम भाग है जिसका प्रथम संस्करण सन् 1943 में निकला था। संपादक श्री अज्ञेय रहे। सम्पादक होने के नाते पुस्तक के अन्त में अपनी रचनाएँ समाविष्ट कीं। 'सप्तक' शब्द से आशय स्पष्ट है कि कुल इस संकलन में सात कवि हैं और 'तार' शब्द द्वारा यह सूचना भी मिलती है कि ये लेखक काव्य-गगन के झिलमिलाते तारे होंगे।

प्रथम भाग में क्रमशः इन कवियों की रचनाएँ संकलित हैं: 1) श्री गजानन मुक्तिबोध 2) नेमिचंन्द्र जैन 3) श्री भारत भूषण अग्रवाल,

4) श्री प्रभाकर माचवे, 5) श्री गिरिजा कुमार माथुर 6) श्री रामविलास शर्मा और 7) सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन (स्वयं अज्ञेय)

तारसप्तक के द्वितीय भाग (दूसरा सप्तक) में क्रमशः इन सात कवियों की रचनाएँ संकलित है: 1) भवानी प्रसाद मिश्र 2) शकुन्तला माथुर 3) हरिनारायण व्यास 4) शमशेर बहादूर सिंह 5) नरेश कुमार मेहता 6) रघुवीर सहाय और 7) धर्मवीर भारती

तारसप्तक के तृतीय भाग (तीसरा सप्तक) में क्रमशः इन सात कवियों की रचनाएँ संकलित हैं। 1) प्रयाग नारायण त्रिपाठी 2) कीर्ति चौधरी 3) मदन वात्सायन 4) केदारनाथ सिंह 5) कुँवर नारायण 6) विजय देवनारायण साही 7) सर्वेश्वर दयाल सक्सना

*****

तृतीय अध्याय

दिगम्बर कविता के कवि

1. नामकरण की भ्रामकता : दिगबर कविता नाम तो ठीक है जैसे स्वच्छन्द कविता, गद्य कविता इत्यादि; परंतु **'दिगंबर कवि' शब्द भ्रामक है।** वास्तव में ये कवि साधारण नागरिकों की ही भाँति पैंट-कुर्ते जैसी कोई न कोई पोशाक पहनते हैं; न वे दिगंबर योगियों की-सी वेष-भूषा में सज्जित हैं न ही उनका जीवन-विधान योगियों-साधुओं का-सा है। संख्या में छे इन कवियों ने अपने को 'दिगम्बर कवि' घोषित कर लिया और सहज ही अपनी कविता को 'दिगंबर कविता'। वास्तव में अपनी कविता के प्रधान तत्व 'दिगम्बरता' के कारण उसके स्रष्टा होने से वे अपने को दिगंबर कवि मानते हैं जैसे कि हिन्दी में छायावादी कवि, प्रगतिवादी कवि इत्यादि।

2. अविर्भाव की पृष्ठभूमि : दिगंबर कविता आकस्मिक है; परंतु उसके **लेखकों का आविर्भाव निरन्तर संघर्ष का परिणाम है।** दिगम्बर कविता के प्रकाशन के पूर्व प्रगतिवादी अथवा प्रगति-गामी कविता का बोल- बाला था जिसे तेलुगु में अभ्युदयवादी, अभ्युदयशील कविता कहा जाता था। इसका प्रारम्भ 'श्री श्री' से माना जाता है। श्री श्री का पूरा नाम श्रीरंगं श्रीनिवास राव है। उनके 'महाप्रस्थान' काव्य ने तेलुगु साहित्य-जगत में संचलन जगाया। 'महाप्रस्थान' में मार्क्सवादी विचारधारा की कविताएँ भरी पड़ीं हैं। श्री श्री के पीछे-पीछे चलनेवाले असंख्यक कवि निकल पड़े जिनमें से कुछ प्रमुखों के नाम हैं-सर्वश्री सोमसुंदर, आरुद्र, अनिसेट्टी, श्रीरंगं नारायण बाबु, बालगंगाधर तिलक, के.वी. रमणा रेड्डी, नार्ल चिरंजीवी, बैरागी इत्यादि। इस प्रकार श्री श्री के नाम पर एक 'युग' ही चला था जिसका दूसरा नाम 'अभ्युदय युग' है। अभ्युदयवादी इन सभी कवियों का वही लक्ष्य रहा था जो हिन्दी में प्रगतिवादी कवियों का वही लक्षय रहा था। समाज में व्याप्त गन्दगी, भद्धापन, पूँजीपतियों के शोषण से फैली भूख एवं आवास-हीनता, समाज में सर्वत्र कालुष्यपूर्ण वातावरण के साथ साथ मानव में निद्रित अवांछनीय प्रवृत्तियों के जागरण के कारण होनेवाले अत्याचारों को दर्शाना था। साथ ही सामाजिक सुधार का प्रचार भी कविता में घोषित होता रहा। शोषण को निकाल भगाने का निमंत्रण देते हुए

संघर्ष की चेतना दी जाती रही; एक वाक्य में मानव को अपने अधिकारों केलिए शोषक-वर्ग से लड़ने की उसे जगाने के बीज बोना इन कवियों का लक्ष्य-सा रहा। साहित्य की एक सबल विधा कविता-द्वारा इस प्रकार मार्क्स और एंगेल्स द्वारा घोषित आदर्श समाज की स्थापना का लक्ष्य अभ्युदयवादी इन कवियों का रहा था। किन्तु साक्षर जनता का प्रतिशत ही कितना था? फिर चेतने केलिए संसिद्ध लोगों की संरव्या कैसी विरल थी? क्रान्ति एवं विद्रोह का नारा देने से क्रान्ति पनपेगी भी नहीं, मचेगी भी नहीं; क्रान्ति केलिये अनुकूल परिस्थिति बनानी चाहिये, जनता में एकतापूर्ण संगठन चाहिये, संघर्ष का संकल्प चाहिये और संकल्प को अमल करने का हठ चाहिये। इन्हीं कारणों से रूसी एवं चीनी क्रान्तियाँ सफल हुईं और साम्यवादी राज्य-व्यवस्था संस्थापित हो सकी। वह भी प्रगतिवादी अथवा अभ्युदयवादी कविता के साधन द्वारा नहीं, बल्कि परिस्थितियों के विचारपूर्ण विश्लेषण एवं उचित निर्णयों के अमल के द्वारा सम्पन्न हो पायी थी। कविता की उक्त पुकार द्वारा दुःखों का शमन भले ही सम्भव हो जाय, दुःखों का अंतो नहीं होगा। इन कविताओं ने साक्षर समाज में धूम मचायी, परन्तु जनता के कष्ट दूर नहीं हो पाये। **भावों का समंजन कष्टों का अंत नहीं है**; हाँ, व्यक्ति में अवांछनीय भावों का समंजन व्यक्ति के सुधार का काम कर सकता है, समूह के संदर्भ में यह बिलकुल अनहोनी बात है।

दिगंबर कवियों ने वैयक्तिक रूप से कटु अनुभव भोगे थे, क्लिष्टतापूर्ण जीवन बिताया था, शोषण के शिकार खुद हुए थे; परिणामतः आप खुद जागरूक थे। उनमें सामाजिक दायित्व की चेतना सौ फी सदी ठूस-ठूस कर भरी हुई थी। व्यक्ति रूप में वे कुछ करने को अवश्य विवश थे। वे इस बात के पूरे कायल रहे थे कि **समाज को बदलने का अर्थ-व्यक्तियों को बदलना है।** जब सभी व्यक्ति बदल जायेंगे, तो पूरा समाज बदल जायेगा। अतः व्यक्ति व्यक्ति को यह महसूस कराने की ओर जागरूक बनाने की आवश्यकता है कि वह फिलहाल क्या है? कैसा है? वैसा क्यों है? उसकी वर्तमान स्थिति का उत्तरदायी कौन है?-उसे क्या से क्या बनता है? यह कैसे संभव है? इस से उसे और उसके सम्बन्धियों को लाभ किस प्रकार पहुँच जायेगा? अनादिकाल से चले आते हुए साहित्य ने यही प्रयास किया था। लेकिन दिगंबर कवियों की विचारधारा एवं काव्य प्रक्रिया में ठोस भिन्नता है।

अब तक के साहित्यकारों के ध्यान में साहित्य की गतिविधियों के पीछ विभिन्न परिस्थितियाँ क्रियाशील रहा करती हैं यथा सामाजिक परिस्थितियाँ, राजनैतिक परिस्थितियाँ, अर्थिक परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, धार्मिक परिस्थितियाँ इत्थादि। **दिगबर कवियों के विचार में किसी व्यवस्था के निर्माण में राजनीतिज्ञ लोग ही सभी क्षेत्रों का नेतृत्व किया करते हैं। राजनीति आज्ञापक है?** (Politics at Command) यह सूत्र सब की सब व्यवस्थाओं में आधिपत्य किया करता आया है।[1]

उक्त सूत्र से दिगम्बर कविता का आविर्भाव हुआ। जब राजनीति सब तरह से भ्रष्ट हो जाती है, तब सभी क्षेत्र पतित दशा में पहुँच कर भ्रष्टता की स्थिति प्राप्त कर जाते हैं। इस परम सत्य से परिचित कराना ही मानों दिगम्बर कवियों का ध्येय है। उनसे यह आशा तो नहीं की जा सकती कि समाज में चालू भ्रष्टाचारों का वे कोई परिष्कार सुझावें, समाज को सजग कराना मात्र उनका स्पष्ट उद्देश्य है। एक बार समाज चेत जायेगा, तो सहज ही व्यक्तियों का संगठन हो जायेगा, समाज अपने कर्तव्यों का निर्धारण भी कर लेगा और भ्रष्ट समाज को सुधारने का प्रयास भी करेगा। प्रगतिवादी कवियों ने भी इसी सामाजिक कर्तव्य का कवि-कर्म निभाया था; परंतु उनकी रचनाओं में वह आग न थी जो होनी चाहिये थी, वह तड़प तो थी। जो चुनी हुई जाति-परक दुर्दशा 'भिक्षुक', 'विधवा', इत्यादि मर्मभेदी कविताओं में थी, वह तड़प पाठकों की समवेदना के समन्वय केलिए मात्र क्रियाशील थी, उनमें सामाजिक कर्तव्यों की चेतना को उद्दीप्त करने की सामर्थ्य नहीं थी। इसी विचार से **वर्तमान कलुषित व्यवस्था के निर्मूलन की माँग एवं सायुध क्रांति मात्र से समसमाज की स्थापना का प्रतिपादन करते हुए दिगंबर कवियों का आविर्भाव हुआ था।** उनके 'विरसं' (क्रांतिकारी लेखक संघ) में सदस्य होने का निर्णय भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है।

3) दिगम्बर कवियों का संगठन : दिगंबर कवियों के व्यक्ति-जीवन की अपेक्षा उनके संगठन पर थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक है। परस्पर परिचय एवं मित्रता की नींव पर इन कवियों का संगठन हुआ था। किसी का असली नाम वह नहीं है। चेरबंडराजु का असली नाम 'बालनरसिंहं' है, निखिलेश्वर का के यादव रेड्डी, नग्नमुनि का केशवराव ज्वालामुखी का राघवाचारी, महास्वप्न का के. वेंकटेश्वरराव और मैरवय्या

1) दे. 'उदयं' दैनिक (तेलुगु) दिनांक -29-4-90 पृ.-6

का नाम भास्कर रेड्डी है। ये सभी किसी साहित्यिक मित्र के घर या हैदराबाद के ओरियंटल होटल में हर इतवार को मिलते और अपनी लिखी कविताओं को पढ़कर विचारों का आदान-प्रदान किया करते थे। इनमें से कई को नव्यतम विदेशी साहित्य प्रक्रियाओं अथवा कम से कम अंग्रेजी भाषा से भी परिचय बहुत कम था। केवल 1965 के बीटनर्स और कलकत्ता के 'एंग्री पोयटस' (भूखे कवि) मात्र ने उन्हें प्रेरणा दी थी। तीन वर्ष भर में दिगंबर कविता एक आन्दोलन के रूप में चला और राजनैतिक व्यवस्था के कारण उसे रुक जाना पड़ा।

4. मूल प्रेरणाः दिगंबर कवियों में दबी हुई आग की मूल-प्रेरणा आम जनता की दुस्थिति है, समाज में असमान व्यवस्था है, धनिकों के द्वारा दरिद्रों पर होनेवाले अन्याय हैं, मध्यवर्गीय जनता की विवशता है, थोडी संख्या के लोगों के हाथों में इस पृथ्वी पर चलाये जानेवाला आधिपत्य है, एक वाक्य में यह वर्तमान व्यवस्था है जिसका वास्तविक मूलकारण चालू राजनैतिक ढाँचा है।

5. संकलन और भूमिकाएँ : अपने तीनों प्रख्यात दिगंबर संकलनों की उन्होंने तीन संयुक्त भूमिकाएँ लिखीं जिनका कथ्य जान लेना आवश्यक होगा क्योंकि उनकी कविता की मूल-प्रेरणा को भली-भाँति समझ लेने तथा उनकी स्फूर्ति एवं जोश का मूल्यांकन करने में भी इनसे बड़ा उपकार होगा।

6. प्रथम संकलन : सन् 1965 को प्रकाशित अपने प्रथम संकलन व्दारा ये लोग एक नयी सदी का निर्माण करना चाहते हैं। इनके अनुसार यह सेक्स का ग्रंथ नहीं है, राजनीति का भी ग्रंथ नहीं है, इस देश के,- इस भूखंड के-साँस लेनेवाले हर व्यक्ति केलिए अपार व्यथा का अनुभव करते हुए उसके भविष्य केलिये फूट-फूट कर पागल रोना रोते हुए अभिव्यक्त कविता है यह।

उपोद्घात-युक्त, प्रथम संकलन में इन कवियों के उद्देश्य, स्फूर्ति, जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण, व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्धों पर उनके विचार, कविता की अपनी अवलम्बित प्रक्रिया का स्पष्टीकरण आदि विभिन्न तथ्य हमें अवगत हो जाते हैं। व्यक्ति में सचेतनता, आत्मस्फूर्ति, वैयक्तिक अस्तित्व में स्वातन्त्र्य की रक्षा, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में प्रेम-मूलक सम्बन्ध तथा उसके द्वारा सामाजिक सुसंगठन की आकांक्षा से प्रेरित इन कविताओं में वर्तमान व्यवस्था में वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप से मानव समाज में परिव्याप्त असन्तोष, खीज और आन्दोलन की अभिव्यक्ति गाढ़ है।

7. द्वितीय संकलन : सन् 1966 में, करीब प्रथम संकलन के प्रकाशित होने के डेढ़ वर्ष बाद द्वितीय संकलन प्रकाशित हुआ था। प्रथम संकलन अगर एक आशा भरा प्रयोग है, तो द्वितीय संकलन विश्वास भरी घोषणा है। वे इसमें अपनी कवि-प्रवृत्तियों का संकेत देते हैं कि मानव-मात्र से प्रेम उनका लक्ष्य है। सत्य का उन्मीलन करते समय वे विशृंखल हो, क्रान्ति-कारी बन कर नव समाज के सृजन एवं उसके अभ्युदय केलिए निरन्तर क्रियाशील रहेंगे। आँध्र-प्रदेश को वे कीचड़ का गड्ढा कहकर उसमें गुलाम जैसा निकृष्ट जीवन व्यतीत करनेवाली भीत जनता को सचेत करने के विचार से पुनः एक प्रस्ताव पेश करते हैं।

8. तृतीय संकलन : द्वितीय संकलन के ठीक डेढ़ वर्ष पश्चात् दिगंबर कवियों का तृतीय संकलन प्रकाशित हुआ है। उसका शीर्षक है 'आज की कुव्ठ व्यवस्था पर दिगंबर कवि'। जनता की शिक्षा-हीनता एवं आज्ञान का आसरा लेकर देश को लूटनेवले शासकों और समाज में विभिन्न वर्गवालों द्वारा आज जनता पर मढी जानेवाली कोढ़ की व्यवस्था से भिड़ते हुए ये कवि इस संकलन में समाविष्ट अपनी कविताओं द्वारा आग उगलते हैं

उनका दावा है कि हर तेलुगुवाला कान हों, तो सुन ले; आँखें हों, तो देख ले और दिमाग हो, तो सोच ले और जनता के रक्त से व्यापार चलानेवाले महात्माओं द्वारा व्याप्त होनेवाली देश भर में बीमारी जैसी कुष्ठ व्यवस्था को ध्वस्त करने केलिए निकल पड़े। इस कोढ़ की व्यवस्था का पालन-पोषण करने-वालों का सर्वनाश करने केलिये दिगंबर कवियों ने कमर कस ली है। जैसे कि इसके पूर्व बताया जा चुका है, सभी क्षेत्रों में दुराचार, कदाचार, भृष्टाचार, अत्याचार इत्यादि का मूल-कारण राजनैतिक कुव्यवस्था है। चूँकि इन कवियों की विषय-वस्तु एवं शैलीगत क्रान्तिकारिता तथा अश्लीलता के कारण किसी ने बहुत समय तक कुछ कहने का साहस नहीं किया, उन्होंने भावी की ऐसी आशंका से, खुद ही अपनी जीवन दृष्टि, काव्य-क्षेत्रीय वस्तुगत एवं शिल्पगत विशेषताओं पर स्पष्ट प्रकाश डाला।

9. कोय्यगुर्र : सन् 1977 में, अर्थात् लगभग तृतीय संकलन के दस वर्ष उपरान्त श्री नग्नमुनि का कोय्यगुर्र 'काठ का घोड़ा' नामक लघु-काव्य आकाशवाणी, हैदराबाद से प्रसारित हुआ था और हैदराबाद बुक ट्रस्ट ने उसे प्रकाशित किया। 23 पृष्ठ की इस रचना को 'आधुनिक

महाकाव्य' की उपाधि दी गयी। परिचय के रूप में चन्द शब्द कहते हुए श्री निकीता गूरोव कहते हैं कि ---

'दिगंबर कवियों की रचनाओं में स्वाभाविक रूप से उनमें अन्तर्भूत गुण-अवगुण प्रचीन कालीन सांस्कृतिक परंपरा का सम्पूर्ण निराकरण और वामपक्षीयता का बालारिष्ट प्रधान है'[2]

दिगंबर कविता पर एक सज्जन ने नागार्जुन विश्वविद्यालय, नागार्जुन नगार (आँ. प.) से शोध-कार्य किया था, उन्हें इस शोध-प्रबंध पर उक्त विश्वविद्यालय ने पी. एच. डी. की उपाधि प्रदान की थी, परन्तु आज तक शोध-प्रबंध के अप्रकाशित होने से उसके अन्दर के समाचार से प्रस्तुत शोध-कर्ता लाभान्वित होने से वंचित रह गया है जिसका उसे भारी खेद है।

2) *दे. "कोय्यगुर्रं", ले. नग्नमुनि* 'The Poetic Vision of Nagna Muni' *-निकीता गूरोव*

चतुर्थ अध्याय

तुलनात्मक अध्ययनः काव्य-प्रवृन्तियाँ

1. प्रस्तावना : साहित्य मन अथवा विचारों की वस्तु है। मन तो सामजिक गतिविधियों से निंरतर सम्पर्क रखता है जिससे वह समाजगत विभिन्न विषयों का ग्रहण करके स्पन्दित होता है और अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करने को छटपटाता है। उस छटपटाहट का परिणाम प्रतिक्रियाशील विचारों का अभिव्यंजन है। इसको बोलचाल की भाषा में भी व्यक्त किया जा सकता है और साहित्यिक रूप में भी प्रतिष्ठित किया जा सकता है। साहित्य की विधाओं में से इसका उत्तमोन्तम एवं सबलतम साधन कविता है।

परिवर्तनशील समाज से जागरूक कवि उसकी गतिविधियों को समझने का निरंतर प्रयास करता है। हिन्दी के नये कवि और तेलुगु के दिगंबर कवि, दोनों में जागरूकता अथवा चेतना की अतिशयता है। इसी से दोनों धाराओं के कवि एक काव्य-युग को जन्म दे सके। हिन्दी के नये कवि अपने कवि-कर्म के जितने निष्ठावान हैं, तेलुगु के दिगंबर कवि भी उतने ही निष्ठावान हैं जो प्रत्येक कवि की निष्ठा हर कविता में झलका करती है। इसे हम कवि रूप में उसकी व्यक्ति-निष्ठा कहें, तो किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

2. व्यक्ति निष्ठा : व्यक्ति-निष्ठा के अन्तर्गत विषय-ग्रहण की लगन और बिषय-विश्लेषण में चाव प्रधान हैं। इन दोनों विषयों पर विचारों के प्रकटीकरण की ईमानदारी निर्भर रहा करती है। समाज में तो सर्वत्र सदा अनपेक्षित तत्व रहते ही हैं। उनपर चेतनाशील कवि अपनी दृष्टि दौडाये बिना नहीं रह सकता; फलतः उसमें प्रतिस्पन्दन, भावों का आवर्तन-प्रत्यावर्तन और अन्ततः काव्य-रूप में अभिव्यंजन सहज ही अनुगमन करते हैं। हिन्दी के नये कवि और तेलुगु के दिगम्बर कवियों में यह निष्ठा श्लाघ्य मात्रा में पायी जाती है। कहीं उनके उद्गारों में यह निष्ठा 'अहंता' अथवा गर्वोक्ति का रूप धारण करती है। यहाँ पर तो तद्भिन्न

अवसरों की चर्चा की जाती है क्योंकि अहंता की विशेष चर्चा शोधग्रंथ में अन्यत्र नियोजित है।

श्री हरिनारायण व्यास कवि-जगत से बहुत असंतुष्ट हैं क्योंकि कवि लोग सामाजिक वैषम्य को देखते हुए भी नहीं देखते और लोगों के दुःख-दर्द का आर्तनाद सुनना ही नहीं चाहते। वे मौन साधे बैठे हैं- इसका अर्थ यही है कि उनमें भाईचारे का भाव नहीं, वे बिरादरी-बाहर हैं, सामाजिक चेतना से खाली हैं। समाचार के साधनों में युद्ध के प्रसंग उन्हें मनोहर लगते हैं, किंतु घायल या मृतगात्रों से उन्हें चिंता नहीं, अपने पेट की चिंता है। वे उस युद्ध के भागीदारों केलिये शस्त्र तैयार करने की शक्ति पाने केलिये ही यह अन्न चाहते हैं और यह कार्य उनकी जीविका का साधन है। साधु-भिखमंगों का व्यंग्य करते हुए शरणार्थी बन जाने की हीनता को वे नहीं चाहते; दूसरे शब्दों में, विदेशों के कर्ज़ पर हम कब तक जीते रहेंगे?

हम पड़े हैं आँख मूँदे, कान खोले।
मृत्युपंखों की विकट आवाज़ सुनकर कौन बोले?
इसलिये सब मौन हैं
यूद्ध की वार्ता सदा होती मनोहर
पर हमें भी चाहिये अब पेट भर कर अन्न
शक्ति को उत्पन्न कटने केलिये औज़ार
कंटकों को काटने केलिये हथियार।

हम हमेशा बंदियों के वस्त्र सी यह शरण की
'याचना सज्जा', पहन जीते नहीं रह पायेंगे [1]

कथनी में ईमानदारी करनी में प्रत्यक्ष होती है, तभी तो हम उस व्यक्ति को निष्ठावान कहते हैं। तेलुगु में यद्यपि छहों कवियों की व्यक्ति-निष्ठा अतर्कित है, तथापि श्री चेरबंडराजु में इसकी मात्रा अधिक है। अस्वाथ्य के बावजूद जीवन के अपने घोषित लक्ष्य को कार्यान्वित करने से वे कभी नहीं चूके थे। उनमें उनका संकल्प-जन्य जोश अन्यों को भी बढावा देता है और एक प्रकार से उन्होंने अपनी निष्ठा के ही कारण स्वयं की मृत्यु मोल ली थी। उनके इस व्यक्तित्व को सुव्यक्त करनेवाली कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं--

1) दूसरा सप्तक, शरणार्थी' (श्री हरिनारायण व्यास) पृ. 75-76

कलई कट
जावे, पर
मुट्ठी की
तलवार न
छोड़ूँगा,
फँासी को
गाना सिख-
लाकर मैं
टेक शुरू
करवाऊँ [2]

श्री विजयदेव नारायण साही परम्परावादी दिखते हुए भी अपने सामाजिक दायित्व के विषय में कितने ही निष्ठारत हैं। "दर्द की देवापगा" नामक अपनी खंड कविता में आप अपने अंदर की जलन को व्यक्त करते हैं जो लोक-संक्षोभ के कारण खौला करती है। अपने चारों ओर की भौगोलिक सीमाओं को तोड़ लेकर आप विशाल विश्व के उन्नयन एवं उद्धार केलिये कटिबद्ध हो जाते हैं। निम्नांकित पक्तियों में उनकी तड़प उनकी निष्ठा को द्योतित करती है-

और कब तक घमनियों के अन्ध में धारे रहूँ यह दर्द की देवापगा?
और कब तक मुक्ति-प्यासी अस्थियों की चीख भी सुनता रहूँ?
खोल दो मेरी शिराएँ खोल दो;
तोड़ दो मेरी धमनियाँ तोड़ दो;
बहो, बहो,
फूटकर के बहो
मेरे दर्द की देवापगा [3]

नग्न सत्य को निष्ठारत एवं निस्संकोची होकर व्यक्त करने की सामर्थ्य केलिये दिगंबर कवि प्रसिद्ध हैं। इन छे कवियों में से किसकी निष्ठा अनुपम अथवा थोड़ी अतिशयतापूर्ण है, यह कहना कठिन है। मानव के जीवन के ऐतिहासिक सत्य के अनावरण की ये पंक्तियाँ कवि निखिलेश्वर की निष्ठा से ओतप्रेत हैं-

2) पल्लवि, (श्री चेरबंडराजु) तलवार का गीत' पृ. 22
3) तीसरा सप्तक, दर्द की देवापगा (श्री विजय देवनारायण साही) पृ.298

मैं लम्बा आदमी हूँ
मेरे पीछे उससे भी लम्बी परछाई है
परछाई में प्रतिफलित
रोशनी के प्रवाह में
तीन परछाइयाँ

1. वह बोझा जिसे इतिहास ने जमाये रखा
2. क्षणिक आनंद का आवेश
3. मूल्यों के प्रकाश का विषाद [4]

3) नूतन सौन्दर्य बोधः यदि विज्ञान सत्य का प्रतीक है, तो धर्म शिव का प्रतीक है और साहित्य सौन्दर्य का। साहित्य के क्षेत्र में कविता की विधा सौन्दर्य का विशेष निलय है। 'काव्य-सौन्दर्य' का प्रयोग प्रख्यात ही है। सौन्दर्य की अवतारणा ही काव्य का प्रधान उद्दिष्ट होता है। भावाभिव्यंजन गद्य में किया जाता है, तो वह तथ्यों का उदूघाटनमात्र कहलाता है। कविता के माध्यम से उसमें सौंदर्य समाश्रित हो जाता है। किसी लेखक में यही सौंदर्य-बोध उसको कवि बना देता है। भावों को सुन्दर बनाने का चातुर्य ही तो काव्य-कला होती है। सौन्दर्य-बोध, सुन्दर को अवतीर्ण करने की क्षमता प्रदान करता है। नये कवि और दिगंबर कवियों पर यह आरोप है कि उनकी कविता में गद्यात्मकता का आधिक्य है। यों तो दिगंबर कवियों की सारी की सारी कविता गद्यात्मक है; फिर भी उस में सौंदर्य की कमी नहीं है। वैसे ही नये कवियों में बहुतायत से गद्यात्मक कविताओं की रचना हुई है; फिर भी उनमें भी कम सौन्दर्य नहीं है। उनके सौन्दर्य बोध की अवतारणा के साधन अनादि काल से आती हुई प्रक्रियाएँ हैं यथा, गति, लय, अलंकार आदि। छन्द के बदले में छन्दाभास और अलंकारों में नवीन उपमाएँ दोनों भाषाओं के इन कवियों की विशेषता है। इसके अलावा उक्ति की वक्रता भी उन्हें प्रिय है। दिगंबर कवियों में व्यंग्य की अति है, वक्रोक्ति का अतिरेक है। तेलुगु के इन कवियों की विशेषता ऋणात्मक भावों द्वारा सौन्दर्य-योजना करना है। ऐसे प्रयोग द्वारा एक प्रकार से वे दावा करते-से लगते हैं कि संसार में असुंदर कुछ भी नहीं जैसे कि संसार में निरर्थक कुछ भी नहीं। कम शब्दों में अधिकाधिक भाव भरकर विचारोत्तेजन का द्वार खोलना दिगंबर कवियों को बहुत प्रिय है। देश के हर व्यक्ति को बनाते हुए, जीवन में उनकी स्थिति की ओर श्री निखिलेश्वर यों संकेत करते हैं --

4) दिगंबर कवुलु' दितीय संकलन, अब बिदा' श्री निखिलेश्वर पृ. 135

ठंड़ी पड़ी चपाती का-सा जीवन
फाइलों के बीच में पिचका कागज़ का भूत तुम
चढ़ बैठे बिगबेन जवालामुखी पर [5]

तीखी भूख लगने पर भी ठंड़ी पड़ी चपाती खाना किसी को अच्छा नहीं लगता। देश में सब कुछ होने पर भी लोगों के मुँह में कुछ नहीं आता; आने पर भी साथी-संगियों की दुस्थिति देखते हुए हमें वह नही रुचता। दफ्तरों में हमारा आवेदन-पत्र दाखिल होकर बोतलों के बन्द भूतों के जैसे फाइलों में पड़े रहते हैं जिससे हमारा प्रार्थित कार्य कभी पूरा नहीं होता। मानव मानों आज एक ज्वालामुखी पर अधिरोहण करके बैठा है, कब बड़ा विस्फोटन होगा, किसी को पता नहीं, किंतु इस बीच वह उसका ताप सहते हुए उससे मुक्त राख से मलिन रहा है।

तीन पंक्तियों में वर्तमान मानव की दुस्थिति का नग्नतापूर्ण चित्रांकन मन को कँपानेवाला होकर भी सौंदर्य से भरा है। अपनी यह दारुण स्थिति मालूम है, परंतु लेखक के ऋणात्मक शौलीगत तथ्यांकन में एक प्रकार की कटुतापूर्ण मधुरिमा अवश्य है। इसे हम कवि के नवीन सौंदर्य-बोध एवं उसके नवीन सौंदर्यांकन का परिणाम कह सकते हैं।

चन्द्रमा तथा चाँदनी सबको सुहानेवाली वस्तुएँ हैं, विशेषकर नये ब्याहे दम्पति को। किंतु नये कवि श्री रामविलास शर्मा को चाँदनी और ही प्रकार से दर्शन देती है। वे कहते हैं-

चाँदी का झूठा पानी है
यह माह-पूस की चाँदनी

आँखों में बादल-से आँसू
हँसती है उनपर चाँदनी

लोहे की हथकड़ियों-सा दुःख
सपनों-सी झूठी चाँदनी। [6]

डॉ. शर्माजी के कवि-हृदय ने इन छे पंक्तियों में 'गागर' में सागर भरने का काम कर दिया है। जब पेट खाली हो, जीवन की न्यूनतम

5) दिगंबर कवुलु, प्रथम संकलन, आत्ममोनि, श्री निखिलेशवर पृ.-7
6) तारसप्तक, चाँदनी (डॉ. रामविलास शर्मा) पृ.-231

चाहें पूरी न होवें, तो सौंदर्य की वस्तु क्या सुख दे सकेगी। 'A Thing of Beauty is Joy for ever' वाली अंग्रेजी काव्य- सूक्ति को डॉ. शर्माजी के विचार में यों बदल देना होगा-'The beauty of a thing depends on the conditions of the onlooker' माघ और पुष्य के महीनों में छिटकती चाँदनी गरीब आदमी केलिये असुंदर होती है, दुःखों से तप्त हृदय से उमड़ते बादलों के-से आँसुओं का मानों वह चाँदनी उपहास करती है, जीवन में वास्तविक चाँदनी आकांक्षाओं की पूर्ति है। अन्यथा हाथ की बेड़ियों का-सा वह दुःखदायी ही साबित होगी। श्री निखिलेश्वर ही के जैसे डॉ. शर्माजी परंपरावादी सौंदर्य के मानदंड को तोड़ देते हैं और नवीन सौन्दर्य का आविष्करण करना चाहते हैं। यद्यपि आप मार्क्सवादी हैं, कवि-रूप में अभिव्यक्त आपकी भाव-वल्लरी में सर्वत्र उस वादातीत शाश्वत सत्य का अंकन हुआ है।

श्री धर्मवीर भारती नवीन काव्य-युग के निर्माता होते हुए भी परम्पराबद्ध काव्य-तत्वों का एकदम निराकरण नहीं करना चाहते। इसका अर्थ यह नहीं कि वे पुरानपन्थी बने रहना चाहते हैं। उन्हें यह बात अवश्य मालूम है कि कविता, जो सौन्दर्य का वाहक है, मर अवश्य गयी है; परंतु आज उसे जिलाये रखना संभव मानते हैं। आप नये कवियों के प्रतिनिधि भी हैं। अतः बड़े अवधान के साथ आपकी लिखी ये पंक्तियाँ विचारणीय हैं। पहले आप यों पूछते हैं --

कौन कहता है कि कविता मर गयी?
मर गयी कविता नहीं तुमने सुना?
हाँ वही कविता कि जिसकी आग से
सूरज बना
धरती जमी
बरसात लहरायी
और जिसकी गोद में बेहोश पुरवाई पंखुडियों पर जमी [7]

आज कविता मरी नहीं, बल्कि बूढ़ी बन गयी है, उसका पोषण नहीं हो रहा है, अतः वह बीमार बनी हुई है -- तपेदिक ने उसे विधवा बना दिया है। अब सिंदूर के बदले में वह तारे लगाने की धुन में भिखारिणी बनी हुई है --

भूखने उसकी जवानी तोड़ दी
उस अभागिन की अछूती माँग का सिंदूर

7) दूसरा सप्तक, कविता की मौत (श्री धर्मवीर भारती) पृ.-200

मर गया बन कर तपेदिक का मरीज़
और सितारों से कहीं मासूम सन्तानें
माँगने को भीख हैं मज़बूर। [8]

यह स्पष्ट है कि लेखक ने स्वीकार कर लिया है कि कविता का युग समाप्त हो गया है और भले ही कविता कोई लिख दे, तो भी उसकी बिलकुल पूछ नहीं होगी क्योंकि वह असुन्दर है, बीमार है, बेवा है, भिखारिणी है, असुन्दर का सौंदर्य भरा वर्णन नवीन सौन्दर्य-बोध के कर्म को छुए बिना नहीं रहता।

श्री ज्वालामुखी में सौंदर्य-बोध की नवीनता के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-दृश्यात्मक बिम्बों, अन्योक्तियों एवं वक्रोक्तियों का आश्रय लेकर आप कहते हैं कि आपने एक कीड़े का-सा रूप धारण कर प्रकृति रूपी बाँस को कुरेद-कुरेद जीवन को ठंड़ी बाँसुरी बना रखा..... छूट निकल कर, उड़-उड़ कर अपने घोंसले केलिये दिशाएँ टटोल-टटोल, थके हुए पंखों व बेजार दृगों से हाँफ़ने वाले, आप व्यथित शांति-विहग हैं.... विज्ञान से फेंकी गयी विष-किरण के कारण फूटी आँख हैं..... व्यथित शोक के पीड़ित लोकों में विकसित कारुण्य के महान बोधि-वृक्ष के प्रकाश में चमके तथागत हैं.... अहंकार के सैलाब पर हँसते खून के गुलाब हैं ---

कृमि-पुरुष का रूप धर कर प्रवृत्ति-रूपी बाँस को कुरेद कर
जीवन को मैंने ठंडी बाँसुरी बनाया है
छूटकर, निकल कर, उड़-उड़ कर
अपने घोंसले केलिये दिशाओं को टटोल-टटोल कर
थके पंखों व बेज़ार नज़रों से
हाँफता व्यथित शान्ति-पक्षी हूँ
विज्ञान से फेंके गये विष से फूटी आँख हूँ मैं
व्यथा-शोकों के पीड़ित लोकों में
विकसित कारुण्यवाले महान बोधि-वृक्ष के प्रकाश में
अहंकार-रूपी सैलाब पर हँसता खून का गुलाब हूँ में [9]

मुरली, पंछी, घोंसला, किरणें, आँखें, गुलाब-ये सब सौंदर्य-वर्णन के अवसर पर काम आनेवाली काव्य-सामग्री की वस्तुएँ हैं जब कि हमारा कवि मुरली के संगीत में विषाद को पाता है, पंछी को थका माँदा-हाँफता कहता है, किरणों को विष से मिलाता है, आँख को फूटी

8) दूसरा सप्तक, कविता की मौत (श्री धर्मवीर भारती) पृ.-201
9) 'दिगंबर कवुलु', द्वितीय संकलन, 'पुनर्योनी प्रवेश' श्री ज्वालामुखी पृ. 99-101

कहता है और गुलाब को खून में सना पाता है। वास्तविक जीवन में सुख-लेश के अभाव और दु:ख-दुविधा के बोझिलपन ने कवि को सौंदर्य की ऋणात्मकता देखने को बाध्य किया है; तब भी इन पंक्तियों में काव्यात्मकता की कमी नहीं, यह आकर्षण नवीन सौंदर्य-बोध की पुत्री है।

4) प्रकृति-प्रेम : विश्व के सभी भाषा-साहित्यों में, विशेषकर काव्यों में, प्रकृति-वर्णन का विशेष स्थान है। आदि काव्य वाल्मीकि के "रामायण" में प्रकृति-वर्णन के अनोखेपन की चर्चा की जाती है। तुलसी के "रामचरितमानस" में दो अवसरों पर ऋतुवर्णन के बहाने प्रकृति का वर्णन किया गया जहाँ प्रकृति के विभिन्न अंशों का मानव- जीवन से तादात्म्य स्थापित किया गया है; सभी सादृश्यमूलक अलंकारों के मूल में प्रकृति की जड़ होती है।

'प्रकृति' कहते ही पेड़-पौधे, नदी-नाले सूर्य-चद्र, तारे-बादल, पशु-पक्षी वगैरह मानव से भिन्न सभी चराचर पदार्थ हमारे मन में घरकर लेते हैं। वास्तव में कोई भी कवि प्रकृति की चर्चा करता है, तो अपने से भिन्न हर कुछ को और हर किसी को प्रकृति के अन्तर्गत जमा कर देता है। **मानव के स्वभाव का वर्णन मानव-प्रकृति का वर्णन होता है**। जिस पृथ्वी पर जन्म लेकर,उसकी गोद में निवास करते हुए हम क्रीड़ारत रहते हैं, उसका हमारे जीवन से अटूट नाता है। वह हम से अभिन्न है इसी कारण से कवि लोग अपने कथ्य को सुंन्दर, प्रभावपूर्ण एवं सार्थक बनाने के हेतु प्रकृति-वर्णन का सहारा लेते हैं। मानव के स्वभाव को सुव्यक्त करने का एक योग्य साधन प्रकृति है और वह भाव को सुन्दर भी बनाता है। इस सत्य को भला, किसी भी काल का हो, कवि कैसे भूल सकेगा? नये कवि और दिगंबर कवियों के सम्बन्ध में भी यही बात है। आखिर कवि वही संवेदनाशील साधारण मानव होता है जो जीवन के विभिन्न अवसरों पर अपने हृदय में आन्दोलित प्रति-क्रियाओं को सुचारु रूप से व्यक्त करने की सामग्री को ठुकरा नहीं सकता।

हिरण-हिरणी, चक्रवाक-चक्रवाकी जैसे सुंदर पशु-पक्षियों के आकार-प्रकार और संयोग-वियोग पर उनकी क्रमशः सुख-दुखमय उद्वेगशीलता का कितने ही कवियों ने वर्णन किया था। श्री प्रभाकर माचवे जीव-जंतु एवं पालतू चिडियों को लेकर, संक्लिष्टतापूर्ण गुजरते मानव-जीवन की उपेक्षा कर, पशु-पक्षियों को पालते हुए आनंद पानेवालों का व्यंग्य इस प्रकार करते हैं-

> पहले उसने पाले कुछ पिल्ले
> बडे हुए, भाग गये,

पाली कुछ बिल्लियाँ, वे
दोस्तों को दे दीं।
फिर पालीं कुछ लाल मछलियाँ
वे मर गयीं
पाला एक तोता, जो उड़ गया।
जोड़े का एक बच्चा
उठा गयी मित्र की बिड़ाली उसे
मना है कि आजकल, रखे हैं कुछ आदमी
पालतू !
फ़ालतू !
होगा क्या उनका? [10]

व्यंग्य स्पष्ट ही है कि यह पालनेवाला पशु-पक्षियों से ही अपनी आत्मीयता का नाता जमाये रहता है, किंतु मानव-जगत से नहीं। यह प्रकृति-प्रेम मानव मूल्यों की पहचान के विरुद्ध है। ये पंक्तियाँ विचारशील मानव को जितना उत्तेजित करती हैं, नव्यतम कवि-समाज को भी उतना ही अपने कर्तव्य-बोध की ओर प्रवृत्त करती हैं।

यदि भैरवय्या यों हमें परामर्श देते हैं-

सूरजमुखी के जैसे
दुनिया के चारोंओर मत दौड़ा करो [11]

तो श्री चेरबंडराजु वर्तमान को यों उपमा देते हैं-
(तुम) सूखे तेल के दीप हो
शिथिलालय के सौन्दर्य-शकल हो
डंठल से बिछुडे फूल हो [12]

और ज्वालामुखी अपने रोष का कारण यों व्यक्त करते हैं-

स्वातन्त्र्य के बगीचे में
बे काबू होकर विहार करनेवाले
राजनैतिक ढोरों को
लात मार न भगाने के कारण रोष [13]

10) "तारसप्तक" 'पालतू' (श्रीप्रभाकर माचवे) पृ.-160
11) "दिगम्बर कवुलु", प्रथम संकलन हड्डियों की चीखें (श्री भैरवय्या) पृ.55
12) वही-द्वितीय संकलन, 'किलकिंचित' श्री ज्वाला मुखी, पृ.78
13) "दिगम्बर कवुलु", प्रथम संकलन, तुम अब भी गुलाम हो (चेरबंड राजु)पृ. 57

उपर्युक्त तीनों उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि प्रकृति का अपने आप में अस्तित्व नहीं है। **उसका पृथक वर्णन तब तक निरर्थक है जब तक मानव-जीवन में उसका अन्वय न हो जाय।** इसी से तीनों कवि उपर्युक्त उद्धरणों में एक तरफ़ प्रकृति के विशुद्ध वर्णन की निरर्थकता की ओर भी हमारा ध्यान खींच लेते हैं और उसके निम्नस्तरीय वर्णन द्वारा मानव मूल्यों की ओर हमारी दृष्टि खींचते-से हैं।

नये कवि श्री भवानी प्रसाद मिश्र भी प्रकृति का तत्तुल्य वर्णन अंकित करते हैं जिससे मानव-जीवन के अधःपतन का हमें बोध हो जायेगा। मिट्टी अगर प्रकृति का अंश है, तो हम मिट्टी के खिलौने हैं, पानी अगर प्रकृति का अंश है, तो हम उससे गलनेवाले हैं, हम तिनकों के जैसे जल में वह जानेवाले हैं। आतप में सूख-जलकर विनष्ट होनेवाले हैं, हमारा जीवन क्षणिक है, हम प्रलयाग्नि में, अर्थात् कष्टों में, तपते-तपते जल-भुनकर समाप्त होनेवाले हैं। इस प्रकार प्रकृति के भयानक-पक्ष को मानव-जीवन से वलयित करना एक नया प्रयोग है जिससे कविता की सभ्यता की आवृद्धि हुई है-

हम कि मिट्टी के खिलौने,
बूँद पड़ते जल मरेंगे,
हम कि तिनके धार में बहते,
शिखा छू जल मरेंगे,
नाश की किरणें कि द्वादश
सूर्य से श्रृंगार होगा,
कौन-सा वह बुलबुला होगा
कि मत अंगार होगा-
किस तरह वरदा सुफल
होगी बहुत हो सदय भी।
एक दिन होगी प्रलय भी [14]

5) अति-बौद्धिकता: हिन्दी के नये कवि और तेलुगु के दिगंबर कवियों पर अति-बौद्धिकता का अभियोग है। ऐसा अभियोग करनेवालों के विचार में कविता हृदय की वस्तु है, अतः विचारशीलता का कम और अनुभूति-प्रवणता का उसमें अधिकतम स्थान होना चाहिए; परंतु यह अनुभूत होता है कि इन दोनों कविताओं में विचारोत्तेजन के क्रम में बुद्धिशीलता का प्रदर्शन अधिक पाया गया है। उक्त आरोप कानेवरलों के अनुसार बौद्धिकता ज्ञान-सम्बन्धी विषय है जिसका वास्ता मन से है और अनुभूति-भाव-संम्बन्धी

14) "दूसरा सप्तक," 'प्रलय' (श्रीभवानी प्रसाद मिश्र) पृ.-20

विषय है जिसका सम्बन्ध हृदय से है, परंतु आधुनिक मनोविज्ञान ने यह साबित कर दिया है कि हृदयगत सभी क्रिया-कलाप, जैसे अनुभूतिशीलता, आर्द्रता, सहानुभूति आदि मन के घेरे में ही चला करते हैं जिनका स्पन्दन हृदय में होता हुआ-सा लगता है। कारुणिक प्रसंगों के उल्लेख के अवसर पर कंठावरोध अथवा दया-ममता के अवसरों पर हृदय का गद-गद होना जैसे विषय वास्तव में बौद्धिक प्रतिक्रियाओं के परिणाम हैं। जब तक मन क्रियाशील नहीं रहता, तब तक ये उपक्रम नहीं होते। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि नवजात शिशु में दूसरों के दुःख-दर्द पर दया क्रियाशील नहीं रहती क्योंकि अभी उसके मन में उस दुख-दर्द की ग्रहण-सम्बन्धी परत नहीं खुली है। इसी तरह एक पागल व्यक्ति में कोमल भावों का उन्मेष नहीं रहता वयोंकि उसके मन में वह तह इस सम्बन्ध में खराब है। सभी व्यक्तियों के हृदय में सब प्रकार की अनुभूतियाँ एक-सी भी नहीं रहतीं वयोंकि उनमें संस्कारगत विभेद होते हैं। कोई व्यक्ति एक कारुणिक प्रसंग देख अथवा सुनकर रोने लगता है, तो कोई अविचलित रहता है। इतना तो निश्चित है कि दोनों ही उस प्रसंग के समान रूप से कायल हुआ करते हैं। सारांश यह कि जीवन में प्रत्येक ज्ञात विषय मन की वस्तु है और मन विचार-प्रधान यंत्र है। **बुद्धि की कोई सीमा नहीं होती जिस कारण से अतिबैद्धिकता का आरोप अर्थरहित लगता है**। हाँ, इन कवियों के कुछ प्रसंगों के संन्दर्भ में, पाठक के मानसिक स्तर का निचलापन भी कारण हो सकता है अथवा घुमाई-फिराई या दूर की सूझ भी हो सकती है।

श्री नग्नमुनि में अतिबैद्धिकता का दर्शन उनकी शैली के कारण अनुभव में आता है। इस चक्करदारी से भाव-ग्रहण में कठिनाई के कारण प्रेषणीयता में बाधा पड़ती है और रसास्वादन में देरी हो जाती है, परंतु एक बार जब समझ-बूझकर पाठक भाव-ग्रहण कर पाता है, तो भावग्रहण-जन्य आनन्द का आस्वादन कर लेखक की वाहवाही किये बिना वह रह नहीं सकता। एक प्रसंग इस प्रकार है-

जलते जंग में कबूतरों को साधन बनाकर
अस्तित्व को खोये हुए मारीजुआना मनुष्य
हत्या और आत्महत्या के बीच की महीन लकीर को मिटानेवाले
समर मार्ग में
होश खोकर छटपटानेवाला धुआँ [15]

15) "दिगंबर कावुलु" तृतीय संकलन, मारीजुआ ना धुआँ श्री (नखिलेश्वर) पृ.-202

इन पंक्तियों की दुरूहता का कारण 'मारीजुआना' है। इस एक शब्द के कारण लेखक पर हम अतिबौद्धिकता का आरोप करते हैं। विश्व में भिन्न-भिन्न देश शांति का संदेश देते हुए कबूतरों को उड़ाते हैं और साथ-साथ युद्ध भी करते जाते हैं, मानों कबूतर युद्धों के साधन हों न कि शांति के वाहक। मारीजुआना एक मादक पदार्थ है जिसके सेवन से आदमी नशे में इतना मस्त हो जाता है कि वह खुद के अस्तित्व की बात भूल जाता है, और उसे पता ही नहीं चलता कि वह क्या कर रहा है। इतना ही नहीं, वह जब पूरे होश में आ जाता है, तब भी उसे स्मरण नहीं आता कि उस मादकावस्था में उसने क्या किया था। युद्ध करने-करानेवाले लोगों की अवस्था इन लोगों से कुछ भिन्न नहीं है। पुलिस के लॉकप में तथाकथित अपराधी को मारकर उसे आत्महत्या प्रमाणित किया जाता है और अतिवादियों की हत्या करके उसकी मृत्यु को आत्मरक्षण का प्रयत्न साबित किया करते हैं, कौन हत्या है और कौन आत्महत्या, इसका निर्णय करने केलिये उनके बीच में विभाजन-रेखा नहीं रह गयी है। आज सर्वत्र विश्व-युद्ध का प्रांगण है, मानव युद्ध के आवेश में होश खो गया है और गोलाबारी व बमों का धुआँ ही धुआँ-सा छाया हुआ है।

विश्व एक समरांगण बना हुआ है, यह स्पष्ट करने केलिये लेखक ने जिस बिम्ब-विधान की आयोजना की है, उसकी दुरूहता के अवरोधक शब्द-जाल को समझ जाने पर उसमें अतिबैद्धिकता का आरोप निराधार हो जाता है।

साधारण-से लगते हुए शब्दों में कुछ खास विशेषता को गुप्त करते हुए लिखने की परिपाटी हिन्दी साहित्य में संत कबीर से चली आ रहीं है। श्री कुंवरनारायण पाठकों में सामाजिक चेतना को जागरूक बनाने के बदले में उनकी निष्क्रियता की ओर संकेत करना पसंद करते हैं। कविता पढ़ते हुए लगता है कि कवि ने भला यहाँ पर क्या कहा है? कौन-सा सन्देश दिया है? इस कविता का आखिर प्रयोजन क्या है? परंतु जरा सोच-विचार करने से मालूम हो जाता है कि बुद्धिमान कवि अपनी सरल शैली में गम्भीरतापूर्ण प्रसंग स्पष्ट कर रहा है। यह उसकी बौद्धिकता का प्रमाण देता है-

> जो सोता है उसे सोने दो
> वह सुखी है,
>
> जो जगता है, उसे जगने दो
> उसे जगना है,

जो भोग चुके, उसे भूल जाओ
वह नहीं है,

जो दुखता है, उसे दुखने दो
उसे पकना है,

जो जाता है, उसे जाने दो
उसे जाना है,

जो आता है, उसे आने दो
वह अपना है,

जो रहा है जो रहेगा
उसे पाना है,

जो मिटता है, उसे मिटने दो
वह सपना है [16]

सरल शब्दों का प्रयोग करते हुए गंभीर भावों का प्रेषण इस कवि को प्रिय रहा है। इसको अतिबैद्धिकता कहें अथवा कविता की प्रक्रिया का एक प्रकार कहें, यह कहनेवाले के सोच-विचार पर निर्भर रहता है।

इसी प्रकार रघुवीर सहाय की इन पंक्तियों में उसी लांछन की झलक मिलती है जो ऊपर के कवि के सम्बन्ध में दिखायी गयी है; किंतु यह दूसरे ही प्रकार का है क्योंकि भावों का सिलसिला ठीक फिट नहीं होता। उनकी कविता का थोडा-सा अंश इस प्रकार है --

शब्द पास आते हैं और दूर चले जाते हैं।
आने दो याद हमें अपने कारखानों की
दिन शुरू हो गया जिस पर की बस किसी का नहीं,
रुतु को रोक नहीं सकती हैं मीठी नींदें,
होती जाती है जुन्हाई एक कोरा कागज़
स्वच्छ अन्धकार का जल, बैठता जाता है, धरित्री की शिला,
स्वप्नों से भीगी, उठी आती है ऊपर और ऊपर [17]

लेखक इन पंक्तियों द्वारा किस बात का अभिव्यंजन करना चाहता है, यह कहना कठिन है। अतः उसमें अस्त-व्यस्त विचार-क्रम अथवा अतिबौद्धिकता को दर्शाया जा सकता है। ध्यान से समझने का विचार

16) "तीसरा सप्तक" 'जो सोता है' (श्री कुँवरनारायण) पृ.-283
17) "दूसरा सप्तक"मुँह अँधेरे (श्री रघुवीर सहाय) पृ.-169

करने पर मालूम हो जायेगा कि मन-कवियों का मन भी-एक कारखाना है जहाँ पर कविता का माल तैयार हो जाता है, जिसका कच्चा माल शब्द है; समय पर चाहे दिन हो, चाहे रात-किसी का बस नहीं चलता चाँदनी रात एक कोरा कागज़-सी लगती है। अन्धकार का जल मानों स्तम्भित बैठा-सा रहता है, पृथ्वी की चट्टान लोगों के स्वप्नों से भीगी-भीगी ऊपर को उभरती आती-सी लगती है। इन पंक्तियों में जन-जीवन की मुहर प्रकृति के विभिन्न अंगों पर अंकित है।

श्री नग्नमुनि अपने खंडण्काव्य 'कोय्यगुर्रं' (काठ का घोड़ा) में भी ऐसी ही शैली को कहीं कहीं अपनाते हैं। एक अवसर पर वे 'समय' अथवा बीतते काल का, कैलंडर के माध्यम से वर्णन करके कहते हैं कि समय रक्त-मांसवाला मानव नहीं, वर कुत्ते के मुँह में रहनेवाली निर्जीव हड्डी जैसी चीज है, दीवार पर चिपकली-सा लगा हुआ कागज़ का एक टुकड़ा मात्र है। तारीखें कठघरे के अन्दर खड़े अपराधी के जैसे खडी होती हैं। वह कोई भी तारीख हो सकती है --

> कैलंडर के रक्तमांस नहीं होते
> काल केवल कुत्ते के मुँह में हड्डी का एक टुकडा है
> दीवार से छिपकली-सा लगा
> निरा कागज़ का एक टुकडा है
> तारीखें अपराधियों के-से कठघरों में खडी रहती हैं
> वह कोई भी तारीख हो सकती है [18]

6) गाली-गलौज : किसी की कथनी अथवा करनी पर हमारे मन को ठेस लगती है, तो मन प्रतिक्रियाशील होता है; या तो हमें भारी दु:ख का अनुभव होता है अथवा क्रोध का। क्रोध के अवसर पर बातों या करतूतों के सहारे हम क्रोध के कारण पर टूट पड़ते हैं। कभी-कभी दु:खपूर्ण क्रोध भी होता है जिसे 'रोष' कहा जाता है। विवशतापूर्ण क्रोध ही रोष है। **क्रोध और रोष के अवसर पर असामाजिक शब्दों का प्रयोग ही 'गाली-गलौज' कहलाता है।** गाली-गालौज की तीव्रता रोष की अवस्था में बढ़ जाती है।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में शोषक-शोषित वर्ग के बीच में संघर्ष चला करता है। कर्मागारों के मालिक अथवा जमींदार लोग साधारणत: शोषक-वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं और उनके पास अपने पेट की पूर्ति केलिये काम करनेवाले श्रमिक लोग शोषित वर्ग के सदस्य कहलाते हैं।

18) "कोय्यगुर्रं" (काठ का घोडा) ले. श्री नग्नमुनि पृ.-6

मिल-मालिकों वा जमींदारों के अलावा विभिन्न धार्मिक व्यवस्थाएँ तथा उनके ठेकेदार-साझेदार राजनीतीज्ञ लोग भी शोषक-वर्ग के अन्तर्गत समाविष्ट हैं क्योंकि वे भी पूर्व के दोनों को अपनी मदद पहुँचाते हैं, धार्मिक- व्यक्ति कर्मवाद का सहारा लेते हैं, राजनीतिज्ञ संविधान एवं लोकतान्त्रित नियमों का। इस प्रकार सब तरह से श्रमिक वर्ग के लोग बेबस हैं। उनमें अपनी पराधीनता बताने की सामर्थ्य भी नहीं होती क्योंकि वे निरक्षर हैं। अतः समाज में शिक्षित अन्य व्यक्ति उनका पक्ष लेकर समाज के विभिन्न वर्गों में उनकी स्थिति का-वर्णन करते हैं। ऐसे साहित्यकार किसी वाद के समर्थक भी हो सकते हैं अथवा मानव-मात्र को सुखमय देखने के आकांक्षी मात्र। भाव-प्रवण साहित्यकारों का अपनी रचनाओं द्वारा इन दीन-दुखियों के कष्टों को वाणी देना समाज के प्रति दायित्व होता है। इसकेलिये वे प्रप्रथम शोषित वर्ग के जीवन का दयनीय चित्र उतारते हैं। इसे साहित्य में समाज का यथार्थवादी चित्रण कहा जाता है। फिर पाठकों को और शोषितों को अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक करने का भी बीड़ा ये साहित्यकार उठाते हैं।

कवि लोग गाली देने केलिये प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि पूर्वकाल के कवि विविध अवसरों पर राजाओं को खरी-खोटी सुनाते थे। बिहारी ने 'नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं वसन्त इहि काल......' कहते हुए राजा के अंतःपुर के शयनागार में जो पत्र भेजा था, वह राजा को अपने कर्तव्यों के प्रति चेताने की मीठी भर्त्सना थी। चेताना गाली का न्यूनतम प्रकार है, इसके बाद व्यंग्य के द्वारा शब्द-जाल का प्रयोग करना गाली का प्रारंभिक सोपान कहा जा सकता है। नयी कविता और दिगंबर कविता में यह प्रक्रिया बराबर गोचर होती है --

अपने अफ़सर का संबोधन (उसकी अनुपस्थिति में) करते हुए श्री मदन वात्सायन कर्मचारियों की दुस्थिति का एक तरफ़ वर्णन करते हैं, तो दफ़्तरों में अधिकार-दर्प में पद के बल पर मानवता-शून्य हो अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर अत्याचार चलानेवाले उनका तीखा व्यंग्य भी दूसरी तरफ उडाते हैं --

ओ मेरे अफ़सर,
तुम्हारी एक लाइन ने मेरे जीवन की कविता को निरर्थक कर दिया
बीच जिन्दगी में मैं उस क्षितिज़ को देख रहा हूँ
जहाँ अब मेरा चाँद नहीं उगेगा [19]

19) "तीसरा सप्तक" सरकारी कारखाने में कर्मचारी की चिन्ता (श्री मदन वात्सायन), पृ.-174

आनंद की मस्ती में जीने की कर्मचारियों की इच्छा अफ़सरों के स्वेच्छाचार से ठंड़ी पड़ जाती है, यह बात कितनी रसवत्ता के साथ कही गयी है कि कर्मचारियों की जीवन-कविता अफ़सरों की कलम की एक लकीर के द्वारा मिटा दी जाती है। सजे हुए उसके जीवन के दिङमडल में यदि अफ्सर लोगों की भृकुटि चढ जावे, तो उनका चाँद हमेशा केलिये डूबा रहेगा।

तेलुगु के दिगम्बर कवि श्री भैरवय्या भी "अकाल-भिक्षा" नाम की अपनी कविता में इसी तरह अफ़सरों का व्यंग्य करते हैं कि वे छोटे-मोटे उत्कोचों व लल्लो-चप्पो की कर्मचारियों से आशा करते हैं-

भाई ! डरो मत
महँगाई भत्ता बढनेवाला है

अफ़सर के छोटे बच्चे केलिये ले जा सकोगे [20]

गाँधी और गाँधीवाद पर तीखा व्यंग्य श्री भारत भूषण अग्रवाल की "अहिंसा" में मिलता है। कवि खाना खाकर बिस्तर पर लेटकर मन ही मन अहिंसा और हिंसा पर विचार कर रहा था कि उनको लगा कि हिटलर बड़ा मूर्ख है और वे खत लिखना चाहते हैं कि गाँधी जी का शिष्य बन जाओ जिससे आत्मा की पूरी सत्ता और महत्ता तुम्हें मालूम हो जायेगी। इस बीच छत पर से उनकी पत्नी चिल्लाती है-

"दौड़ो बन्दर" इस अंतिम पंक्ति में गाँधीजी के साथ-साथ उनकी अहिंसा का भी व्यंग्य है। अहिंसावाद मर्कटवाद है। आजकल हम उस मर्कटवाद ही का सुबह-शाम प्रचार तो करते हैं, परंतु युद्ध के शस्त्र तैयार करने के प्रयत्न में निमग्न रहते हैं-

खाना खाकर कमरे में बिस्तर पर लेटा
सोच रहा था मैं मन ही मन ; हिटलर बेटा
बड़ा मूर्ख है, जो लड़ता है तुच्छ क्षुद्र मिट्टी के कारण
क्षण-भंगुर ही तो है रे यह सब वैभव धन
अंत लगेगा हाथ न कुछ, दो दिन का मेला।
लिखूँ एक खत, हो जा गांधीजी का चेला
वे तुझको बतलायेंगे आत्मा की सत्ता

20) "दिगंबर,कवुलु" द्वितीय संकलन, करुवुबिच्चं (अकाल-भिक्षा) ले.श्री भैरवय्या पृ.-124

होगी प्रकट अहिंसा की तब पूर्ण महत्ता।
कुछ भी तो है नहीं धरा दुनिया के अंदर"

छत पर से पत्नी चिल्लायी दौड़ो बन्दर। [21]

इस अन्तिम पंक्ति में निहित व्यंभ्य की हम कितने ही प्रकार से व्यारव्या कर सकते हैं। मानव-मात्र में निहित हिंसा की प्रतिहिंसा चाहनेवाली प्रवृत्ति को रोकना 'मर्कटता' है, हानि होते हुए सहकर शत्रु का उपकार करने का उपदेश मर्कटता है, युद्ध की सर्वत्र तैयारियाँ होते हुए देखकर विश्वशांति का उपदेश देते हुए उसकी आशा करना तो मूर्खतापूर्ण मर्कटता है-इस प्रकार नियन्ताओं पर छींटे मारते हुए, राजनैतिक अधिनेताओं का, और विशेषकर गाँधीवाद का व्यंग्य उड़ाना लेखक का इस अन्तिम पंक्ति में उद्देश्य है जिसकी भूमिका आगे की पंक्तियाँ हैं।

तेलुगु के श्री महास्वप्न भी इसी तरह एक दूसरे प्रकार से गाँधीजी का व्यंग्य करते हैं। वे कहते हैं कि

हम मानव नहीं हैं, हमारा और कोई नाम है
इतने करोडों गोडसे लोगों के खूँख्वार हाथों के बीच में
चारोंओर से शोर मचाते हुए टूट पडनेवाले अन्धकारपूर्ण
समुद्र केबीच में
निश्चलता के साथ प्रकाशवान तुम्हारी मुस्कुराहट !
हे बापू! तुमने धोखा तो नहीं खा लिया? [22]

व्यंग्य, जैसे कि कहा गया है कि गाली का बड़ा हलका-सा रूप है, वास्तविक गाली सुननेवाले में कुढन पैदा करती है और उसे मुँह लगने अथवा हाथा-पाई पर उतारू होने की ओर प्रवृत्त करती है। गाली की तीव्रता में स्तर होते हैं। सुनकर हँसी में उडाने योग्य स्तर सुनकर कुढ़ने का स्तर, प्रतिक्रियाशीलता की ओर उन्मुख करनेवाला स्तर और जानलेवा प्रकृति पैदा करने का स्तर। यह अन्तिम स्तर अश्लीलतापूर्ण गाली का है। नये कवि सीमा का उल्लंघन कभी नहीं करते। परंतु तेलुगु के दिगम्बर कवि अन्तिम स्तर तक की गालियों का प्रयोग कर चुके हैं। चूँकि अशलीलता की चर्चा पृथक रूप से की गयी है, यहाँ पर गाली-गलौज के अन्य स्तरों की चर्चा मात्र की जाती है। दिगंबर कवियों के विचार में मानव-जीवन के वर्तमान वैषम्य का कारण सामाजिक व्यक्स्था

21) *"तारसप्तक" 'अहिंसा,' श्री भरत भूषण अग्रवाल पृ.-97*
22) *"दिगम्बर कवुलु," 'द्वितीय संकलन, हम मानव नहीं, हमारा और कोई नाम है ले. श्री महास्वप्न पृ.-89*

नहीं, राजनैतिक व्यवस्था है। अत: इनकी गालियों के शिकार प्रधान रूप से वे ही हैं। धर्म के ठेकेदार भी इनकी गालियों का प्रहार खाते हैं। सीमातीत दु:ख सहते हुए निकम्मी रहनेवाली चेतनाशून्य जनता भी, गाली का शिकार बनती है, परन्तु उसमें दया की गन्ध मिली रहती है।

(अ) जनता को गाली :

1) सचमुच हम सब कुन्ते के बच्चे हैं दुम दबाकर
सड़कों पर मिठाई की दूकान के आगे
लातें खा खाकर भी फिर लौट आकर
जीभ पसारनेवाले हैं [23]

2) सड़क के बीच में मानवता के कुंड में
देश है अन्तिम श्वासवाला शव

हे मुरदे !
वया यह भी तुम्हें अश्लील लगता है? [24]

मेधावी-वर्ग को गाली-

बारों की दार्शनिक शालओं में
अनन्त आत्मरति में मेधावी लोगों के
नशे में सिद्धान्तों के शुनक-मैथुन
उनकेलिये जीवन ताश के पत्ते
उनकेलिये समस्याएँ तुरफ. पत्ते [25]

(आ) साहित्य के कलाकारों को :

एक वर्ग-विशेष को आकाश की तरफ उठाकर
जेबें भरनेवाले साहित्य-याचक [26]

---

23) "दिगम्बर कवुलु," 'द्वितीय संकलन, पिच्चासुपत्रि अंता खाली (सारा पागालखाना खाली है) लें.श्री निखिलेश्वर पृ.-132
24) दिगंबर कवुलु, तृतीय संकलन, हिजडों की काम क्रीडा देख रहा हूँ, श्री नग्नमुनि, पृ.-151
25) "दिगंबर कवुलु" "द्वितीय" संकलन" 'किलकिंचित' श्रीज्वालामुखी, पृ.79
26) "दिगम्बर कवुलु," 'तृतीय संकलन,' याचकीयालु (याचकता) ले,श्री निखिलेश्वर पृ.-159

(इ) धर्म के ठेकेदारों को-

1) भारत देश के संन्यासी-रंडापुत्रों के
सड़े दर्शन को परम पवित्र कह प्रवाहित करने से
संसार हर क्षण कबेला बनता जा रहा है,
तो आग न उगल अर्धनिमीलन का अभिनय करनेवाली
इन दोनों आँखों को क्षमा करना कठिन है. [27]

2) पालकी छोड़कर दूसरी तरह यात्रा नहीं करते
धनवानों की इमारतों को छोड़कर झोंपडियों की
बात नहीं करते
पैर होते हुए भी लँगडे हैं
मानव की भुजाएँ छोड़कर कहीं और चढ़ नही बैठते
काषायाम्बर नहीं छोडते
आध्यात्मिक चिंतन के नाम पर
नवीन पतिव्रताओं को पावन किये बिना नहीं छोड़ते।[27आ]

(ई) (सिनेमा के) कलाकारों को :

मुँह बंद कर लो
सिर मुँडा लो
हो सके तो अपनी जीभ काट लो
अब विभिन्न पात्रों का अभिनय मत करो
अब तोते की रटत छोड़ दो
पहने हुए कपड़े सब उतार दो
अपने सभी कर्ज खुला बता दो [28]

(उ) राजनीतिज्ञों को:

1. देखिये अपने असत्य को
अपने 'माने हुए' सियार-से-कुत्ते-से-मूस-से जीवन को
सूर्य की सच्ची किरणें बर्दाश्त न कर सकनेवाले उल्लुओं को
घात में ठहरे जंगली बिलावों को
लुके-छिपे छापा मारनेवाले भेडियों को [29]

---

27) अ. "दिगंबर कवुलु तृतीय संकलन, बुद्धक्षमा नग्नमुनि पृ.-185
"दिगंबर कवुलु" "द्वितीय" संकलन" जगदागुआ रहे हैं होशियार, ले चेरबंडराजु पृ.-241
28) आ. "दिगंबर कवुलु" 'प्रथम संकलन', 'नट साम्राट'श्री महास्वप्न पृ.-198
29) -वही- "दिगम्बरी" श्री भैरवय्या पृ.-16

2. डियर स्काऊंड्रल (बदमाश)
चारदीवारी के अन्दर भलाई को गाड़कर

विषादान्त नायक के जैसे
अनउठे पर्दे के पीछे फूट-फूट कर रोनेवाले
तुम्हें देखकर मुझे रहम... [30]

7) **मानवतावादी दृष्टिकोण:** बीसवीं सदी व्यक्तिवाद का युग माना जाता है। सभी कलाओं के अलावा साहित्य के विषय में यह बात शत प्रतिशत सत्य है। व्यक्तिवाद का खुला प्रारंभ छायावादी युग माना जा सकता है। इसके बाद की कविता में, अर्थात् साथ-साथ चलनेवाली रहस्यवादी-धारा की और प्रगतिवादी कविता में भी व्यक्तिवाद की झलक दिखाई देती है। रहस्यवाद में कवि की अपनी वैयक्तिक तड़प ईश्वर के विरह में साकार होती है, तो प्रगतिवाद में व्यक्ति-व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति द्वारा सब प्रकार की सुख-सुविधा की आकांक्षा व्यक्त है। एक बात तो ध्यान देने योग्य है कि व्यक्तिवाद का कितना ही कवियों में अतिरेक हो, परिवार की उपेक्षा छायावादी युग तक नहीं की गयी।

8. **प्रणयानुभूति :** मानवतावादी दृष्टि-कोण का अर्थ मानव-प्रेम है और उसका आधार निखरी हुई प्रणय की अनुभूति है। वैयक्तिक प्रणय से शून्य व्यक्ति न तो परिवार के अन्य सदस्यों से आत्मीयता का नाता जोड़ सकता है न समाज के अन्य भाई-बहनों से प्रेम की अनुभूति पा सकता है। प्रणय की पूर्ति रति में होती है जिसको सुव्यवस्थित करके सामाजिक जीवन को क्रमबद्ध करने के हेतु विवाह की प्रथा प्रारंभ की गयी थी। विवाह के पूर्व भी जो प्रणय का क्रम चलता है, वह भी विवाह में लय हो जाता है, अन्यथा वह भग्न हो जाता है। नये कवियों में और दिगम्बर कवियों में प्रणयानुभूति के भिन्न-भिन्न अवसर दर्शित हो जाते हैं, परंतु ये वे नहीं जो संयोग और वियोग के अवसर पर नायक-नायिकाओं अथवा प्रेमी-प्रेमिकाओं के शरीर एवं मन में विकार-रूप में प्रत्यक्ष होते हैं जिनसे नख-शिख सौन्दर्य व बारहमासा के वर्णन जुड़े रहते हैं।

मानव की अतृप्त आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति आम तौर पर इन कविताओं की प्रधान वस्तु है। यह आकांक्षा व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की नहीं, लिंग-भेद जन्य भी नहीं, जीवन की न्यूनतम आवश्यकता-सम्बधी

---

30) "दिगम्बर कवुलु" प्र.सं. 'सुखरोगी', (श्री नग्नमुनि) पृ.-24

भी हुआ करती है। रति सम्बन्धी प्रणयानुभूति के कुछ चित्र जब हिन्दी की नयी कविता में कहीं-कहीं मिलते हैं, दिगंबर कविता में उनका अभाव-सा पाया जाता है; और कहीं मिलता भी है, तो जीवन की भौतिक न्यूनतम आकांक्षाओं की पृष्ठभूमि अथवा घेरे में वह चित्रित मिलता है।

अप्रस्तुत विधान-द्वारा श्री गिरिजाकुमार माथुर एक बिम्ब चित्र में एक स्त्री की मुद्रा का अंकन करते हैं जो प्रकृति का एक रमणीय चित्र लगते हुए भी एक हाथ पर ठोडी टेके भाव-भरी नारी की एक आकर्षक अदा-सी प्रकट होती है --

तुम उस रेशम - सेज - कोच पर,
देख रहीं उडती पहाड़ियाँ खिड़की में से
एक हाथ पर चिबुक टिकाये ;[31]

नारी के विभिन्न प्रकार के लावण्ययुक्त सौन्दर्य का चित्रण वृन्तों के नामों का प्रयोग करते हुए श्री प्रभाकर माचवे उसको संबोधित करके इस प्रकार कहते हैं --

संशय के सघनांधकार में विद्युन्माला अयि अचुम्बिते।
तुम हरिणी, मालिनी, शिखरिणी, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बिते,
तुम छन्दों की आदि - प्रेरणा, प्रथम श्लोक की पृथुल वेदना,
तुम स्रग्धरा या कि मन्दाक्रान्ता, ओ आर्ये, गीति स्तम्भिते।
मैं गतिहारा यति-सा ग्रह से शून्य प्रभाकर, मैं वैनायक
तुम रागिनी और मैं गायक, तुम हो प्रत्यंचा मैं सायक [32]

परंपरावादी शैली लगने पर भी, इन पंक्तियों में नारी-सौंदर्य के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश पड़ा मिलता है जो विद्युन्माला (स्त्री को 'विद्युल्लता' कहना परम्परावादियों में प्रसिद्ध) 'अचुम्बिता' (श्री कालिदास के 'अनाघ्रातं पुष्पं' के सादृश्य पर), द्वितीय पंक्ति में छन्दों के नामोल्लेख द्वारा क्रमशः नेत्रों, तनुलता, जटाबन्ध, क्रीडाकारिता, फुर्तीलेपन इत्यादि का संकेत, तृतीय पंक्ति में कविता की (द्वितीय पंक्ति को भी गणना में लेना होग) प्रेरणादायिनी कहकर स्व एवं पर (नर) पक्ष में वेदना का मूलस्रोत कहा गया है जिसमें आदि काव्य के क्रौंच मिथुन का संकेत है; फिर छंदों की सूची देकर पुरुष की नारी के अभाव में तेजोशून्यता का उल्लेख है और अन्ततः निराला के 'तुम और मैं' की शैली पर स्त्री-पुरुष के जीवन में अभिन्नता को कायम किया गया है। सामान्य सा दिखते हुए, शब्दों में विशेष का

31) *"तारसप्तक" 'एसोसियेशन' (श्री गिरिजा कुमार माथुर) पृ.-181*
32) *"तारसप्तक" सानेह (श्री प्रभाकर माचवे पृ.-132*

गुंफन करना, नये कवियों का कौशल है जो तथ्य इस एक उदाहरण द्वारा पुष्ट होता है।

दिगंबर कवियों की रचनाओं में स्त्री की रति-सम्बन्धी चर्चा कहीं नहीं मिलती। सर्वत्र छहों कवि स्त्री के जीवन के दैन्य से रोषग्रस्त हैं। इसी से वे गरमीले शब्दों में पुरूष को या तो बनाते हैं अथवा नारी की स्थिति का परिचय कराके उसके उत्तरदायी पुरुष को या व्यवस्था को व्यंजना द्वारा बनाते हैं। श्री चेरबंडराजु स्त्री को सलाह-मशविरा देते हैं कि वह अपनी 'अबला' की मुहर मिटा ले, अन्यथा सन्तानों को जन्म देने की आदत निभाते हुए आत्म-वंचना में पड़ी वहीं लोटती रहेगी-

अबला की मुहर मिटा लो
आत्मवंचना समझती हो क्या -
वहीं पर पड़ी लोटती रहोगी
सन्तानों को जन्म देने की आदतवाली
हे गृहिणी ! [33]

भारत के स्वतंत्रता-समर में पुरुष से हाथ मिलाकर आत्म-त्याग तक के कष्टों का सामना करनेवाली स्त्री आज भी अपने आँचल में अविजेय पुरुष का पाप ढोया करती है, दूसरे शब्दों में प्रेम के नाम पर पुरुष आज भी स्त्री का मान लूट रहा है और वह मातृत्व का बोझ स्वीकार कर अपने भारी जीवन में अवर्णनीय दुःख सह रही है।

तुम अभिनव विंशति शताब्दि की जागृत नारी
जिसकी साडी के आँचल में
बँधा हुआ है वही पुराना पाप -पंक अविजेय पुरुष का [34]

9. स्वदेशानुराग : देश-प्रेम और 'राष्ट्रीयता' के पद सदा शासक-वर्ग से प्रयुक्त होते आते हैं। किसी भी देश में ये पद शासकों की ओर से अपने पद की रक्षा के निमित्त जनता को बलि करने के हेतु साधन का काम करते आये हैं। राजाओं की शासन-व्यवस्था के काल में सभी देशों के इतिहास एवं साहित्यिक ग्रंथों में यही पाया जाता है।

भारत के स्वतंत्र-समर के अवसर पर महात्मा जी ने भी 'स्वदेश-प्रेम' का नारा दिया था। 'देश' और 'राष्ट्र' प्रायः पर्यायवाची हैं, किंतु देश से इस भूखंड की सभी जड़-वस्तुओं तथा मानवेतर प्राणियों के संकलन

33) "दिगबर कवुलु" "तृतीय संकलन" ज्वालाएँ सदा नहीं, कभी गाती हैं (श्री चेरबंडराजु) पृ.-165
34) "दूसरा सप्तक" ग्रंथि (श्री हरिनारायण व्यास) पृ.-74

का आशय स्वीकार्य होता है, तो राष्ट्र से देश की जनता का। महात्मा जी की प्रेरणा से देश-भक्ति एवं राष्ट्रीयता की कविताओं की भरमार होती गयी। राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती, श्री रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' 'मिलन' और 'स्वप्न' काव्यों के अतिरिक्त श्री माखन-लाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय कविताएँ सर्व-प्रसिद्ध हैं।

स्वतंन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् सापेक्ष रूप से स्वदेशानुराग की भावना, जैसे जनता में वैसे ही कवियों में भी, कम होती जाने लगी; मानों वह देश को स्वतंन्त्र बनाने का एक साधन-मात्र रहा हो। पेड़ पौधों, पर्वत-जंगलों, नदी-नालों, पशु-पक्षियों आदि से प्रेम करते हुए खाली पेटों को क्या मिलेगा? असल में खाली पेट उनसे प्रेम का नाता जोड़ ही कैसे सकेंगे? अतः स्वातन्त्र्योत्तर कविता में देशानुराग का भाव ह्रासोन्मुख होने लगा।

नयी कविता और दिगंबर कविता में भी हम यही बात पाते हैं, किंतु एक पग आगे जाकर ये लोग 'देश-प्रेम' नाम पर जनता से छल करनेवालों की कड़ी से कड़ी निंदा भी करते हैं। वे कहीं कहीं देश की भी निंदा करते हैं, तो उनका उद्दिष्ट जनता का शोषण करते हुए उनको छलनेवाले शासकों की निंदा करना मात्र होता है।

डॉ. रामविलास शर्मा सवाल करते हैं कि इस पुण्य-भूमि ने जनता को दिया क्या है। उदाहरणार्थ यहाँ पर अनगिनत युवतियों ने वेश्यालय खोल क्यों दिये हैं? ... आज भी जो निःस्वार्थ युवक हैं, उन्हें सामाजिक दायित्व उठाना चाहिये; भारत के गरम लहूदार नौजवानों को चेताना चाहते हैं कि अब ही सही, वे जाग पड़ें और 'देशोद्धार' अर्थात् जन-जीवन के उद्धार का भार उठावें-

> इस पुण्य-भूमि में तीस हजार युवतियों ने
> क्यों वेश्यालय में जाकर आश्रय पाया?
> ----------------------------
>
> ------------------------------
>
> वह पुण्य भूमि है मानवता के कवि-गुरु की
> प्राचीन तपोवन-सी ही सुन्दर, पावन !
> बलिदान त्याग की भूमि--
> अभी निःस्वार्थ युवक हैं, जीवित है अब भी सामाजिक जीवन।
> ----------------------------
>
> ----------------------------
>
> **ऐ नौजवान भारत के।**

गरम लहू को आज चुनौती है, सब मिलकर भार उठाओ।[35]
(बंगाल और शान्तिनिकेतन को लक्ष्य करके)

दिगंबर कवि श्री ज्वालामुखी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि फूटते जाति-रूपी दर्पण में महात्माओं का त्यागफल (देश का स्वातन्त्र्य) निष्फल होकर बह रहा है--

फूटते जाति-दर्पण में
महात्माओं का त्यागफल
निष्फल हो बह रहा है। [36]

वे आगे कहते हैं --

स्वतन्त्र भारत के कल्पनातीत दृश्य
नारों के प्रभंजन
साम्यवाद के स्वर्ग सोपान
कीर्ति की खुजली के मंडूकारव
पद के मोह का सेवा-पारायण
राजनीति के व्यभिचार-मन्दिरान्तर्गत रहस्य
दलबंदीवाले पीठाधिपतियों के रेंग-चक्कर
सूक्तियों के शुक्तिमतीतट
चुनावों के पन्नगों के खेमे
वादों के प्रहसन [37]

ऊपर की पृष्ठ-भूमि में, भला, देशानुराग एवं राष्ट्रीय-भाव का क्या अर्थ होगा? केवल वे नेताओं की बातों में रहनेवाले निरर्थक अंश हैं। इधर लोग भूख से तड़प रहे हैं, तो न उनमें अपने नेताओं की बातों में कोई अर्थ सूझता है न वे भाव ही जागृत होते है। नये कवि इसी ओर पाठकों की दृष्टि आकृष्ट करना चाहते हैं कि हमारा इस जग में, मानों केवल मरने का ही नाता है, हम अपने जीवित रहने के निमित्त अपना पेट दिखाते हैं, तो कोई प्रयोजन नहीं होता; हमें जीना ही नहीं आता। काश कि हम चोर बन जीते। तब तो अवश्य जीविका का कुछ साधन जुटा पाते। ये नेतागिरी करने वाले लोग सब चोर-लुटेरे हैं, इसमें यह ध्वनि है। इन चार पंक्तियों में कुशल कलाकार देश-प्रेम के विपरीत भावों को पाठकों के मन में प्रविष्ट करता है-

35) "तारसप्तक" गुरुदेव की पुण्य-भूमि (डॉ. राम विलास शर्मा)पृ.-241
36) "दिगम्बर कवुलु" 'द्वितीय संकलन', 'किलकिंचित' (श्री ज्वालामुखी) पृ.77
37 -वही-पृ. 80-81

आह मैं चोर न हुआ।
हाय! मुझे कुछ नहीं आता।
जग से मरने का ही मेरा नाता है।
खाने को, जीवन-पेट दिखलाना है जग में बस [38]

सच्चे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का उपभोग करनेवाला व्यक्ति ही देश से प्रेम कर सकता है, अपने साथियों से प्रेम करता है और सारी मानव-जाति से भी प्यार का नाता जताने की उसमें उमस होती है। हमारे संविधान में व्यक्ति-व्यक्ति केलिए वाक के स्वातन्त्र्य की हामी तो भरी गयी है, किंतु क्रिया-रूप में देश-द्रोही, 'राष्ट्र-द्रोही' एकता का घातक इत्यादि की मुहर लगाकर अथवा अन्तरंग-रक्षा या 'राष्ट्रीय-सुरक्षा' के अधिकरण का आधार लेकर किसी भी व्यक्ति को कैदखाने में बन्द किया जा सकता है-वह भी कितने ही बरसों तक, बिना कारण बताये। तब एक बन्दी व्यक्ति देश से क्या प्रेम करे? अपनी निरपराधिता से निर्लिप्त साथी-संगियों से कैसे प्रेम करे? क्या, वह अपनी हथकड़ियों या जेल के सीखचों से प्यार करे? उन्हें बनानेवालों को और उनके बनने की जगह-अपने देश को प्यार करे? दिगम्बर कवि श्री निखिलेश्वर केवल तीन पंक्तियों में इन सभी बातों पर विचार करने की हमें प्रेरणा देते हैं-

अलंकार-रूप में
वाक्-स्वातन्त्र्य की घोषणा करनेवाले
मिथ्या ग्रंथ के पृष्ठ [39]

यहाँ मिथ्या ग्रंथ से भारतीय संविधान का आशय है जिसमें सब की 'समानता' के साथ-साथ वाक्स्वातन्त्र्य की घोषणा की गयी है।

श्री ज्वालामुखी को भी अपार दुःख है कि प्राप्त स्वातन्त्र्य के फलस्वरूप मन में देश-प्रेम एवं हर्षातिरेक के स्थान पर हमें दुःख ही दुःख हो रहा है। स्वतन्त्र भारत (माता) का चित्र वे इस प्रकार उतारते हैं -

बीस वर्षों का गर्भ -
प्रसव के बिना
जमकर बढ़ता जा रहा है
अपहसित हो रहा है
चक्कर खा रहा है
गर्भवती होना

38) "दूसरा सप्तक," 'एक स्वप्न' (ले.श्रीशमशेर बहादूर सिंह, पृ. 107
39) "दिगंबर कवुलु" 'तृतीय संकलन' (याचकता) श्री निखिलेश्वर,पृ.-159

नीति-भ्रष्ट होना माना जा रहा है
भारत माता का जीवन
पश्चिम का प्रकाश - द्वीप बन गया है [40]

प्राचीनकाल से लेकर आज तक हिमालय-पर्वत देश का मुकुट कहा जाता रहा है। कालिदास ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। भारतीय सभी भाषाओं में इस नगराज को भारत माता का मुकुट कहा गया; परंतु स्वतंत्रता के पश्चात् यह नगराज अथवा नग्न 'मुनि' आज आँसू बहाता-सा मालूम होता है क्योंकि देश की जनता की दुरवस्था दूर करने में भी वह विवश है और बरदाश्त करने में भी अशक्त है। भारत के लोगों का व्यष्टि रूप में सम्बोधन करके श्री विजय-देवनारायण साही कहते हैं कि हमने हिमालय जैसा दृढ़ हृदय पाया, हमारा अनंत ललाट भाग सूरज समान समुन्नत है, छाती विशाल है, किंतु दृश्य दुःख-दम्ध है, किसी भी तरह के सात्वाना के वचन हमारे भग्न जीवन में धीरज देने में असमर्थ हैं। हम प्रत्यक्ष में हँसते हैं और एकान्त में रोया करते हैं-यह है हमारे स्वातन्त्र्य का परिणाम और यह है हमारे द्वारा प्राप्त स्वातन्त्र्य के उपभोग का क्रम

ओ दुःखी ह्रदय,
है सत्य हिमालय-सा तुमने दिल पाया था
है सत्य कि तुमको भाल मिला था सूरज-सा
है सत्य कि छाती थी पठार-सी अन्तहीन,
औ आज सिर्फ़ भग्नावशेष--
बेस्वाद सान्त्वना, धीरज़, ढाढ़स, सब्र, भाग्य,
उजियाले की जड़ हँसी
अन्धेरे के आँसू। [41]

अब तक के उदाहरणों से स्पष्ट है कि देशानुराग, देश-भक्ति एवं राष्ट्रीयता के भावों के सम्बन्ध में नये कवि और दिगंबर कवि, दोनों समान रूप से स्पष्टता का आश्रय लेते रहे हैं। नेतागिरी के क्षेत्र में सदा प्रयुक्त इस शब्दावली की वे सीधे कलई खोल देते हैं। इस प्रकार देश-प्रेम की परोक्ष रूप से ये कवि नयी परिभाषा देते हैं कि सच्चे शब्दों में स्वातन्त्र्योत्तर भारत में जनता की उपेक्षा के साथ देश मर-सा चुका है और स्वातन्त्र्य के नाम पर नयी तरह की गुलामी आज चालू है।

40) "दिगंबर कवुलु" 'तृतीय संकलन', 'शस्त्र चिकित्सा', (श्री ज्वालामुखी) पृ. 244-245
41) "तीसरा सप्तक" "हिमालय के आँसू" (श्री विजयदेवनारायण साही) पृ. 300

10. मार्क्सवादी दृष्टिकोण : यह जानी हुई बात है कि रूसी क्रांति के साथ संयुक्त सोवियत रूस को विमुक्ति मिली और इसने पूँजीवादी देशों के श्रमिक वर्ग की जनता में एक आशा भरी चेतना दी। लोग विद्रोह के द्वारा अपने यहाँ वहाँ, की-सी समता के आकांक्षी बनने लगे। संसार के सभी लेखक भी इस तरफ़ दत्तचित्त हो गये। कवियों में वर्गहीन समाज की आकांक्षा बढ़ने लगी और उसकेलिये आवश्यक सामग्री जुटाकर वे कविता करने लगे। मार्क्सवादी व्यवस्थापूर्ण देशों में जन-जीवन की सुखमयता के प्रचार में कवियों का आकर्षण बढ़ता गया। श्री निराला जी की 'भिक्षुक' और 'वह तोड़ती पत्थर' वाली कविताओं सेइसका प्रारम्भ कहा जाता है, किंतु ये कविताएँ मार्क्सवादी नहीं हैं। पंत और दिनकर की कविताओं में मावर्सवादी दृष्टिकोण का स्फुट दर्शन देने लगता है। मार्क्सवाद की सैद्धांतिक विशेषता का उल्लेख करने के अवसर पर 'वर्ग-संघर्ष' अनिवार्य होता है। सारा समाज, विश्व भर में, दो वर्गों में बँटा हुआ है-एक शोषक वर्ग है और दूसरा शोषित वर्ग। धनवान लोग और अधिक धन कमाने के विचार से कारखानों व खेती में पूँजी लगाते हैं जिससे दरिद्र व्यक्ति उनके अधीनस्थ होकर अपने पेट की पूर्ति केलिये श्रम करते हैं। धनवान लोग अधिक संपन्न होते हैं और धनहीन दरिद्र से दरिद्रतर होते जाते हैं। धर्म के ठेकेदार पूँजीपति-वर्ग अथवा शोषक-वर्ग के समर्थक रहकर आप सुखमय जीवन बिताया करते हैं और शोषित वर्ग की जनता को हमेशा अज्ञान में रखने केलिए कर्मवाद एवं भाग्यवाद के सिद्धान्तों का प्रचार किया करते हैं। इस प्रकार **धर्म शोषण की एक सबल शाखा है।** और धर्म भी, जो सनातन की रक्षा का प्रचार किया करता है, शोषित वर्ग का विरोधी है। कला एवं प्राचीन संस्कृति के नाम पर कुछ लोग विष के जो बीज समाज में बोया करते हैं, वे भी शोषक-वर्ग के साझेदार हैं। साहित्य एक कला है। काव्य की विधा उसका प्रधान अंग है। काव्य-कला भी अपने पोषक-वर्ग का साथ देकर जनता के प्रति भारी अन्याय करती आयी है। इससे स्पष्ट है कि शोषित-वर्ग के अस्तित्व एवं उसकी दयनीय स्थिति के पीछे न केवल पूँजीपति वर्ग है, बल्कि उसके पोषक-समर्थक अनेक अन्य हिस्सेदार हैं जो अपने प्रयोजन केलिए सामान्य जनता के प्रति होनेवाले अन्याय को देखते हुए चुप ही नहीं रहते बल्कि हाथ भी बँटाया करते हैं।--

इस पृष्ठ-भूमि में एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण मानवतावाद की प्राथमिक अवस्था का सोपान हो सकता है, परन्तु मानवतावाद नहीं हो सकता। मानवतावाद मानव-मानव के बीच में किसी भी प्रकार के भेद-भावों को स्वीकार नहीं करता। **'वर्ग' की**

भावना मानव-समूह का विभाजन करती है; मानवतावाद वर्ग-भावना के परे होकर मानव-मात्र की सुख-सुविधा की कामना करता है। वर्ग-भावना के कारण मार्क्सवाद वर्ग-संघर्ष को अनिवार्य मानता है, मानवतावाद समाज के अन्तर्गत सब तरह के लोगों से प्रेम का नाता जोड़ता है, किसी की करनी के कारणों को ढूँढने का यत्न करता है और किसी के दोष के भी कारण को समझकर उसे क्षमा कर उससे प्रेम का नाता जताना उसको इष्ट है।

नये कवियों और दिगम्बर कवियों में मानव-मूल्यों की ओर दृष्टि अवश्य रही है, परन्तु शोषित वर्ग के प्रति होनेवाले अन्यायों से उनके हृदय में भड़कती दुःखाग्नि शोषक-वर्ग एवं उसके पिछलग्गुओं पर बरस पड़ती हैं। इस प्रक्रिया में रूढ़ि-बन्धनों, अर्थहीन आचारों एवं अनावश्यक प्राचीन परम्पराओं की वे खुलकर निन्दा करते हैं।

नयी कविता पर प्रतीपगामिता का लांछन है; भले ही यह एक-दो कवियों के विषय में सत्य ठहरे, सामान्य रूप से तो नये कवियों में अधिकाधिक लोग मार्क्सवादी दृष्टिकोण के समर्थक हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा पहले से मार्क्सवादी दृष्टिकोण रखनेवाले हैं; आपने मार्क्स के सिद्धान्तों को खूब हज़म किया था और किसी कवि या उसकी कृति अथवा किसी काव्य-धारा के अवसर पर आप मार्क्सवादी दर्शन के चश्मे से देखते हैं क्योंकि अनादिकाल से सामाजिक व्यवस्था शोषक-शोषित की रही है। अतः आपकी यह आलोचना बहुत ही सही रहती है। कवि के रूप में आपका मार्क्सवादी दर्शन सुयुक्त रूप में प्रस्फुटित होता है। इस शोषित-समाज की व्यवस्था में जीवन की असत्य स्थिति का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में वे इसी सिद्धान्त-ज्ञान की पृष्ठ-भूमि में करते हैं-

कहाँ है जीवन? कहाँ है चिरन्तन आत्मा?
हड्डियों का संघर्षण जीवन है,
हड्डियों में बसा हुआ ताल ही, आत्मा है।
युग के ये नर-कंकाल,
हड्डियों के ताप से अशान्त हैं।
गालों की सूखी हुई हड्डियों में,
धँसी हुई आँखों की पुतलियों में,
बसी हैं भावना विद्रोह की ।

बढ़ते है नर कंकाल, नव युवक,
खडी़ जहाँ सेना परतन्त्रता की मृत्यु की,
भूख की, दु:सह अपमान, अत्याचार की [42]

श्री निखिलेखर कहते हैं कि पूँजीपति लोग धन की मुट्ठी में पेट भरे हुए जोंक हैं, विश्व सारा बमों की छतरी के नीचे ठहरा हुआ है, साधारण मानव आवश्यकताओं के द्वीप पर स्थित है, उसके चारों ओर धन का सागर है और उसको घेरकर समुन्दरी डाकू हैं, और मानव अपने घुटनों के बीच में अपना सिर ठूँसकर बैठा हुआ है। शोषक तथा शोषित वर्ग का यह बिम्ब-चित्र सचमुच आँखों के आगे सजीव, दृश्य अंकित कर देता है -

धन की मुट्ठी में पेट भरे हुए जोंक
बमों की छतरी के नीचे विश्वान्तराल
आवश्यकताओं के द्वीप पर व्यक्ति
सब तरफ. धन-सागर
चारों ओर समुन्दरी डाकू
घुटनों के बीच में सर ठूँसे मानव [43]

नयी कविता के क्षेत्र में सुश्री शकुन्तला माथुर का विशिष्ट स्थान है क्योंकि आपका मार्क्सवादी दृष्टिकोण मानवतावादी विचाराभिव्यक्ति से मिला होता है। इसी से आपकी कविताओं में हृदय को बेधने का असर भरा होता है। चल-चित्र की दृश्यात्मकता से भरी ये पंक्तियाँ सचमुच अत्यन्त मनोरम हैं-

निकल रही छपकली सी
लडकी दरवाज़े से
गली का पिल्ला बन
फिर रहा बच्चा
लिये खाली बोतल
मिट्टी के तेल की
कूड़े से भरी गाड़ी
खडी है गली के बीच
भंगी का इन्तजार

42) *तारसप्तक; हड्डियों का ताप, (डॉ. रामविलास शर्मा), पृ. 249*
43) *"दिगंबर कवुलु" द्वि. सं, विलाप करती दीनता (ले. श्रीनिखिलश्वर), पृ. 119*

गन्दगी का संसार
जिसमें है बोल रहा
मौत के सिगनल-सा
भौंपू दूर मील का
भूखा ही
कौन है जा रहा?
लीड़र का निर्माता।[44]

इन पंक्तियों में जहाँ शोषित वर्ग के जीवन की दयनीयता व्यक्त है, वहीं पर शोषक-वर्ग मिल-मालिक के शोषण का भी परोक्ष संकेत है जो उस वर्ग के सदस्यों की शोचनीय अवस्था के उत्तरदायी है। आखिर इन्हीं शोषकों को चुननेवाले ये ही शोषण की व्यवस्था को जारी रखना चाहते हों। कैसा दर्द भरा व्यंग्य है!

श्री शमशेर बहादूरसिंह भी शोषित मज़दूर-किसान वर्ग के लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हैं जो अपने मन की आग को मिट्टी में प्रेषित कर जगत को शक्ति से भर देते हैं। कवियों को उनके प्रति अपना दायित्व निभाने के हेतु सड़े-पुराने अन्धकूप के गीतों के अर्थहीन भाव-जाल छोड़कर बुर्जुआ भावों को काटना है-

वह मज़दूर किसानों के स्तर कठिन हठी
कवि हे, उनमें अपना हृदय मिलाओ
उनके मिट्टी के तन में है अधिक आग,

काट बूर्जुआ भावों की गुमठी को गाओ।

सड़े पुराने अन्धकूप गीतों के -
अर्थहीन हैं भाव, मूक गीतों के -
अपरिचय का लांछन दे बिलकुल आज भुलाओ।[45]

इन पंक्तियों की ही भाँति आपके मार्क्सवादी दृष्टिकोण की विवृति एक दूसरी कविता में हम पाते हैं-

44) *"दूसरा सप्तक" लीडर का निर्माता, ले. श्रीमती शकुन्तला माथुर) पृ. 50-51*
45) *"दूसरा सप्तक" 'स्वतंन्त्रा दिवस' पर (श्री शमशेर बहादूर सिंह) पृ. 108*

साम्राज्य पूँजी का क्षत होवे
ऊँच-नीच का विधान नत होवे
साधिकार जनता उन्नत होवे
जो समाजवाद जय पुकारती।[46]

लेखक इन पंक्तियों में प्रत्यक्ष ही ऊँच-नीच की भेद-भावना की निकासी केलिए पूँजीवादी साम्राज्य की क्षति की कामना करता है जिससे जनता को वस्तविक सत्ताधिकार प्राप्त हो जावे।

वर्तमान व्यवस्था-जन्य दयनीयता जो आम जनता में, विशेषकर दलित-वर्ग के व्यक्तियों के जीवन में, दिखाई पडती है, उस से पता चलता है कि यह शोषक वर्ग अपने शोषण-प्रक्रम को और मज़बूत करते-करते शोषित वर्ग को दरिद्र से दरिद्रतर बनाता जा रहा है-

झोंपडी का व्यक्ति प्लाटफारम पर
रिक्षा चलानेवाला टी.बी.में
टी.बी.का रोगी कैन्सर में
पंचवर्षीय योज़नाओं के अनुसार
प्रगतिशील रहते समय...[47]

पंचवर्षीय योजनाओं को ठीक-ठीक अमल करने से देश की, अर्थात् जनता की, प्रगति अवश्य होनी चाहिए, परंतु ये कागजों तक मात्र सीमित हैं और शोषक वर्ग अपनी पूँजी बढाता जा रहा है जिससे झोंपडीवाले व्यक्ति को कर्ज न चुकाने के कारण उसे बेचकर प्लैटफारम पर आ बसना पड़ता है, रिक्षा चलानेवाला उसे अपनाने से टी.बी.का शिकार होता है और फिर कैन्सर का रोगी बन जाता है। यह सब हमारी प्रगति है; अर्थत् समाजवाद से साम्यवादी की ओर अग्रसर होने के बदले में हम सुदृढ़ पूँजीवादी शोषक-समाज की जड़ें शाश्वत रूप से कायम कर रहे हैं।

उपर्युक्त उद्धरणों एवं विश्लेषणों से स्पष्ट है कि नये कवि एवं दिगंबर कवि, दोनों अपने देश में स्वातन्त्र्योत्तर भारत में मार्क्सवादी व्यवस्था के अपने सपने को कोरा सपना मात्र देखकर कितने दु:खी हैं। चूँकि संपूर्ण देश की स्थिति एक-सी है, भिन्न भाषाओं के होने पर भी नये कवियों व दिगंबर कवियों में अनुभूति-प्रवणता एवं भाव-साम्य की ही नहीं, उसे व्यक्त करने की शैली में भी बड़ा साम्य नज़र आता है। **मातृ-भाषा जो भी हो, संवेदना एक-सी रहती है, निवास-स्थल कहीं भी**

46) -वही- "भारत की आरती" (श्री शमशेर बहादूर सिंह) पृ.-109
47) "दिगंबर कवुलु " 'तृतीय संकलन', (बुद्ध क्षमा) (श्री नग्नमुनि)पृ.-185

हो, व्यक्त करने की आकुलता एकसमान होती है, इस तथ्य का इस एक प्रसंग के आधार पर हमें पता चल जाता है।

11. समाजवादी विचार-धारा : आम तौर पर नये कवि और दिगंबर कवि सामाजिक जागरण के कवि हैं। कहीं उन्होंने प्रकृति-वर्णन अथवा उससे भिन्न प्रसंग चलाया हो, तो उसका सार्थक प्रयोजन अवश्य रहा होगा जो सामाजिक दायित्व को पुष्टि पहुँचाने की नींव डालता होगा। विवेच्य दोनों भाषाओं के कवियों की कविताओं में जो समाज-सम्बन्धी विचार-धारा है, वह समकालीन युगानुभूति से अनुप्राणित है। सामयिक सामाजिक स्थिति से जागरूक इन कवियों की रचनाओं में जन-जीवन के वैविध्यपूर्ण चित्र तो अंकित मिलते ही हैं; और साथ-साथ नग्न यथार्थ से भरे जन-जीवन के दैन्य पर अपना शोक व उसके कारणें का उल्लेख करके उसे दूर करने का प्रस्ताव भी जगह-जगह पर मिलता है। एक प्रकार से नयी कविता एवं दिगम्बर कविता सामाजिक यथार्थ का चित्रण व व्याख्या करती हैं। यह कथन दिगंबर कविता के विषय में और सत्य साबित होता है। नयी कविता और दिगंबर कविता में प्रस्तावित सामाजिक जीवन-दर्शन में एक स्पष्ट अन्तर गोचर होता है। नये कवि समाज के वर्गों के बँटे होने तथा एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण से खिन्न हैं और इस सम्बन्ध में सामाजिक चित्रण का अंकन करते हैं। जीवन के वैषम्य के मूल में वर्ग-विभाजन का वैषम्य ही पाते हैं। उनके विचार में यह वैषम्य व्यवस्था की उपज़ है। परंतु दिगंबर कवि वैषम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के कारणों की ओर अपनी दृष्टि केन्द्रित करते हैं। उन कारणों के अंतर्गत व्यवस्था के भिन्न-भिन्न ठेकेदार जमा हैं यथा पूँजीपति लोग, जैसे मिल-मालिक, जमींदार, बड़े व्यापारी, कांट्राक्टर, धर्म के अधिनायक, गन्दगी भरे साहित्य के स्रष्टा, कला के नाम पर भद्देपन का प्रचार करनेवाले, संस्कृति के नाम पर पुरान-पंथिता की ओर जनता को खींचनेवाले इत्यादि। विशेष रूप से सिनेमा का धन्धा और उसके नायकों से इन्हें बड़ी खीज़ है। सरकार-प्रदत्त पुरस्कारों व उपाधियों के पीछे पड़कर राजनीतिज्ञों की परिक्रमा करनेवालों को भी वे सामाजिक कुव्यवस्था के उत्तरदायी मानते हैं। अतः इन सभी की ओर पाठकों की दृष्टि आकृष्ट करते हुए इनकी कड़ी से कड़ी निन्दा करते हैं, इनकी निन्द्य करतूतों का भंडाफोड़ करते हैं और तीखे से तीखे पद-जाल का प्रयोग करके वे उन्हें गालियाँ देने से भी नहीं हिचकते।

प्रथमतः हम नये कवियों व दिगंबर कवियों की कविता में चर्चित सामाजिक स्थिति की कुछ तुल्य झाँकियाँ देखेंगे।

कहा जाता है कि अज्ञेय प्रतीपगामी हैं और समसामयिक जनता की दुरवस्था से गाफ़िल हैं, परंतु निम्नांकित पंक्तियों में उनका उदारवादी एवं समवेदना-युक्त कवि-हृदय प्रत्यक्ष हो जाता है-

यह जो कचरा ढोता है
यह जो झल्ली लिये फिरता है और बेघरा घूरे पर सोता है,
यह जो गदहे हाँकता है,
यह जो तंदूर झोंकता है,
यह जो कीचड़ उलीचती है,
यह जो मनियार सजाती है,
यह जो कन्धे पर चूडियों की पोटली लिये गली-गली झाँकती हैं,
यह जो दूसरों का उतारन फींचती है,

पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा
उसकी मैं कथा हूँ। [48]

उपर्युक्त वर्णन में जिन-जिन पेशों के व्यक्तियों की चर्चा हुई है, वे सब श्रमिक वर्ग में समाविष्ट हैं; इनकी चर्चा करनेवाला और उनसे समवेदना रखनेवाला कवि असामाजिक कैसे होता? समकालीन समाज से चेतनाशून्य कैसे कहलाता? इस सम्बन्ध में श्री अज्ञेय पर एक दूसरा आरोप है कि यह सब मौखिक सहानुभूति है जिसे 'बौद्धिक हमदर्दी' की उपाधि दी गयी है। तब तो दूसरे कवियों द्वारा चर्चित ऐसे प्रसंगों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है; रही प्रेषणीयता का मानदंड, एक-एक कवि की प्रेषणीयता की सामर्थ्य के स्तर होते हैं। अतः नयी कविता के अग्रदूत श्री अज्ञेय को हम कदापि सामाजिकता से अनभिज्ञ और कवि-कर्म-शून्य कह नहीं सकते।

श्रमिक वर्ग के अन्तर्गत विशुद्ध शारीरिक श्रम करनेवाले लोग आते हैं। श्री चेरबंडराजु चावल के बोरे में गाड़ी पर लादते-उतारते हमालियों का दुःखद वर्णन करते हुए कहते हैं कि उनकी पीठ पर अनाज के बोरे हैं, किंतु उसका पेट खाली बोरा है। पेटियाँ व होलडाल ढो-ढोकर उसकी कमर झुक गयी है। गाड़ी पर वह रहता है या गाड़ी उस पर

48) "तारसप्तक," मैं वहाँ हूँ (श्री अज्ञेय) पृ.306-307

पड़ती है? बोरों में बोरा होकर उसका जीवन हाट में है; सेठ उसको दाना-दाना गिन-गिन कर देता है, किलो की दर पर माँगे, तो इसके जीवन को काटता है। कचरा सभी कुछ लारी पर लादना है, चोरी का माल उतार कर ढोता है। दूकान में सभी कुछ के होने पर भी उसके मुँह में मिट्टी ही आती है; उसे होश सँभालना चाहिये कि कमर कसकर चुनौती देने से ही जीवन चलता है-

चावल का है बोरा पीठ पर
पेट सही खाली-सा बोरा है
ढो ढोकर होलडाल औ, पेटियाँ
कमर झुक गयी है पूरी-सी

गाड़ी पर तू है या तुझपर ही
गाड़ी है, तु बोरों में बोरा
जीवन तेरा सूना खुली हाट
में नंगा होकर बैठा है तू

दाना-दाना गिनकर
सेठ तुझे यों चूसे जाता है
किलोग्राम की दर से माँगे तो
तेरे जीवन को ही काटेगा

कूड़ा-करकट, कचरा ढोकर
लारी में भर देना है तुझको
चोरी का माल बना बाबू का
लारी से ढोकर ले जाना है

दूकानों में सब कुछ मिलता है
तेरे मुँह में मिट्टी फिंकती है
कसकर तू कमर चुनौती देना
तब ही तेरा जीवन ठहरेगा। [49]

जब कि श्री अज्ञेय शोषित-वर्ग के विभिन्न धन्धे-वालों का उल्लेख करते हैं तो श्री चेरबंडराजु शोषित वर्ग के प्रतिनिधि-श्रमिक का सीधा उल्लेख करते है; परंतु दोनों का लक्ष्य असमानतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था की तरफ. पाठकों की दृष्टि खींचना है।

---

49) "पल्लवी" (श्री चेरबंडराजु) हमालन्ना-कूलन्ना (हे हमाली भाई-हे मजदूर भाई) पृ.-54-55

हमारे समाज में कार्यालयीय वर्ग की विशिष्टता सर्वमान्य है। ब्रिटिश-शासनकाल में दफतरों के कार्यवाही लोगों की स्थिति अच्छी थी; परंतु सवतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात देश के अधिनेता लोगों में विश्वासपूर्ण आदर के कारण इनमें जड़ीभूत निष्क्रियता आ गयी थी, ये देशी सरकार से कैसे लडें? अपने ही प्रतिनिधियों के विरुद्ध आवाज केसे उठायें? अत: जीवन-स्तर के उठते और अपने आर्थिक स्तर के गिरते जाने पर भी चुप्पी साधे रहने लगे। फलत: उनका जीवन दिन-ब-दिन गिरता जाने लगा था। स्वातंन्त्र्योत्तर भारत के इस सरकारी प्रतिनिधिवर्ग की दुरवस्था का श्री धर्मवीर भारती निम्नांक़ित शब्दों में वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि जनता के प्रतिनिधि उनकी तरफ़ से सरकार के काम-काज चलानेवालों की आर्थिक दशा को जिस प्रकार संकुचित बनाते जा रहे हैं, इसी विचार से भारती जी ने कविता के शीर्षक का नाम 'जाड़े की शाम' रखा है जिस प्रकार शीतवश मानव के शरीर के संकोच की ओर हमारा ध्यान जाता है, उसी प्रकार व्यवस्था-जन्य आर्थिक शीतलतावश लोगों के जीवन के संकोच की ओर भी हमारी दृष्टि जाती है।

दफ़तर के थके हुए क्लर्कों की डाँट-डपट
बच्चों की चीख-पुकारें
पत्नी की भुन-भुन
लेकिन फिर भी इस शोरो गुल के
इतना सन्नाटा, इतनी मुर्दा खामोशी
जैसे घर में हो गयी मौत पर लाश अभी तक खमोश हों [50]

मध्यवर्गीय परिवार की दुस्थिति का इसी प्रकार का वर्णन श्री निखिलेश्वर करते हैं कि इस वर्ग के परिवारों के ओठों पर मांदहास नहीं दिखता ..... इनके जीवन को सुधारने के साधन, इनके दिल को आश्वासन पहुँचानेवाला सहारा, इनकी भूख को दूर करनेवाले सहचर और इनके जीवन में उदयकालीन शोभा की छटा भरनेवाला सूरज नहीं के बराबर है--

इन ओठों के मन्दहासों पर चमक नहीं

मेरे जीवन को सुधारने वाली कूँची में रंग नहीं
अपने दिल के धान को सहलाने को मेरे हाथों की उँगलियाँ नहीं हैं
मेरी आँतडियों की तहों में चीखों को छोडकर भूख की आर्द्रता नहीं

50) "दूसरा सप्तक" 'जाडे की शाम' (श्री धर्मवीर भारती) पृ. 197

इस जीवन में उदय नहीं होगा
मेरे मध्यवर्गीय परिवार की आँखों को उदीयमान सूर्य नहीं दिखेगा।[51]

इस वर्ग के परिवारों की आर्थिक दुस्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि इन्हें चन्द रुपयों का कर्ज़ मिलना भी अनहोनी बात है। श्री चेरबंडराजु थोडे-से शब्दों में खेद-भरे चमत्कार की पृष्ठ-भूमि में कारुणिकता का रस यों पाठकों को चखा देते हैं कि सात दिनों से रक्तहीनता से भरे अपने एक मित्र के मुखड़े में आपको पेट्रोमैक्स लाईट की-सी रोशनी दिखाई दी। आपने जब पूछा कि 'बात क्या है? तो मुँह को आनन्द से विस्फारित करते हुए उसने कहा था कि उसे कर्ज़ मिल गया है। जीवन के वैषम्य के चित्रण में विषाद की व्यंजना की यह गाढ़ता अत्यन्त कारुणिक भी है और मर्माकर्षाक भी-

एक सप्ताह से
खून की बूँद से खाली मुखडे में पेट्रोमैक्स लाईट की रोशनी

मैंने पूछा कि बात क्या है?
मुखड़ा सूप-जैसा विशाल बनाकर उसने कहा 'कर्ज मिल गया हैं'[52]

श्री प्रभाकर माचवे बीसवीं सदी में वैज्ञानिक प्रगति के बहाने सामान्य मानव की सामयिक दुस्थिति का एक सुन्दर चल-चित्र खींचते हैं। हमने यात्रा में शीघ्रता प्राप्त कर ली है, अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों का निर्माण किया है, देश को बहुत आगे ले गये हैं, परंतु हम खुद आलसी बन पिछडे हुए हैं, फिर शोषण-व्यवस्था से लगने का श्रमिकों में जागरण ही नहीं है; वे आज भी शिक्षा से वंचित हैं जिससे शोषक उसे लूटमारकर जीता है और ये जीते हुए मृत-समान हैं। लेखक के विचार में सामयिक जन-जीवन का यह स्फुरण स्पष्ट है-

बीसवीं सदी ने हमें क्या दिया?

गति-अतिशयता वेगातुरता।
इन सारे आविष्कारों ने

51) "निर्मित" (श्री निखिलेश्वर) 'मध्यवर्ग' पृ.-8-9
52) "पल्लवि" (श्री चेरबंडराजु) 'आरोप्राण' (छठवाँ प्राण) पृ.-27

जग उन्नत किस तरह किया?
क्रय-विक्रय के संस्कारों ने
और आलसी हमें कर दिया।
बढ़ती शोषण-मंत्र-क्रिया
बीसवीं सदी ने यही दिया?
औ' श्रमिक बिचारा मलिन-दीन
हो गया हमें ही नागवार

जिसने मारा, बस वही जिया।
बीसवीं सदी ने यही दिया। [53]

श्री ज्वालामुखी कहते हैं कि देश भर में शापग्रस्त लोग हैं जो बारिश में नहाते हुए, लू में तप्त होते हुए, भूख को चबाकर आँसू पीते हुए, सर्दी को सहते हुए, झड़े हुए आशा-रूपी पत्तेवाले पेडों के नीचे हिचकीदार लोरी में द:ख की झपकीवाले हाथ के तकिये पर तरंगों में सपने देखा करते हैं---

अबोध गँवार लोग

देश भर में शापग्रस्त
बारिशों में स्नान कर लू में तापतप्त होकर
भ्ख को खाते हुए और आँसू पीते हुए
सर्दी को ढँक लेकर
झड़े हुए आशा-रूपी पत्र-रहित पेडों के नीचे
हिचकियोंवाली लोरी में
दु:खों की झपकी-रूपी हाथ के तकिये पर
तंरगों-तरंगों में सपने देखते रहते हैं। [54]

समाज की नग्न वास्तविकता को कलापूर्ण शैली में सजाकर जन-सामान्य के दैन्य को और गाढा बनाने का इस कवि का प्रयास अवश्य स्तुत्य है।

श्री चेरबंडराजुने जंग नामक अपनी एक कविता में सभी कोनों से देश भर में गन्दगी भरनेवालों की ओर इशारा किया है। उनका कहना

53) "तारसप्तक",'बीसवीं सदी' (श्री प्रभाकर माचवे) पृ.-154-155
54) "दिगंबर कवुलु" "द्वितीय संकलन," किलकिंचित्, श्री ज्वालामुखी पृ. 81-82

है कि धर्म-संस्थानों के मठाधिपति, मन्त्री-महोदयों के वादे, वार्षिकोत्सवों के विभिन्न अवसर, विभिन्न देशों के बीच में होनेवाली मित्रता एवं शत्रुता की बैठकें, चम्चागीर कांट्राक्ट, तिरुपति के मुँडे सिर, मनौतियाँ .... ये सब जंग हैं। अल्पतम शब्दों द्वारा सामाजिक यथार्थ को वैविध्यपूर्ण बनाकर पाठकों के आगे बिछाकर रखना इस कवि के प्रयास की विशेषता है जो इन पंक्तियों द्वारा प्रमाण देती है-

मठाधिपतियों का हंगामा जंग
मन्त्रियों के वादों में जंग
वार्षिकोत्सवों में जंग
शत्रुता और मित्रता में जंग
तिरुपति के बेलमुंड जंग
मनौतियाँ जंग
आन्ध्रप्रदेश भर में जंग [55]

प्राकृतिक उत्पातों के अवसर पर सरकार जनता की सुरक्षा का ख्याल करती-सी लगती है। लेकिन कार्यवाहिका की व्यवस्था ऐसी बेढंगी है कि लोगों के मुहँ में कुछ जाने नहीं देती, बाढ़ के अवसर पर दरिद्रों के दयनीय जीवन का चित्र खीचंते हुए श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कहते हैं कि-

बाढ़ में सब घर-बार बहा,
आध-आध गज कपड़ा पाया,
और सेर भर आटा,
तीन-चार दिन किसी तरह
घर भरने मिलकर काटा;
दाने-दाने को मोहताज़
घूम रहे हैं बेघर आज
तीन रुपये इमदाद मिली है
ऊपर तीस बुलौआ [56]

ऊपर के उदाहरणों से स्पषट है कि **नये कवि सामाजिक असमानतापूर्ण व्यवस्था का चित्रण करते हैं**, तो **दिगम्बर कवि** ऐसे चित्रण के साथ-साथ उस **व्यवस्था के उत्तरदायी कारणों का भी चित्रण**

---

55) "दिगम्बरकवुलु," तृतीय संकलन, 'जंग' श्री (चेरबंडराजु) पृ.-181
56) "तीसरा सप्तक," चुपाई मारौ दुलहिन (श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) पृ.-368-369

करते हैं। सामाजिक यथार्थ के ज्ञान से पाठकों में अपने कर्तव्य-बोध की चेतना की आशा की जाती है, तो उत्तरदायी कारणों के चित्रण से कर्तव्य-निर्वहण में वे लग जाते हैं, ऐसी आशा इन लेखकों से की जाती है; परंतु देखा यह गया है कि तब से आज तक जनता के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं है, छोटे-मोटे आन्दोलनों के द्वारा क्या साधा जा सकता है। और सायुध क्रांति की वर्तमान शासन-व्यवस्था में कल्पना भी नहीं की जा सकती। इन कविताओं द्वारा साधारण शिक्षित एवं पाठक-समाज में एक प्रकार की तृप्ति होती है क्योंकि अन्याय-जन्य उनका मानसिक तनाव ढीला हो जाता है, उनके अन्तस को थोड़ी देर शांति की उपलब्ध हो जाती है। रही अनपढ़ दरिद्रों की बात, वे जो अनपढ़ रहे, उनकी पहुँच से ये कविताएँ बाहर की चीज़ हैं; फिर भी नये कवियों व दिगम्बर कवियों के मानवतामूलक कवि-कर्म की सराहना किये बगैर हमसे रहा नहीं जाता। यही विवेच्य वस्तु-सामग्री का साहित्यिक मूल्य है।

12. विश्वप्रेम : अनादियुग में मानव टोलियों में रहकर जीवन चला लेता था। टोली का सबसे दृढशाली एवं साहसी व्यक्ति उस टोली का नियन्त्रण किया करता था। टोली एक विस्तृत परिवार का ही रूप था जिसे क्लैन (Clan) कहते हैं। ये बातें मानव के प्रगैतिहासिक खोज से हमें अवगत हो गयी हैं और पुरातत्व शास्त्र ने इन तथ्यों के निरूपण में अपार शोध का श्रम किया है। आदिम मानव में विचारशीलता की अपेक्षा सहजात अथवा जन्मजात प्रकृतियों का प्राबल्य अधिक क्रियाशील था। आज्ञाकारिता की सहज प्रवृत्ति ने उसे प्रेम की सहज वृत्ति पर निर्मित टोली के बन्धन में आबद्ध करके शारीरिक रूप से शक्तिशाली व्यक्ति के नेतृत्व को स्वीकार करवा दिया था। टोली का मूलाधार यों तो आत्म-रक्षा की भी प्रवृत्ति है। नेता जो कोई भी हुक्म फरमाता था, उसका टोली के सदस्य आँखें मूँदकर पालन किया करते थे, ये टोलियाँ संख्या में अनेक थीं और टोलियों-टोलियों के बीच में लडाई-झगडे हुआ करते थे। यदि टोली का नायक हार जाता अथवा मर जाता, तो टोली के सभी लोग, स्वच्छन्द रूप से विजेता टोली के नेता के अधीन हो जाते थे।

समय की गतिशीलता के क्रम में टोलियों के स्थानों को परिवारों ने लिया था। आजकल हम पारिवारिकता की व्यवस्था में जीवन--यापन करते हैं। कहा जाता है कि अंग्रेजों के सम्पर्क ने,विशेषकर बीसवीं सदी के प्रारम्भ से लेकर, भारतीयों में व्यक्तिवाद को जन्म दिया था। वास्तव में **व्यक्तिवाद कोई वाद नहीं, यह प्रत्येक व्यक्ति के अंदर की अनुभूत 'स्व' की**

क्रियाशीलता है। आदिमकाल की टोलियों में परिवार व समाज, दोनों के भी बीज निहित थे, किंतु साथ-साथ उनमें व्यक्तिवाद भी निहित अवश्य था। अन्य सभी क्षेत्रों को छोड़ भी दिया जाय, तो कम से कम प्रणय के सम्बन्ध में इसे स्वीकार करने में किसी को अपत्ति नहीं होनी चाहिए।

सभ्य समाज के आविर्भाव-काल से लेकर मानव, सामाजिक अथवा समूहगत जीवन व्यतीत करते हुए भी, प्रणय के अवसर पर एकान्त चाहने लगा है। इसे क्या व्यक्तिवाद कहा नहीं जा सकेगा? प्रणय के क्रम में प्रेमी-प्रेमिका की सरस बातों एवं क्रीड़ा-विनोद के हेतु क्या आधुनिक सभ्य समाज में एकान्त अनिवार्य नहीं है? विचारशील आधुनिक मानव, जैसे प्रणय के संदर्भ में अपनेलिये एकांत का महत्व महसूस कर चुका था, वैसे ही परिवार के अन्य सदस्यों के भिन्न-भिन्न क्रिया-कलापों के संदर्भ में भी उसका अनुभव करने लगा था। छोटे-बड़े बालकों केलिये पढ़ाई-लिखाई केलिये एक कमरा नियोजित करना, वयस्क लड़के-लडकियों के मित्रों के आगमन पर उनसे कुशल-क्षेम के दो-एक प्रश्न करके दूर हट जाना...... ...... ये एकान्त की आयोजना के अन्तर्गत आनेवाले विषय हैं। बाल्यावस्था में माता-पिता ही बालकों के घनिष्ठ मित्र होते हैं जिनसे अपना दिल खोलकर वे हर बात प्रकट कर सकते हैं; इसके बाद भाई-बहनें, अड़ोस-पडोस के समवयस्क बालक और स्कूली सहपाठी और फिर मित्र-यह क्रम होता जाता है। इसका पूर्ण विकास प्रणय की दशा में होता है। उक्त क्रम की विकासावस्था में क्रमशः एक-एक की पूर्वान्त्य दशा हटती जाती है। सारांश भह है कि **व्यक्तिवाद** ब्रिटिश शासन के भारत में कायम होने से उपलब्ध पाश्चात्य माल नहीं बल्कि सार्वजनिक रूप से मानव-मात्र में निहित जन्मजात प्रकृति है। व्यक्तिवाद का मन्तव्य व्यक्तित्व का स्वतंत्रतापूर्ण तथा समग्र विकास है जो आकांक्षा सार्वजनीन रूप से द्रष्टव्य है। जन्म लेनेवाला शिशु व्यक्तिवाद का प्रतीक है। समय की गति में उसके मानसिक विकास के होते-होते उसमें पारिवारिकता, बन्धुत्व, मित्रता, सामाजिकता, प्रांतीयता, राष्ट्रीयता एवं विश्वात्मक भावों का विकासक्रम होता रहता है। यह भी हमें ध्यान रखना होगा कि विकासशील शिशु में इन भावों से अवांछनीय विलोम भाव भी युगपत् टक्कर लिया करते हैं अथवा किसी सीढ़ी पर स्तंभित हो भी जाते हैं, यथा राष्ट्रीयता के घेरे में रहकर अन्य देशीय जनता को नीचा दिखाना अथवा उससे द्वेष किंवा वैर-भाव रखना अथवा उसे अपने से बड़ा समझना। न्यूनता-भाव अथवा अधिकता -भावों की मूल-प्रवृत्ति ऐसे दृष्टिकोणों का कारण हो सकता है, परंतु ये अधिकतर सामाजिक व्यवस्था एवं व्यक्ति के पले आस-पास के समाज के प्रभाव-जन्य अधिक हुआ करते हैं। मूलतः मानव

व्यक्तिवादी है। किंतु उसकी व्यक्तिवादिता में ही उसकी सामजिक भावना समाई हुई होती है। अकेला मानव व्यक्तिवादिता का प्रतीक है तो दूसरे मानव के साथ, चाहे पुरुष हो, चाहे स्त्री, किसी भी प्रकार का अपना नाता जोड़ते ही उन दोनों का एक समाज बन जाता है। अतः प्रेमियों की जोड़ी एक लघु समाज कहा जा सकता है। इस दृष्टि से परिवार एक छोटे से समाज का प्रतीक बन जाता है। खून के रिश्ते को ध्यान में रखकर उस लघु समाज को 'परिवार' का नाम दिया गया है। **समाज वास्तव में मानव का आविष्कार है और परिवार व्यक्ति व समाज के बीच की कड़ी है। परिवार की स्थापना सहज प्रवृत्ति-जनित काम एवं प्रेम-भाव से हुई है, तो समाज की स्थापना प्रेम एवं श्रेय के ध्यान से हुई है।** एक का आधार जन्मजात प्रवृत्ति है, तो दूसरे का आधार विचारशीलता है। एक में आवेगों की भरमार है, तो दूसरे में हेतुवादिता की।

समाज का नाम सुनते ही साधारणतः हमारे मन में अपने व अपने परिवार के लोगों को छोड़कर आस पास के सब प्रकार के जाने-पहचाने, सुने-माने, समीपस्थ-दूरस्थ स्त्री-पुरुषों की झाँकी नज़र आ जाती है, वस्तुतः हम भी उसमें समाहित होते हैं, पर दर्शक अथवा वाचक होने के कारण हम एकदम यह बात भूल जाते हैं। लेकिन जब समाज के व्यक्ति-व्यक्ति के साथ अपने आत्मीय सम्बन्धों की चर्चा करते हैं तो एक प्रकार से समाज को परिवार का बृहत रूप मान लेते हैं। **समाजिक चेतना की जननी पारिवारिक प्रेम है।** सामाजिक चेतना का अर्थ सामाजिक दशा के ज्ञान से है, उसमें स्थित वैषम्यों की पहचान से है, उन वैषम्यों पर जन्म लेनेवाले आवेगों से है, उन आवेगों के फलस्वरूप प्रारम्भ किये जानेवाले प्रयासों से है। उन प्रयासों के परिणामतः निकलनेवाली सफलता पर संप्राप्त आनन्द से है, **अनुभूति-प्रवणता, विचारशीलता एवं प्रयास सामाजिक चेतना के सोपान हैं।**

आम तौर पर 'समाज' का अपने मन में एक घेरा होता है। यह घेरा आकाररहित होने से अस्पष्ट होता है। वयोक्रम में यह घेरा बढ़ता-बदलता जाता है। किंतु किसी व्यक्ति का समाज अपने परिवार तक ही सीमित रह सकता है, किसी का अपने मुहल्ले की सीमा तक और किसी का अपने देश की सरहदों तक और किसी अन्य का विश्वात्मक भी हो सकता है। आजकल हम वर्ग-समाज, जाति समाज, धर्म-समाज, भाषा-समाज और राष्ट्र-समाज़ के स्वरूप भी पाते हैं और वयो-लिंग के भेदों पर निर्मित बाल-समाज, युवा-समाज, महिला-समाज और वृद्ध समाज भी पाते हैं। आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज, वैष्णव-समाज, शैव-समाज

जैसे भेद भी हम जानते हैं। 'समाज' एक प्रकार से 'समूह' अथवा 'दल' का पर्यायवाची शब्द बन गया है। स्वातन्त्र्यपूर्व काल में बड़े-से बडा समाज देशीयता अथवा राष्ट्रीयता तक सीमित था और स्वातन्त्र्योत्तर काल में सभी भेद-भावों को चीर-फाड़कर सामाजिकता का भाव विश्वात्मकता की परिधि को छू गया है। **अगर सामाजिक प्रेम की जननी पारिवारिक प्रेम है, तो विश्व प्रेम की जननी सामाजिक प्रेम है। 'विश्व' समाज से भिन्न नहीं है, दोनों की विस्तृति मात्र में अन्तर है।** विश्व और समाज दोनों परिकल्पनाएँ होते हुए भी वास्तविकताएँ हैं।

सामाजिक प्रेम की अनुभुति के अवसर पर जाति-पाँति, वर्ण-वर्ग, प्रान्त-देशादि भेद-भाव की सम्भावना है क्योंकि जिस समाज के अन्तर्गत हम निवास करते हैं, उसके अन्तर्गत स्थित इन भेद-भावों की हमें अनुभूति होती है जिनसे हम न तो अनभिज्ञ हैं न ही ठुकराने पर भी शिकार न होने में अशक्त। समाज में हम इन्हीं भेद-भाव-जन्य विभिन्न संघर्ष देखा करते हैं। इसलिये सामाजिक प्रेम सामाजिक चेतना से आभिन्न रह नहीं सकता। वही चेतना सामाजिक प्रेम का कारण हुआ करती है। उक्त सघर्षों से आकुल हम उस समाज को देखकर, उनके उत्तरदायी कारणों अथवा भेद-भावों पर अपनी आकुलता प्रकट करते हैं और प्रयत्न में भी जुट जाते हैं। मानव-मात्र में निहित प्रेम-भावना ही वह प्रेरणा-स्रोत है जो हमें इस प्रकार प्रवृत्तिशील किया करती है। इसी से हम देखा करते हैं कि सामाजिक-प्रेम सामाजिक आलोचना से प्रारम्भ होता है। अवांछनीय सभी सामाजिक तत्वों का नग्न दर्शन, विभिन्न वैषम्यों की निन्दा और उन्हें बनाने-भड़काने-वाले विशिष्ट वर्ग के सदस्यों पर छींटे- ये सामाजिक चेतना के प्रमाण-स्वरूप साधारणतः हमें दर्शन दिया करते हैं। स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के कारण मार्क्सवादी विचार-धारा को आदर मिलने लगा। वह वर्ग-संघर्ष द्वारा सम-समाज की स्थापना का जो दावा करती थी। रूस उसका प्रमाण ठहरा। इस प्रायोगिकता की साकार प्रतिमूर्ति से चेतना पाकर चीन और कुछ पश्चिमी देशों ने भी उस विचार-धारा को बल दिया। तब से पढ़े-लिखे विवेकशील व्यक्तियों ने अपने मन से राजा-रानियों को हटा दिया और सम्पूर्ण जनता को एक-समान मानकर समसमाज की स्थापना में विश्वास किया।

हिन्दी के नये कवि और तेलुगु के दिगंबर कवि, दोनों ने खुलकर अपनी कविता में सामाजिक विषमता का दर्शन कराया है। नये कवियों में यह दर्शन सापेक्षिक रूप से कम कहा जा सकता है, कुछ नये कवियों में इस दिशा में नहीं का भी प्रयास रहा है। जहाँ कहीं भी नये कवियों

में यह चर्चा होती हो, तो वह पूरी मार्क्सवादी विचार-धारा को लेकर चली है जिसके अन्तर्गत वर्ग-भावना एवं वर्ग-संघर्ष-जन्य सम-समाजिकता की नींव झलकती है। कहीं कहीं किसी व्यक्ति-विशेष की चर्चा हुई भी हो, तो वह किसी न किसी वर्ग से अपना सम्बन्ध रखता है। 'निराला' का 'भिक्षुक' स्पष्ट ही कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि 'भिक्षुक-वर्ग' अथवा निकृष्ट दारिद्र्य में तपनेवाले निर्भाग्यों के वर्ग का प्रतीक है, दूसरे शब्दों में उपेक्षित अथवा परोक्ष में दलित-वर्ग का प्रतीक अवश्य है। 'वह तोड़ती पत्थर' में भी इसी प्रकार निर्धन स्त्री-जाति के प्रतीक द्वारा दैन्य-भरे जीवन वाली एक स्त्री का हृदय-विदारक चित्रांकन हुआ है। यहाँ ध्यान देने की और एक बात यह है कि इस प्रतीक-स्त्री-के तारतम्य में प्राकार के अंदर अट्टालिका में भोग-विलास करनेवाली महिलाओं को भी देख लेने का निमंत्रण है जिससे कवि का यह उद्देश्य है कि वर्गों में विभाजित समाज के अन्दर नारी-जीवन भी शोक एवं विषाद से खाली नहीं हैं। 'विधवा' इस नारी-वर्ग का प्रतीक है जो हिन्दू-धर्मगत साम्प्रंदायिक दुराचारों के कारण दारिद्रय व दीनतापूर्ण जीवन भुगत रही है। इस तरह तीनों ही कविताओं में निर्धन-वर्ग में सांस्कृतिक वैषम्य घुलामिलाकर दिखाना कुशल लेखक का अभिप्रेत है। पन्त जी ने थी वर्ग-विभेद-जन्य सामाजिक वैषम्य को उग्र वाणी दी थी, परन्तु वह कोरी बैद्धिक लगती है। सामाजिक असमता पर दुःख प्रकट करनेवाली कविताओं में यदि पन्त जी में सैद्धान्तिक प्रचार-मात्र दर्शन देता है, तो निराला जी में हृदयगत अनूभूति की दुःखद शोकाभिव्यक्ति दिखाई देती है।

हिन्दी के नये कवियों में डॉ. रामविलास शर्मा, जो मार्क्सवादी हैं, कविता के क्षेत्र में पादार्पण करते हैं, तो समाज के अन्तर्गत स्थित वर्ग-वैषम्य-जन्य शोषण का चित्रण एवं व्यवथा-परक व्यंग्य का दर्शन कराते हैं।

तेलुगु में श्री चेरबंडराजु अपनी 'वन्देमातरम' कविता में वर्ग-वैषम्य पर आधारित जन-जीवन के मूल में अवैज्ञानिक राजनैतिक शासन-व्यवस्था को उत्तरदायी पाते हैं। आप डॉ. शर्माजी की ही भाँति इस कविता में तीखे व्यंग्य के सहारे देश की जनता की कारुणिकता के इस कारण को पूरे वजन के साथ चित्रित करते हैं। यह कविता डॉ. शर्मा जी की "सत्यं, शिवं, सुन्दरम" वाली कविता की वस्तु, जीवन-दर्शन एवं शिल्प-विन्यास, तीनों ही बातों में कितनी समता रखती है यह देखने की बात है। दोनों ही कविताओं में सामाजिक विषमता-जन्य जन जीवन की दयनीयता है, दोनों ही में कचोटनेवाला व्यंग्य है और है दोनों में एक प्रकार का

आह्लाद जो पाठकों के मन में उद्वेगकारी मनोभावों का शमन करने में समर्थ है। दोनों ही कविताओं के शिल्पिगत सौंदर्य को देखते हुए ऐसा लगता है कि उनके दोनों लेखकों ने बिना मिले ही परस्पर परामर्श करके अपनी-अपनी कविता लिखी होगी। पहले पहल डॉ. रामविलास शर्मा जी की ये पंक्तियाँ देखी जायँ-

इस धरती पर बसनेवाले
उसके हित पर मट मिटनेवाले
कहाँ भागेंगे ताबड़तोड़;
हिन्दी हम चालीस करोड?

यह आज़ादी का मैदान,
जीतेंगे मज़दूर - किसान ।
एक यही है राह सुगम,
सत्यं, शिवं, सुन्दरम ।

आज बढ़ेंगे साथ कदम
निश्चय विजयी होंगे हम
गिरने दो जापानी बम।
बोलो वन्देमातरम। [57]

इस उद्धरण की प्रथम पंक्ति की 'धरती' शब्द ध्यान देने योग्य है। यद्यपि यहाँ पर भारत और जापान का प्रसंग हुआ है, लेखक का उद्दिष्ट भाव सम्पूर्ण धरती अथवा विश्व की सारी जनता है। हर देश में जैसे कि स्वदेश में, देश की सुरक्षा पर, देश की जनता के प्राण-पण को बाजी लगाकर उसकी लूट-खसोट की जा रही है। प्रत्येक देश अपने स्वदेश की भक्ति का नारा देता है जैसे कि भारत वन्देमातरम का नारा दिया करता था और देता जा भी रहा है। देश के जन-जीवन के मेरुदंड-मज़दूर-किसान--इस नारे के नीचे दबे रहते हैं। उनकी सुरक्षा की हामी भरी जाती रहती है और उनकी मृत्यु पर उनके त्याग के वीरगीत गाये जाते हैं, विदेशों की निन्दा की जाती है; कुछ समय बाद उन्हीं विदेशों से मित्रता का हाथ मिलाया जाता है; अपने प्राणों को खो चुके होते हैं, तो 'वीर' जवान कुरबानी करते हैं तो खून-पसीना एक करनेवाले ये किसान-मजदूर और सुयश प्राप्त करते हैं। उन इने-गिने चुने गये प्रतिनिधि लोगों का यह क्रम विश्वव्याप्त रूप से चलता बना है। जन-समूह में व्यक्तियों का एक-समान मूल्य मर चुका है।

---

57) "तारसप्तक," सत्यं,शिवं, सुन्दरम (डॉ.राम विलास शर्मा) पृ. -247-248

इधर श्री चेरबंडराजु-अपनी "वन्देमातरम" वाली कविता में कहते हैं-

हे मेरे प्रिय मातृदेश!
माता, पिता, ईश्वर तुम ही हो माँ !

अपनी देह के वस्त्रों से झंड़े बनाकर
विवस्त्र हो जुलूस निकालने का धीरज है तुम्हारा
कर्ज़ ले खड़े किये गये भवनों में
बेचैन हो भटकनेवाली दीनता है तुम्हारी
सूखे स्तनों पर रेंगनेवाली संतानों को
आश्वासन न दे सकनेवाला शोक है तुम्हारा
भूख से सूख, झुलसकर उधार के गहनों से सड़क पर सजा श्रृंगार
है तुम्हारा

हे माँ भारती! तुम्हारी मंजिल क्या है?

वन्देमातरम
वन्देमातरम।[58]

उपर्युक्त पंक्तियों तथा डॉ. शर्माजी के कवितांश की वस्तु, शिल्प एवं व्यंग्यात्मक शैलीगत समता तो स्वयंवेद्य है।

श्री चेरबंडराजु तो अपनी कलम को एकदम तलवार या बन्दूक बना लेते हैं। वे कहते हैं कि सायुध क्रांति द्वारा ही आर्थिक समानता जनता के जीवन में संभव है; तब तक वर्गों में विभाजित इस समाज में शोषण का क्रम अनिवार्यतः जारी रहेगा। "हे मेरे बकरे" शीर्षक की आपकी कविता में शोषित समाज की दयनीयता के कारक शोषक-वर्ग पर बगावत बोल देने का बुलावा है। अन्य मार्क्सवादी अथवा प्रगतिवादी कवियों के समान आपको प्रतीकों का सहारा लेकर दुराव-छिपाव का खेल पसंद नहीं है। इस विषय में आप और डॉ. रामविलास शर्मा जी के कवि-व्यक्तित्व में भी साम्य मिलता है और काव्य-प्रक्रिया में भी साम्य पाया जाता है। उक्त कविता की केंद्र-भाववाली पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

58) "दिगंबर कवुलु" 'तृतीय संकलन' (श्रीचेरबंडराजु) "वन्देमातरम" पृ. -143

बकरे को बलि देने के पूर्व
मटकी भर पानी पिलाकर ही उसे मारते हैं
वह जीव-कारुण्य है
दया-गुण है अथवा पवित्रता-यह जान लो
हे मेरे बकरे !
तुम एन. जी.ओ.हो
अथवा विद्यार्थी
मज़दूर हो या
श्रमिक हो
अथवा स्कूल मास्टर
बकरे! उस कसाई से
तुम दोस्ती करना चाहते हो
अथवा कुश्ती लड़ना,
इसका जल्दी फैसला कर लो। [59]

श्रमिक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति का बुर्जुआ वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा शोषण का अर्थ है उसके श्रम को लूटना या दूसरे शब्दों में उसके रक्त को चूस-चूसकर उसे शक्तिहीनता एवं वार्धक्य में मृत्यु-शय्या पर छोड देना। इस तथ्य को स्पष्ट करके श्रमिकों को अपने हकों से कायल बनाने व अधिकारों की प्राप्ति में अपने कर्तव्य के निर्वहण की ओर उन्मुख करने का श्री राजु ने स्तुत्य प्रयास किया। उनका खुला कथन है--

मैं आग हूँ
नक्सलवादी हूँ
मैं औजार हूँ [60]

कवि के संकल्प-जन्म जोश की अतिशयता का जनता पर प्रभाव पड़े बिना कैसे रह सकता जब वह सत्य-कथनों का वाचन-श्रवण करती हो और स्वयं उस सत्य की कटुता को अपने जीवन में चखती रहती हो?

हिन्दी के नये कवियों में सुश्री शंकुन्तला माथुर में अनुभूतिगत तीव्रता साकार हो मिल जाती है। "दोपहरी" शीर्षक कविता में आप तारतम्य द्वारा सेवक एवं सेव्य की तुलना करती हैं, दूसरे शब्दों में शोषक एवं शोषित की दशा का सापेक्ष-वर्णन करती हैं। सामाजिक व्यवस्था में वर्ग-

59) "पल्लवि" (श्रीचेरबंडराजु) "हे मेरे बकरे" पृ.-44
60) "पल्लवि" (श्रीचेरबंडराजु) "दुर्ग" (पृ.-32)

वैषम्यगत विभेदीकरण का केन्द्र स्वयं हमारा घर है जिसमें नौकर-चाकर हों। अपने पेट के वास्ते सुबह-शाम चाकरी करनेवाले (ली) व्यक्ति के जीवन की घर के अन्य व्यक्तियों की स्थिति से तुलना कर लें, तो हमें अवगत हो जायेगा कि देश-विदेश में होनेवाले जिस शोषण की हम चर्चा करते हैं, वही हमारे समाज में है और जिस वैषम्यपूर्ण समाज की हम निन्दा किया करते हैं, वह स्वयं हमारे ही घर में अथवा पास-पड़ोस में आँखों के आगे से गुजरता हुआ रहता है। 'दोपहरी' की इन चन्द पंक्तियों से यह बात भली भाँति हमें मालूम हो जाती है --

> कभी एक ग्रामीण धरे कंधे पर लाठी
> सुख दुःख की मोटी-सी गठरी
> लिये पीठ पर
> भारी जूते फटे हुए
> जिनमें से भी झाँक रही गाँवों की आत्मा
> जिन्दा रहने के कठिन जतन में
> पाँव बढाये आगे जाता।
> ---------------------------
> ---------------------------
> बड़े घरों के श्वान पालतू
> बन्ध रूप में पानी की हल्की ठंड़क में
> नैन मूँद कर लेट गये थे [61]

समाज के अन्नदाता -वह अन्नदाता जो दारिद्र्य की साकार प्रतिकृति है और सबको जिलाये रखने केलिये गरमी-सर्दी-वर्षा के चपेटे सहा करता है, परन्तु स्वयं भूखा-नंगा रहकर भारी जीवन के अस्तित्व केलिये संघर्षरत रहता है-उसका जीवन एक कुत्ते के जीवन से भी बदतर है, इस नग्न सत्य का उद्‌घाटन कैसे भद्दे सौंदर्य के साथ किया गया है, यह देखते ही बनता है। किसान के फटे जूतों में से गर्मी के कारण उसकी तड़पती हुई उँगलियाँ झाँकती रहती हैं, तो मानवता का उपहास करते हुए मानों अमीरों के पालतू कुत्तों की आँखें बाथ-रूम के ठंड़ेपन की मस्ती में मुँदती हैं। मानव और पशु के जीवन का यह विभेदन बड़ा ही प्रभावपूर्ण है।

'सारी वसुधा एक परिवार है' इसे नमाननेवाला सभ्य पुरुष शायद ही कोई हो। विश्व भर के विभिन्न राज्य-व्यवस्थावाले देशों के भिन्न

---

61) "दूसरा सप्तक" 'दोपहरी' (श्रीमती शकुन्तला माथुर पृ. 37-38

भिन्न अधिनायक 'वसुधैव-कुटुम्बकम" का नारा देते-चीखते-चिल्लाते हैं, किन्तु आचरण में उनका भिन्न व्यवहार है। **विश्व प्रगति करती जा रहा है। किंतु व्यक्ति पिछड़ता जा रहा है। विश्व केलिये यदि व्यक्ति व्यक्ति का त्याग अनिवार्य है, तो व्यक्ति का अस्तित्व निरर्थक या अर्थरहित है। विश्व-प्रेम का अर्थ है 'व्यक्ति प्रेम'। व्यक्ति शरीर है तो समाज अथवा विश्व (व्यापक समाज) उसके भिन्न भिन्न अवयवों का संकलन है। अतः उन्नति का प्रारम्भ व्यक्ति से होना चाहिये।** व्यक्ति के त्याग से समाज का बहुत कुछ खो जाता है। सभी का अस्तित्व, सभी का सुख-संतोष, सभी का कुशलता-पूर्वक जीना अनिवार्य है, इस गम्भीर सत्य का अवतारण सुश्री शकुंतला माथुर व्यक्ति की उपेक्षा की ओर इंगित करती हैं --

आज मुझे लगता संसार खुशी में डूबा क्यों?
जान बूझकर नहीं जानती

उद्दिष्ट कथन की वक्रता के पीछे कैसा पैना सत्य बैठा हुआ है, यह समझने में कुछ भी कठिनाई नहीं महसूस होती। विश्व के सुख-चैन के पीछे व्यक्ति का अस्तित्व-त्याग कहाँ की बुद्धिमानी है? इस सवाल का सीधा जवाब कोई भी नहीं दे सकता।

दिगंबर कवियों की लेखनी में मानव-प्रेम ही आधार-शिला है। मानव मात्र से प्रेम करने का अर्थ है विश्व प्रेम। उसके अवरोधों को हटाना हमारा कर्तव्य है। देश-भेद, धर्म-भेद, जाति-भेद, भाषा-भेद इत्यादि भावनाएँ हटा दी जायँ, तो 'मानव' तथा 'मानव-प्रेम' अथवा 'विश्व-प्रेम' की अवतारणा अपने आप हो जायेगी। इसलिये स्वार्थी एवं अधिकार-लोलुप संकुचित हृदयवाले राजनीतिज्ञ लोग उक्त भेद-भावों को लोगों में भड़काया करते हैं। नादान जनता उनके पंजे में आकर सीधी राह से भटक जाती है, अपने भाई-बहनों से जूझने लगती है, आपस की मार-काट होती है, हजारों-लखों मारे जाते हैं, समाचार पत्रों में नेतागिरी चलानेवालों के शोक-वचन छपते हैं जो स्पष्ट ही मकराश्रु हैं। श्री चेरबंड़राजु तीव्र उद्वेग के साथ पूछ बैठते हैं-

न्याय केलिये देश क्या हैं? सरहदें क्या हैं?
प्रामुख्य का है मानव, उसका रक्त और प्राण
लिंग-भेद और वादों को छोड़कर
मन्दिर, मसजिद और गिरिजा घर,
धर्म और धर्माधिपति लोग किस काम के?

भूख, काम-भाव, सपने, आँसू,
मानव का मार्मिक ज्ञान सभी कुछ एक समान है
देश कुछ भी हो-मिट्टी तो एक ही है
माता कोई भी रहे-स्तन्य की मिठास एक ही है
उदासी भरे चेहरों से क्यों निरखते हैं? [62]

उपर्युक्त पृष्ठ-भूमि में व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और विश्व की नयी व्याख्या नये कवियों व दिगंबर कवियों का उद्दिष्ट है। अतः उस नेपथ्य में उन्होंने आधुनिक कविता को नयेपन अथवा वैचित्र्य से सजाया-सँवारा है, यह हम अब तक के उदाहरणों के आधार पर निश्चित रूप से कह सकते हैं। आज का मानव किसी और खेमे में बन्द जीव नहीं, विश्वात्मक है। इसी पहचान ने इन कवियों के मन में निश्चय की अटलता भर दी जिसका परिणाम है उनकी कविता में ईमानदारी, नयापन, वैचित्र्य, शैली की विशेषता, और सब से बढ़कर मानव-मूल्यों की पहचान तथा उसकी अवतारणा का सफल प्रयास। इस स्तुत्य प्रयास में इन कवियों को जो सफलता प्राप्त हुई है, उसकेलिए वे अवश्य अभिनन्दनीय हैं।

13) अहंता : जीविका और आत्मसम्मान का विरोध होता ही तो है। इस आत्मसम्मान को आलोचकों ने 'अहंता' की उपाधि दे रखी है। दैनिक जीवन के क्षेत्र में अंहकार का जो स्थान होता है, जीवन की असफल आकांक्षाओं, दमित इच्छाओं और अतृप्त वासना के फलस्वरूप इन कवियों में विभिन्न प्रकार की कुंठा एवं घुटन जैसे अवांछनीय तत्व आ बसते हैं। नये कवि और दिगंबर कवियों की रचनाओं में यही होता रहा है। श्री अज्ञेय से लेकर श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तक और सब के सब दिगंबर कवि स्वयं इस सत्य से परिचित हैं। यों परिचित वे आत्म-दर्शन करके अपनी दमित मनोगत भावनाओं को ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अभिव्यक्त किया करते हैं।

श्री गिरिजाकुमार माथुर की अहंता का खुला एक उदाहरण देखें जो इन पंक्तियों में सीधे व्यक्त है-

कड़ कडाये रीढ़
बूढ़ी रूढियों की
झुर्रियाँ काँपें
धुली अनुभूतियों की

62) "दिगंबर कवुलु" प्रथम सं.स्करण, 'मुझे चढने दीजिये कठघरे में' श्री चेरबंडराजु, पृ. 18

उस नयी आवाज़ की उठती गरज हूँ।

परम अस्वीकार की
झुकने न वाली मैं कसम हूँ [63]

इन पंक्तियों में प्रयोगवाद की भी झलक रह सकती है, रूढिवाद-विरोधिता की भी गन्ध मिल सकती है और प्रयोगवाद एवं बिम्बवाद भी दर्शन दे सकते हैं, परंतु मूलतः ये शब्द अस्मिता के वाहक हैं जिनके जरिये कलाकार की दीक्षा, हठ, स्वातन्त्र्य-प्रेम एवं आत्माभिमान व्यक्त होते हैं।

दिगंबर कवियों में अहंता का और स्फुट रूप का दर्शन होता है। उनकी कविताएँ अधिकतर प्रथम पुरुष अथवा उत्तम पुरुष-प्रधान हैं।

श्री महास्वप्न कहते हैं कि मानवता जब

कालिख भरे बरतन-सी बदल जाती है
और मैल से भर जाती है
तब मैं दिगंबर कवि आता हूँ
ठिठके खडे कविता-स्तम्भ के फटने पर
उत्पन्न हो आता उग्र नरकेसरी हूँ मैं [64]

नास्तिक होकर भी पारम्परिक आस्तिकता पर आधारित नरसिंहावतार की उपमा देते हुए और अपनी कविता को अकस्मात् विस्फोटित स्तम्भ से उपमित करते हुए जग-जीवन की विषमता को भगानेवाले अपने विचार के अभिव्यंजन के कारण अपने को अवतार कहना कवि की अहंता की पराकाष्ठा है।

ठूँठ धार्मिक तत्ववाले साम्राटों के
तर्क को चूर चूर करने केलिये
आपको निमंत्रण देता हूँ [65]

जीवन में अवरोधी धर्म की निन्दा करते हुए धर्म के मठाधिपतियों के शुष्क तर्क को चूर्ण करना कवि का उद्धेश्य है। उन्हीं के निरर्थक सिद्धान्तों के कारण निरक्षर जनता अज्ञान के अन्धकार में कुलबुला रही है। अतः कवि उनसे भिड़ने को हमारा आह्वान करना चाहता है। इसमें

63) "तार सप्तक" 'नया कवि' (श्री गिरिजाकुमार माथुर) पृ. 199-200
64) "दिगंबर कवुलु" प्रथम संकलन, "ग्लानिर्भवति भारत," श्री महास्वप्त पृ.23
65) "दिगंबर कवुलु" तृतीय संकलन, "निमंत्रण देता हूँ," श्री निखिलेश्वर पृ.144

कवि स्वयं उन मठाधिपतियों एवं देश की जनता में से हर एक व्यक्ति को उपदेश देनेवाली अपनी है सियत को ऊँचा उठाकर दिखाता-सा है जो उसकी अहंता का ही परिचायक है।

14)कुंठा एवं घुटन : इसके पहले नये कवियों में कुंठा एवं घुटन की जो चर्चा की गयी है, वह दिगंबर कवियों के विषय में भी लागू हो जाती है। यों तो इन दोनों पर पाश्चात्य प्रभाव का आरोप है कि विदेशों की देखादेखी करके वहाँ प्रचलित क्रुद्ध पीढ़ी की कविता, भूखी पीढ़ी की कविता इत्यादि का ये अनुकरण कर रहे हैं, परन्तु यह आरोप सही मालूम नहीं होता क्योंकि हमारे अपने देश से बढ़कर संसार भर में भूखा कौन होगा; अतः हम से बढ़कर क्रोधी भी कौन हो सकेगा? वास्तव में नयी कविता और दिगंबर कविता के आवेश का आधार यही भूमि है; उनमें दर्शन देनेवाली कवितागत कुंठाएँ, घुटन एवं दमित वासनाएँ उनकी अपनी हैं जिनकी अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में होती है। वे रुचिर कवि-कर्म द्वारा अपनी व्यष्टि-अनुभूतियों को कविता द्वारा सार्वजनीन बना देते हैं। कहीं कहीं लेखकों में सुप्त ये तत्व उनके अपने भी लगते हुए उनकी रचनाओं की ऊपरी सतह पर उतरते हैं। दो एक उदाहरणों द्वारा यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

सुश्री कीर्ति चौधरी की ये पंक्तियाँ स्पष्ट प्रमाण हैं कि वे स्वयं एक प्रसिद्ध लेखिका के रूप में नाम कमाने की असफलता पर दुःखमग्न हैं। इन पंक्तियों में उनकी आत्मा-रति [प्रायः स्वयं के जीवन में प्रेम की विफलता अथवा अनुपलब्धि-जन्य भी कारण हो सकता है] शून्यतापूर्ण जड़ता इत्यादि के उल्लेख के अनन्तर आपके अपने विचार में अच्छी कवयित्री होने का उनका अपना पूर्ण विश्वास अभिव्यक्त होता हैं-

> धीरे से उठकर
> अपनी ही अंजलि में अपना मुख धर
> मैंने बहुत देर अपने से प्यार किया;
> कमरे में जैसे हों अतिथि कहीं
> वैसी ही मुद्रा में
> सूनेपन को सत्कार दिया
> चंचल चरणों से चल
> खिड़की-दरवाजों के पार झाँक
> जाने क्या देखा ....क्या जाना ....
> कागज़ पर निरुद्देश्य
> रेखाएँ खींच, बहुत हर्षित हो

जाने किस मूरत को पहचाना

निश्चय ही मैं
कुछ अच्छा लिखनेवाली हूँ [66]

सम्भव है कवयित्री अपनी दमित इच्छा-जन्य अपनी कुंठा अथवा घुटन को इन पंक्तियों द्वारा सार्वजनिक रूप देना चाहती हो।

दिगंबर कवियों में सर्वत्र कुंठा एवं घुटन के भाव भरे मिलते हैं। यद्यपि उनका दावा है कि वे समाज के नग्न स्वरूप को हमारे आगे रखना चाहते हैं, तथापि मनोविज्ञान के आधार पर सूक्ष्म विश्लेषण करके हम कह सकते हैं कि उनकी दमित वासनाओं का अभिव्यंजन उनकी कविताओं द्वारा झलकता रहता है। और दारिद्र्य के कारण प्रेम की भूख भी जीवन में जुड़ जाती है। यही सुप्त वासना है जिसे कामवासना कहा करते हैं। इस अवस्था में ऐसा व्यक्ति दूसरे कामोपभोगी व्यक्तियों से जलने लगता है। इसी तरह जो अधोगति में रहता है, वह उच्च पद पर विलसित व्यक्ति से जलता रहता है। श्री ज्वालमुखी की दमित वासना अथवा कुंठा इन पंक्तियों में से झलकती है-

राज्य सत्ता की सुकुमारी से
राक्षस-रति करनेवाले
विनायकों के
नग्नविराट-स्वरूप सौंदर्य का दर्शन
मतपत्रों के दिन खुले दिन में
बहिर्गत करने को जी चाहता है [67]

श्री नग्नमुनि अपनी कुंठा को और तरीके से व्यक्त करते हैं। वे स्वयं जिस स्थिति में हैं, सबको उसी हालत में रहते समझते हैं और सब को अशक्त, निर्लज्ज, सदा केलिये पराधीन गुलाम कहकर, एककंठ हो राजी हो जाकर, उच्च पदासीन राजनीतिज्ञों की पूजा में अंकित हो जाने का स्वागत करते हैं। इसकेलिये आप कारण देते हैं कि हम कभी विद्रोह नहीं कर सकेंगे, कभी बगावत करने के काबिल नहीं रहेंगे, हमारे रक्त में जातियों व धर्मों का मूत्र बह रहा है। हम कायर कुत्ते और कायर सुअर हैं, अतः जिन्होंने शाश्वत रूप से हमें खरीदकर हम पर

66) "तीसरा सप्तक," 'कई दिनों के बाद' [सुश्री कीर्ति चौधरी] पृ. 123-124

67) "दिगंबर कवुलु," प्रथम संकलन, सूर्यस्नान' [श्री ज्वलामुखी] पृ. 254

शासन कर लिया है उन तरह-तरह के कोढ़ के देवताओं की सेवा में हमें लग जाना चाहिए-

चूँकि हम कभी विद्रोह नहीं कर सकेंगे
चूँकि हमें कभी बगावत करना नहीं आता
चूँकि हमारे रक्त में जात्रियों व धर्मों का
मूत्र बह रहा है
चूँकि हम कायर कुत्ते और कायर सुअर हैं
इसलिये उन तरह-तरह के कोढ़ के देवताओं की
सेवा में हम लाग जावें
जो हमें हमेशा केलिये खरीद कर हम पर
शासन चला रहे हैं [68]

श्री कुवंर नारायण की निम्नांकित पंक्तियों में उनका हालावादी दृष्टि-कोण सुव्यक्त हो जाता है जिसका मूलस्रोत उनकी अपनी दमित वासनाएँ हैं। वे स्वयं अपनी इन पंक्तियों में कुंठा शब्द का प्रयोग करते हैं। कुंठा एवं घुटन अथवा अपूर्ण इच्छाएँ ध्वंसात्मक दृष्टि की ओर व्यक्ति को ले जाया करती हैं। सच्चा कलाकार सृजनात्मक दृष्टि अपनाता है। इस प्रतिपादन पर उन कवियों का तर्क हो सकता है कि हम सभी का नहीं, उन पूंजीपतियों की सम्पत्ति का नाश चाहते हैं, तब भी देश की सम्पत्ति को घाटा पहुँचता है जिससे यह विचार भी हानिकारक है। पाठक लोग स्वयं निर्णय कर लें कि इन पंक्तियों में अभिनन्दनीय मूल्यवान प्रतिपादन है अथवा नहीं-

इन मुर्दा महलों की मीनारें हिल जायँ
इन रोगी ख्यालों की सीमाएँ धुल जायें
अन्दर से बाहर आ सदियों की कुंठाएँ
बहुत बड़े जीवन की हलचल से मिल जायें। [69]

15. दार्शनिकता: उपर्युक्त विभिन्न अंशों की चर्चा के आधार पर अब दोनों भाषाओं के कवियों के जीवन-दर्शन की मूल्यांकन सरलता से किया जा सकता है। **नये कवि और दिगंबर कवि भौतिकवादी हैं,मार्क्सवादी हैं, मानावतावादी हैं।** हिन्दी के नये कवियों की वाणी में तीव्रता के बदले में व्यंग्य एवं वक्रोक्तिपूर्ण वचन भरे हुए हैं जब कि तेलुगु के दिगंबर कवियों में तीक्ष्ण पदजाल ही नहीं,बल्कि भद्दे, अश्लील

68) "दिगंबर कवुलु," तृतीय संकलन, 'कोढ़ के देवता' [श्री नग्नमुनि] पृ. 254
69) "तीसरा सप्तक," 'खामोशी,' 'हलचल' [श्री कुँवर नारायण] पृ. 258

वचनों से लेकर गाली-गलौज़ तक मिलता है। दोनों भाषाओं के कवियों का लक्ष्य तो एक ही है-समसामाजिक व्यवस्था का स्थापन और उसमें व्यक्ति-व्यक्ति का हर क्षेत्र में पूर्ण स्वातन्त्र्थ। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों भाषाओं के इन कवियों का जीवन-दर्शन एक ही है।

16.स्वतन्त्र दृष्टिकोण: नये कवि और दिगंबर कवियों की खास विशेषता स्वतंत्रता की अनुभूति है। यह व्यक्तिवाद के प्रसंग पर कहा जा चुका है, अत: वर्ण्य वस्तु जो कुछ भी रहे, उनकी कविताओं में उनका स्वतंत्र दृष्टिकोण प्रत्यक्ष होता रहता है। कविता के जितने अंश होते हैं, उन सभी में यह स्वतंत्र दृष्टिकोण दर्शन देता रहता है, यथा बिम्ब, प्रतीक, अलंकार इत्यादि। यथोचित, उदाहरणों द्वारा हम उनकी कविताओं में इन अंशों का परीक्षण करने का प्रयास करेंगे।

17.बिम्ब-विधान: विश्वशान्ति का वर्णन करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा एक बिम्बचित्र खींचते हैं। वे कहते हैं कि मज्जा और मांस से मिश्रित श्मशान में जलती चिता की ज्वालाओं में संसार की शान्ति शाश्वत रूप से लिखी गयी है। इसका आशय यह है कि विश्व में शान्ति सदा केलिये भस्मीभूत है। यह बात कहने केलिये जलते मानव का चितावाला बिम्ब-चित्र अंकित किया गया है जिसके द्वारा कवि की प्रभावपूर्ण रसवत्ता भरी काव्य-योजना का कौशल सुव्यक्त होता है-

मज्जा और मांस से सने हुए मसान में
प्रज्वलित चिताओं की लपटों में,
अविनश्वर लिखी है शान्ति संसार की [70]

श्री ज्वालामुखी अपनी "सूर्यस्नान" शीर्षकवाली कविता में एक दृश्य-बिम्ब का अंकन करते हैं जिसमें उनका घोर दु:खदमित जनता के जीवन के दारिद्र्य पर व्यक्त है, संयुक्त राष्ट्र-संघ के चालू चिन्ह द्वारा यह व्यंजित है कि विश्व भर के लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करना उसका ध्येय है जब कि हम देख रहे हैं कि विश्व में भूख की मृत्यु विराजमान है। संवेदनाशील कवि को ठेस है कि जनता दारिद्र्य में पिसकर मरती जा रही है और संयुक्त राष्ट्र-संघ को इसकी चिंता नहीं। इसीसे आप दहकते दिल से अपनी आकांक्षा व्यक्त करते हैं कि आप नीचे पड़ी नंगी ठठरी को संयुक्त राष्ट्र-संघ का चिह्न बनाना चाहते हैं

70) "तारसप्तक," "विश्वशांति" [डॉ. रामविलास शर्मा] पृ. 257

नीचे पड़ी नग्न ठठरी को
संयुक्त राष्ट्र-संघ का
चिह्न बनाने की चाह है [71]

इन चन्द पंक्तियों में बिंबांकन के सन्दर्भ में लेखक के स्वतंत्र अथवा नवीन दृष्टिकोण का हमें पता चला जाता है।

निर्जीव समाज में राजनीतिज्ञों के कारण वैज्ञानिक आविष्कारों से जनित विषपवन झल रहे हैं, मंचों पर नेता लोगों की बातें धुआँधार हैं,ज्ञान के वितरण में हाथ बँटानेवाली पुस्तकों के पन्ने बंजरों के बराबर हैं, इस प्रकार मानव-सभ्यता के नशेदार इंजेक्शन की मस्ती में जीवच्छवि बनी हुई है। सामाजिक यथातथ्य बिंब-चित्रांकन इन पंक्तियों में कितना नवीन है, कैसा प्रभावशाली एवं आकर्षक है और साथ-साथ कितना हृदय-बेधक है! श्री महास्वप्न इन पंक्तियों में उक्त बिंब-विधान का आयोजन करते हैं-

विज्ञान द्वारा फेंके जानेवाले विष-पवनों में
मंचों पर फिंकनेवाले अन्धकार की धुआँओं में
पुस्तकों के पृष्ठों की बंजर भूमि में
नागरिकता के जब नशेदार इंजक्शन से
समाज जब जीता शव बना रहता है--- [72]

इसके विपरीत नये कवि श्री नरेश मेहता संसार की सुख-शान्ति की कामना में गति के सोपानों का चित्र खींचते हैं जिसमें आशावाद अधिक है, आग नहीं, वे शनैः शनैः होने पर भी, विश्व की प्रगति के विश्वासी हैं। इसी से परम्परावादी लगते हुए भी नवीन मालूम होनेवाली शैली में उनका चित्रांकन इस प्रकार है-

नदियों ने चलकर ही
सागर का रूप लिया
मेघों ने चलकर ही
धरती को गर्भ दिया

रुकने का नाम मरण है, पीछे सब प्रसार है।
आगे है रंगमहल, युग के ही संग चलते चलो।

---

71) "दिगंबर कवुलु," "सूर्यस्नान" [श्रीज्वालामुखी] पृ. 11
72) "दिगंबर कवुलु," 'प्रथम संकलन' 'ग्लानिर्भवति भारत' श्री महास्वप्न पृ. 22

मानव जिस ओर गया
नगर बने, तीर्थ बने,
तुमसे है कौन बड़ा?
गगन-सिंधु मित्र बने,

भूमी का भोगो सुख, नदियों का सोम पियो
त्याग सब जीर्ण-वसन, नूतन के संग-संग चलते चलो। [73]

सारी कविता आकांक्षा के सम्बन्ध में सही है, परंतु कवि अन्तिम दोनों पंक्तियों में आकांक्षित कार्यों की पूर्ति की जनता द्वारा कैसे आशा करता है, यह विचारणीय विषय है। एक प्रकार से तेलुगु के श्री ज्वालामुखी को अतिवादी और हिन्दी के श्री नरेशकुमार मेहता को मितवादी समझना चाहिये।

तेलुगु में श्री नग्नमुनि बिंबों की नव्यता केलिए प्रसिद्ध हैं। यों तो उनकी सब की सब रचनाएँ बिम्ब-चित्रों से सजी-सी होती हैं। विभिन्न चित्रों का बिबांकन नीचे की पंक्तियों में देखने योग्य है-

एक पहली तारीख को, बच्चों की जेब में रखे हाथों में
चूड़ियों के अलारम् के-से चक्रवृद्धि ब्याजवाली
बाहों में आराम न जाननेवाली फूटी चार बोतलें
धोती में चमेलियों की दो पंखुडियाँ
लालटेन के नीचे अपमान के-से झुके सिर के
गले के नीचे सेक्स अपील सीनरियाँ [74]

पहली तारीख को वेतन-भोगी कर्मचारी शराब पीकर, खुशी करके घर लौट पडते हैं और बच्चे जब उनकी जेब में हाथ रख कर देखते हैं कि पिताजी उनकेलिये क्या लाये, तो उनके हाथों में चूड़ियों के दुकडे और फूटी हुई बोतलें मिलती हैं, उनकी धर्मपत्नी को उनकी धोती से लगी फूलों की पंखुड़ियाँ मिल जाती हैं, वे स्वयंकृत अपमानवश सिर झुकाकर ही पत्नी के गले की तरफ़ देखते हैं, तो मानों उन्हें उनकी काम-भावना को उद्रिक्त करनेवाले दृश्य दिखाई पड़ते हैं।

18.प्रतीक: सीधी बात को परोक्षत: व्यक्त करने की पद्धति को 'प्रतीकात्मकता' कहा जाता है। इस से कथ्य का सौन्दर्य बढ़ जाता है। प्राचीनकाल में इसे 'अन्योक्ति-पद्धति' कहा जाता था। जब शासकों

73) "दूसरा सप्तक," 'जन गरबा जरैबेति' [श्री नरेशकुमार मेहता] पृ. 130
74) "दिगंबर कवुलु" द्वितीय संकलन 'मोहम्मीद चंद्रुडु' [मुखडे पर चाँद] श्री नग्नमुनि पृ. 95

के विरुद्ध लोगों में चेतना भर देने का प्रयत्न करना होता, तब साधन यही होता था। संस्कृत के "मित्रलाभ" एवं "पंचतन्त्र," "एसोप की कहानियाँ" (ग्रीक) अंग्रेजी में जार्ज आरवेल का "एनीमल फार्म" [पशुओं की शाला] ऐसे कुछ उदाहरण हैं। वाक्स्वातंन्त्र्यपूर्ण वर्तमान लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में भी साहित्य की रचना के अवसर पर इसकी आवश्यकता पड़ती है; अन्यथा वे रचनाएँ उन उन सरकारों से निषिद्ध हो जाती हैं। हाल ही में निषिद्ध [सालमन रशदी का] "सेटानिक वर्सेस" ऐसा ही एक उदाहरण है। रही हमारी विवेच्य सामग्री, यहाँ नयी कविता में सौन्दर्य-वर्धन एवं दिगम्बर कविता में भी पाठकों के मन में यह विचारोत्तेजन का एक माध्यम है। रूढ़ि-विरोध के क्रम में आश्वासन देते हुए भारत-भूषण प्रतीक-शैली में कहते हैं-

..... अब देर नहीं
हम लाते हैं वह वह्नि तेज
जिसके स्फुलिंग की ज्योति-बिन्दु से
मिट जायेगा हेमन्त शीत
मिट जायेगी इस कड़वी जड़ता की जड़ाँध [75]

क्रान्ति द्वारा बिना देर के जन-जीवन से दारिद्र्य के सिकुडन के कारण वर्तमान हेमन्त की ठंड को दूर करने की लेखक इन पंक्तियों में हामी भरता है। प्रत्यक्ष में यह बात न कहकर जनता की जड़ता एवं अज्ञान का निवारण करने का अपना आश्वासन प्रकृति के प्रतीक द्वारा वह व्यक्त करता है।

श्री ज्वालामुखी की रूपक-युक्त प्रतीक-शैली में कथ्य का सौंदर्य देखने योग्य है। उनका कहना है कि रस-रूपी मकडी के जालों का छेदन करने में असमर्थ होकर, अलंकारों के अंधकारमय मार्ग को बेधने में अशक्त वर्तमान तेलुगु जनता प्रकाश की वारधि को न देख सकनेवाले अंधेरे में बन्द गुलाम हैं-

रसों के मकड़ी के जालों को न छेदकर
अलंकारों के अन्धकारपूर्ण मार्ग को न चीरकर
समकालीन आंध्र के लोग
प्रकाश-रूपी वारधि न देख सकनेवाले
अँधियारे में बन्द गुलाम हैं [76]

75) "तार सप्तक" 'जीवन-धारा' [श्री भारत भूषण अग्रवाल] पृ. 91
76) "दिगंबर कवुलु" 'द्वितीय संकलन, 'किलकिंचित्' [श्री ज्वालामुखी] पृ. 79

19.अलंकार: 'अलंकारों' पर अगले अध्याय में विशेष रूप से विस्तृत चर्चा की जायेगी। प्रस्तुत प्रसंग इन कवियों के स्वतंत्र दृष्टिकोण पर प्रकाश डालने से सम्बद्ध है। अतः ऐसे ही अवसरों का यहाँ पर उल्लेख किया जाता है जिनसे अलंकारों की योजना के सन्दर्भ में भी उनके स्वतंत्रतापूर्ण दृष्टिकोण का पता लग जावे। इन अलंकारों के अवसर पर भी रूपक एवं उपमा की विशेष चर्चा अंकित की जायेगी क्योंकि दोनों भाषाओं के कवियों ने उन्हीं से अधिकतम काम लिया है।

> सेमल की गरमीली हलकी रूई समान
> 'जाडों की धूप' खिली नीले आसमान में [77]

सर्दी के मौसम के समय नीले आकाश में धूप की गरम हलकी सेमल की रूई से उपमा दी गयी है। यहाँ अमूर्तता पर भी ध्यान देना है क्योंकि इसी से इसकी उपमा की गरिमा बढ़ गयी है।-

> चन्दा खोजता हो
> उमड़ता निस्सीम निस्तल
> कूलहीना श्यामला जल-राशि में प्रतिबिंब अपना, हास अपना [78]

चाँद मानों अपने मुखड़े के हासपूर्ण सौंदर्य का जल-राशि में सौन्दर्यान्वेषण कर रहा हो। मानवीकरण और उपमान को उपमेय एवं उपमेय को उपमान बनाने की नवीनता द्वारा स्वतंत्र दृष्टि यहाँ पर परिलक्षित है।

> यह तिमिर-सी शाल
> ओढ़ लो वसुधे! न सिकुड़े शीत से यह लाल
> जग का बाल [79]

अन्धकार को शाल से उपमित किया गया है और वसुधा अथवा जगत-रूपी बालक को, छोटे बालक के साथ, सर्दी से न सिकुड़ने के हेतु तिमिर-रूपी यह शाल वसुधा-रूपी बालिका ओढ़ लेगी। इसमें दोनों उपमित वस्तुओं द्वारा एक साथ मानवीकरण की पूर्णतायुक्त चित्र अंकित है जो बड़ा ही रमणीक है।

तेलुगु में भी, आगे की पंक्तियों में स्वतंत्रतापूर्ण दृष्टिवाले आलंकारिकता-युक्त कुछ प्रसंगों का अवलोकन करेंगे। दिगंबर कवि प्राचीनता के विरोधी हैं, परम्परा के कट्टर दुशमन हैं, नयेपन के बहुत प्रिय हैं, अतः इनके अलंकारों में नव्यता की अतिशयता है। ये भी रूपक और उपमा के अधिकतम प्रयोग

77) "तारसप्तक" 'कुतुब के खंडहर' श्री गिरिजा कुमार माथुर पृ. 175
78) "तारसप्तक" 'आत्मा के मित्र मेरे' [श्री गजानन मुक्तिबोध] पृ. 10
79) "तारसप्तक" 'जागते रहो' [श्री भारत भूषण अग्रवाल] पृ. 105

करते हैं। इनके अलंकारों में अधिकतम सामाजिक मान्यता से शून्य उपमाएँ, अर्थात् जुगुप्सा से भरी अथवा भद्देपन से पूर्ण अधिक रहती हैं।

अग्र राज्यों के श्येनों के पंख काटकर

इस सदी के कांगो-दारुण व्रण को [80]

अमेरिका, फ्राँस जैसे अग्र राज्मों को श्येन अथवा बाज से रूपित कर उनके कारण तीव्रता के स्तर पर त्रस्त कांगो को 'भयंकर फोड़ा' कहते हैं। दोनों में से पहला रूपक रोषोद्दीपक है और दूसरा कारुण्य के स्थान पर जुगुत्सा का उद्दीपक है।

शुल्क को चरागोला कहा गया है जिसे वकील लोग अथवा न्यायालय वसूल करते हैं और फिर न्याय को चूहे के-से डुबा देते हैं। पहला रूपक है और दूसरी उपमा-

फ़ीज रूपी चारेगोले में
न्याय को चूहे के समान आप डुबो देते हैं [81]

आप फिर कहते हैं कि राजनीतिज्ञों अथवा सरकार चलानेवाले लोगों के वादे सड़े बीज हैं (जिनसे पौधे व फलों की प्राप्ति नहीं होती) उनकी सन्तानें कृत्रिम सभ्यता के शो में मोडल के काम आनेवाले हैं (क्योंकि वे यहाँ पर नहीं, भारत से बाहर की सभ्यता के देशों में पहले पढ़ते हैं, फलतः उनके हृदय के किवाड़ बन्द पहाडी दरवाज़े हैं (जो आम जनता से अपने को दूर रखते हैं) और हमारे हृदय भी (उसमें प्रेम की शून्यता के कारण) वैसे ही पहाडी किवाड़-बंद दरवाजे हैं

आपके वादे सड़े बीज हैं
आपकी सन्तानें कृत्रिम सभ्यता के शो में
मोडल के काम आनेवाले हैं

आपके दिल और मेरा दिल
किवाड़-बन्द पहाडी दरवाजे है [82]

---

80) *"दिगंबर कवुलु" 'प्रथम संकलन' श्री निखिलेश्वर पृ. 9*
81) *"दिगंबर कवुलु" "प्रथम संकलन"मुझे चढने दीजिये कठघरे में, श्री चेरबंडराजु पृ. 17*
82) *"दिगंबर कवुलु" 'प्रथम संकलन' श्री चेरबंडराजु, नन्नेकनिव्वांडि बोनु पृ.17*

उन्हें संसार एक नग्न शिला-फलक-सा दिखाई देता है। शिला भी काम नहीं आती और नग्न होने से वहाँ कुछ भी नहीं मिलता --

संसार एक नग्न-शिला
फलक-सरीखा लगता [83]

इन पंक्तिमों में गद्यात्मक सौंदर्य भी देखने योग्य है।

नग्नमुनि के 'सुखरोगि' (गुप्तरोगी) में उपमाओं युक्त पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

भले मानुस के-से धारीदार पाजामे रूपी चाह के नीचे

अपमान को फूलों के हार-से धारण करते हुए

अवसर-रूपी बाघ का नया रंग लगा लेते हुए
मेंढक-से टर्राते हुए
बकरी से मिमियाते हुए
तुम्हारा असहाय झींगुरवाले कंठस्वर सुनने से
-------------------------- [84]

'गुप्तरोगी' शब्द 'राजनीतिज्ञ' का संकेतक है जिससे लेखक को बहुत खीज है। वह भलेमानुस का-सा दिखता है, उसकी चाह बड़ी बुरी है, अर्थात् वासनापूर्ण है, अपमान भी उसकेलिये पुष्पमाला है जिसका वह धारण कर लेता है, वह अवसरवादी है, अर्थात् अवसर मिलने पर उसमें व्याघ्र के गुण क्रियाशील होकर कितनों ही को आहत अथवा मृत बनाकर आप सुख लूटने को तैयार रहता है, वेदी पर चढ़ हमेशा देनेवाले उसके भाषण मेंढकों की टर्र-टर्र हैं अर्थात् वे निरर्थक प्रलाप हैं, वह अपनी साधुता को व्यक्त करता रहता है जिससे मेमने के मिमियाने का भाव होता है- इस प्रकार दो तीन रूपकों व तीन-चार उपमाओं का आधार लेकर राजनीतिज्ञों पर तीक्ष्ण प्रहार किया गया है। कवि का एक बीभत्सपूर्ण रूपक उन्हीं के विषय में इस प्रकारहै-

तुम्हारे चारों ओर विषैले कीडों व निर्जनारण्यों के
संचरण होने पर भी
तुम्हारे बदन भर में प्रतिष्ठा-रूपी पीप के रसते हुए भी

83) *"दिगंबर कवुलु" 'प्रथम संकलन' नन्नेंक्क निव्वंडि बोनु (मुझे चढने दीजिये कठघरे में) श्रीचेरबंड राजु पृ.-20*
84) *"दिगंबर कवुलु" 'प्रथम संकलन' सुकरोगि (गप्तरोगी) (श्रीनग्नमुनि) पृ.24*

तुम से मैं प्रेम करता हूँ
तुम्हें अपनी भलाई से डराता हूँ [85]

बातें कितनी परस्पर-विरोधी हैं, कहने की आवश्यकता नहीं। राजनीतिज्ञों के चारों तरफ़ उनकी अमानवीय करतूतों को अमल करनेवाले विषैले स्वभाव के लोग मँडराते हैं जो विषैले कीड़े हैं, जनता को वे पास में आने नहीं देते। अतः जनता का जीवन में अपने प्रतिनिधियों के आगे अपना दुखड़ा रोने की इय्छा अरण्य-रोदन-सी हो जाती है, अतः उसके पास निर्जन अरण्य होते हैं। वह अपनी वासनापूर्ण इच्छाओं की तृप्ति में समाज का साक्षात् रोग है जिससे उसकी प्रतिष्ठा जन-साधारण को असह्यपूर्ण फोड़े का पीप-सा लगता है, फिर भी लेखक अपनी मानवतावादी प्रेम को न छोड़कर उस से रिश्ता मिलाता है, परंतु अपनी भलाई से उसे डराता है, रूपक, उपमा, विरोध, अन्योक्ति इत्यादि विभिन्न अलंकारों का एकसाथ यहाँ पर मिश्रण है।

देश भर में कितने गिरिजाघर हैं। प्रेममूलक उस धर्म के लोग देश की जनता के प्रति होनेवाले दुराचारों को क्यों नहीं रोक रहे हैं? क्योंकि वे भी कूटनीतिपूर्ण नेता लोगों के साझीदार हैं। राजनीतिज्ञ और धार्मिक व्यक्ति दोनों मिलकर लोगों को लूट रहे हैं। राजनीतिज्ञों के व्यापार का आधार नेतृत्व का उनका अधिकार है, तो ये देवालय धार्मिकों के व्यापार केंद्र हैं। इसलिये ये कवि परुष पद-जाल में और साथ-साथ आलंकारिक (रूपकाभासी) शैली में उन्हें तीखी गालियाँ देते हैं। श्री ज्वालमुखी की ये पंक्तियाँ अवश्य दर्शनीय हैं -

लीड़र लोग रंडापुत्र हैं
बदमाश और गूंडा पुत्र हैं
मंदिर-म्लेच्छ
मसजिद्-काफ़िर
गरुव्दारा-गुंडे
चर्च-सिन्नर [86]

अपने कथ्य का अन्वय करते हुए यह कवि अबोध जनता के अज्ञानवश शोषित होते रहने पर अपना दुःख-मिश्रित रोष उतार देता है।

अब तक के चर्चित विभिन्न प्रसंगों से यह स्पष्ट है कि कथ्य की नवीनता की बलवती भाषा के माध्यम से नवीन अलंकारों का समाश्रय लेकर दिगंबर कवियों ने आधुनिक तेलुगु-काव्य-साहित्य में एक नये मोड़

85) *"दिगंबर कवुलु" 'प्रथम संकलन' सुखरोगि (गुप्तरोगी) श्री नग्नमुनि, पृ.25*
86) *"दिगंबर कवुलु" 'तृतीय संकलन' हार की बगावत (ओटमि तिरुगुबाटु) श्री ज्वालामुखी-पृ.-232*

को सजाया, भाषा को सजाया-सँवारा, भावों को सबल बनाने की शैली निकाली और नवीन अलंकारों की उद्भावना भी की।

यहाँ पर यह उल्लेख करना भी बहुत आवश्यक है कि **नये कवियों में** क्रांतिकारी भाव अवश्य हैं, नयी उद्भावनाएँ तथा उनको व्यंजित करने की सुयोजित प्रसाधन-सज्जा अवश्य है, किन्तु **दिगंबर कवियों में दर्शन देनेवाली विद्रोहात्मक भावना का बिलकुल अभाव है**। दिगंबर कवियों में विद्रोहात्मक प्रकृति की तीव्रता न केवल भावाभिव्यंजन तक सीमित है, बल्कि-अभिव्यंजन के अंगों को असामाजिक बनाकर सामाजिक कुव्यवस्था के उत्तरदायी दुराचारियों से लगने के विधान में भी खूब अवगत है।

सारांश यह कि विवेच्य दोनों भाषाओं की विवेच्य काव्य-धाराओं के कवियों के कवि-कर्म की सफलता पर पाठक लोग मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। इसलिये इन काव्य-धाराओं के विभिन्न आलोचकों ने इनकी भूरि-भूरि पशंसा की है, भले ही कहीं-कहीं मानव-सहज कमियाँ नज़र आती हों।

20. भावनिरूपण : प्रस्तुत अध्याय में क्रमशः चर्चित विषयों के आधार पर, क्या काव्य-प्रवृत्तियों में, क्या सामाजिक विचारधारा में, क्या मानवातवादी दृष्टिकोण में, क्या आत्म-दर्शन अथवा स्वतंत्र दृष्टि-कोण इत्यादि सभी विषयों के सम्बन्ध में हिन्दी के नये कवि और तेलुगु के दिगंबर कवियों की कविताओं में हमें सर्वत्र एक प्रकार के साम्य की झलक स्पष्टता के साथ परिलक्षित होती है। ऐसे साम्य के पीछे उन दोनों धाराओं के कवियों की सामाजिक अथवा समकालीन होना एक खास कारण माना जा सकता है। समाज से चेतनाशील कवियों पर उसका प्रभाव एक-सा रहता है। वह किसी भी भाषा अथवा प्रान्त का व्यक्ति होता हो, उसके चारों ओर की सामाजिक दशा एक-सी रहती है, अतः उस पर सामाजिक प्रभाव देश के अन्य प्रान्तों पर जैसे पड़ता है, उसके प्रान्त में भी वैसा ही होता है; हाँ, राजनीतिक व्यवस्था में भिन्नता होने के कारण से थोड़े विभेद का होना सामान्य विषय है। दिगम्बर कवियों में जो नग्नता, उग्रता एवं तज्जन्य अश्लीलता, भद्दापन तथा गाली-गलौज की पद्धति है, उसका कारण समकालीन गिरती कदाचारपूर्ण राजनैतिक दशा ही मानी जा सकती है।

एक बात पर विशेष रूप से हमें ध्यान देने की नितान्त आवश्यकता है कि कभी-कभी प्रभावक दशावाली राजनीतिक व्यवस्था के होने पर भी लेखक के व्यक्तित्व की विशिष्टता के कारण भी उसके कथ्य व

कथन-पद्धति को अन्य-भाषा-भाषी अथवा प्रान्तीय साहित्यों से उसके साहित्य को विरूप अथवा विशिष्ट बना देती है। तेलुगु के दिगंबर कवियों के सम्बन्ध में निस्सन्देह कहा जा सकता है कि उनके समय की राजनैतिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी जिसकी, उनकी रचनाओं द्वारा, पिछले पृष्ठों में हमें स्पष्ट झलक मिल जाती है, फिर छहों दिगंबर कवि रोज़ गोष्ठी में बैठक सँभालते, विचार-विनिमय कर लेते और एक सामान्य निश्चय का प्रस्ताव अथवा सिद्धान्तीकरण कर लेते, बाद में अपने निश्चयीकृत सिद्धान्तों को घर पर अमल करते हुए काव्य-रचना कर लेते। ऐसी गोष्ठी-वाली प्रक्रिया भारतेन्दु और द्विवेदीकाल में भी चलती थी जिससे एक-रूप साहित्य के सर्जन का क्रम चलता था।

नयी कविता के कवियों ने ऐसी कोई गोष्ठी नहीं चलायी थी जिस से उनमें विषय का भी वैविध्य मिलता है और शैली का भी। दिगम्बर कवियों की शैली अथवा रचना-विधान प्राय: एक-सा मिलता है, किंतु दोनों धाराओं के कवियों ने भाव-निरूपण के क्रम में कोई कसर नहीं छोडी ।

प्राचीनकाल में भाव-निरूपण को रस-नियोजन कहा जाता था। परंतु 'रस' पाठक से सम्बद्ध विषय है, क्योंकि लिखी हुई रचना को पढ़ने पर उसमें रस अथवा आनन्द का संचार होता है। वह लेखक की रचना में निहित भाव की मौलिकता, गहराई, सच्चाई, सार्वजनीनता एवं उसे व्यक्त करने के रचना-विधान पर आधारित हुआ करता है। परंतु भाव विषयगत सत्य है जिसको लेखक अपनी विशिष्ट योजना द्वारा प्रतिपादित करता है। इस अवसर पर हमें स्वीकार करना होगा कि विवेच्य सामग्री के सभी कवियों में भाव-प्रतिपादन के अवसर पर उनमें ईमानदारी की कहीं कमी नज़र नहीं आती। यह बात सत्य है कि नये कवियों में कई एक ऐसे हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में निहित सप्तकों के पूर्व कुछ भी नहीं लिखा था, फिर भी उनकी समाविष्ट रचनाओं में पाठकों को उन-उन प्रतिपादित भावों का आनन्द मिल जाता है। यह आनन्द रस-सम्बन्धी भी हो सकता है अथवा विचारों के आस्वाद पर उत्पन्न आह्लाद भी हो सकता है।

दिगम्बर कवियों के सम्बन्ध में बात दूसरी है। उनकी कविताओं का रूप कोरा गद्य है। उनमें केवल विचारोत्तेजक भाव हैं। ये सभी विचार पाठक जगत् के प्रत्येक व्यक्ति को सुपरिचित हैं ही, परंतु उन्हें एक समीकृत रूप तथा व्यंजना की शैली के द्वारा आप सुंदर बनाते हैं। इस संन्दर्भ में क्रियाशील विषय पारम्परिकता नहीं, उसकी विरोधात्मकता है,

क्रम संख्या	विषय	नयी कविता में है या नहीं	दिगंबर कविता में है या नहीं
1.	व्यक्तिवाद	है	है
2.	यथार्थवादी चित्रण	कुछ कवियों में पाक्षिक रूप से है	सभी कवियों में संपूर्ण रूप से है
3.	मानव प्रयत्न में विश्वास	है	है
4.	परम्परा या रूढियों में विश्वास	कुछ में अस्पष्ट रूप से है, परंतु अधिकतर कवि परम्परा-विरोधी हैं	किसी में भी नहीं, प्रत्युत सब के सब परम्परा एवं रूढ़ि विरोधी हैं
5.	धार्मिक विश्वास	कुछ में अस्पष्ट रूप से दिखता है, परंतु अधिकाधिक कवि धर्म में विश्वास नहीं करते	सब के सब धर्म के कट्टर विरोधी हैं
6.	कोरे आदर्श में विश्वास	नहीं है	नहीं है
7.	वर्तमान लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में विश्वास	अधिक संरव्यक कवियों में नहीं है	बिलकुल नही हैं
8.	मार्क्सवाद में आकांक्षा	कई एक कवियों में है	सब के सब कवियों में है
9.	सायुध क्रांति की भावना	अस्पष्ट रूप से परोक्षतः कुछ कवियों में है	सब के सब कवियों में स्पष्टता से व्यक्त है
10.	नारी स्वातंत्र्य में विश्वास	है	है

क्रम संख्या	विषय	नयी कविता में है या नहीं	दिगंबर कविता में है या नहीं
11.	नारी की दुस्थिति पर शोक	है	है
12.	प्रकृति से नाता	कथ्य के साधन के रूप में उपयोग करते हैं	कथ्य के साधन के के रूप में उपयोग; उसके आकर्षक पक्ष का आधार नहीं लेते
13.	वैयक्तिक प्रेम का वर्णन	नगण्य है	बिलकुल नहीं है
14.	पारिवारिक प्रेम का वर्णन	नगण्य है	बिलकुल नहीं है
15.	सामाजिक दुस्थिति के चित्र	विस्तार से हैं	कुव्यवस्था के प्रसंगों से पूर्ण हैं
16.	अलंकारों का प्रयोग और उनकी सीमाएँ	करते हैं (रूपक, श्लेष और उपमा का अधिक से अधिक प्रयोग)	करते हैं (रूपक और उपमा का अधिकाधिक प्रयोग): सब के सब हेय उपमेय हैं
17.	उपमाओं की नवीनता	है	अत्यधिक है
18.	भाषाई चमत्कार	नगण्य है	बिलकुल नहीं है
19.	शैली	वैविध्यपूर्ण; कहीं कहीं वक्रता-युक्त	प्रसाद-गुणयुक्त, प्रत्यक्ष एवं व्यंग्य भरी
20.	शब्द-भंडार	बैविध्यपूर्ण एवं बोलचाल का अधिक	वैविध्यपूर्ण और संपूर्णतः बोलचाल का

21.	वाक्य-विन्यास	वैविध्यपूर्ण, परंतु कहीं गतिलय एवं छन्दाभास युक्त	वैविध्यपूर्ण, सरल और पूरा का पूरा गति-लय-छन्दादि बन्धन से मुक्त
22.	जुगुप्सा एवं भद्देपन के अवसर	नहीं के बराबर	बहुत हैं
23.	अश्लीलता	नहीं है	बहुत है
24.	गाली-गलौज	नहीं है	बहुत है
25.	भावों की प्रेषणीयता	होती है, परंतु कहीं कहीं पाठक को क्लिष्टता का अनुभव होता है(दूर की सूझ के कारण)	सीदी होती है, विरल अवसरों पर वर्ण्य वस्तु के ज्ञान में ही पाठक को कठिनाई होती है, दूर की सूझ से नहीं
26.	रस का पाठक में संवहन	रमणीय अवसर कम हैं, विचारोत्तेजकता के कारण रस के आस्वादन का प्रश्न नहीं उठता	विचारोत्तेजक अवसरों के होते हुए भी शैली में विकृति, व्यंग्य, जुगुप्सा, अश्लीलता, भद्दापन गाली-गलौज इत्यादि के कारण एक प्रकार का रसास्वादन अनुभूत होता है।
27.	प्रभावात्मकता	कम लगती है	सर्वत्र है
28.	उपादेयता	आस्वादन तक ही	आस्वादन के साथ-साथ सीमित अवांछित भावों का समंजन भी होता है

पंचम अध्याय

☛ कृपया ध्यान दें : अ,आ,इ क्रमश : तारसप्तक, दूसरा सप्तक एवं तीसरा सप्तक के और $दि_1$, $दि_2$, $दि_3$ दिगम्बरकवुलु-प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय संकलन के संकेतक हैं।

1. प्रस्तावना : बहुत समय पूर्व तक साहित्य अथवा काव्य के अंतर्गत जो कुछ भी विषय-वस्तु अथवा सामग्री हो, उसे भावपक्ष कहा जाता था और उसे अभिव्यक्त करने की पद्धति को कला-पक्ष। साहित्य की विधाओं में सर्वोत्कृष्ट मानी जानेवाली कविता के विषय में अंतरंग व बहिरंग का यह वर्गीकरण हर कोई काव्यशास्त्रज्ञ माना करता था। भावपक्ष को कविता के सन्दर्भ में रस कहा जाता था और अभिव्यक्ति-पक्ष को कलापक्ष के नाम से ही पुकारा जाता था। रस को काव्य की आत्मा और कलापक्ष को उसका कलेबर कहा जाता था। जितने ही काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय हुए, उन सबने नाम बदले, परन्तु रस का महत्व जाने न दिया। कलेबर के विषय में कला-पक्ष का नाम ही रहने दिया। धीरे-धीरे कला-पक्ष के विषय में भी दूसरे नाम प्रसिद्धि में आने लगे। उनमें से एक का नाम रचना-विधान है और दूसरे का शिल्प-विधान। कोई भी रचना एक कला-खंड हुआ करती है। उसे सुंदर रूप देने का उसका लेखक शतधा यत्न करता है; यह यत्न मानों एक शिल्पी का नक्काशी का-सा है। इस दृष्टि से रचना -विधान के स्थान पर शिल्प-विधान, शिल्प-सौंदर्य इत्यादि नाम अपेक्षाकृत उचित माने गये।

उपर्युक्त दृष्टि से कवि एक शिल्पकार है, वह अपनी काव्य अथवा कविता-खंड की इमारत में अपने जीवन की संचित वस्तु (भाव) को सुरक्षित रखता है और उस इमारत को ऐसी नक्काशी से सजोता-सँवारता है ताकि न केवल उसके अन्दर के ही भाव मात्र से पाठक-श्रोता लोग लाभ उठायें, बल्कि बाह्य सौन्दर्य के आनन्द को भी आत्मसात् करके विभोर हो उठें। सत्य के साथ-साथ सौंदर्य-दर्शन का भी पाठकों को आनन्द मिल जाय।

इस शिल्प-सम्बन्धी बाह्य-वस्तु-सामग्री का साधन प्रधान रूप से भाषा है। यों तो भावों की अभिव्यक्ति का वाहक भी वही है; अतः भाषा सत्य एवं सौंदर्य दोनों का सहज ही मूल वाहक है। भाषा के

अंतर्गत समाविष्ट काव्य-तत्व कुछ ऐसे होते हैं जिनके सफल निर्वहण से काव्य अधिकाधिक निखर उठने लगता है। छन्द-योजना, अलंकार-सज्जा, बिम्ब-विधान, प्रतीक-योजना, शैली इत्यादि शिल्प-सबंधी बाह्य-सामग्री-गत विषय हैं।

हिन्दी की नयी कविता और तेलुगु की दिगंबर कविता के कवि कविता के बाह्य पक्ष के विषय में निरंतर सजग रहते आये हैं। हम निम्नांकित पंक्तियों में एक एक विषय को लेकर तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास करेंगे।

2. भाषा : भावों की आभिव्यक्ति का एकमात्र साधन भाषा है। भाषा से रहित भावों की कल्पना हम कर नहीं सकते आदिमानव की भाषा संकेतों-ध्वनियों पर चलती थी। उन्हीं का विकास आजकल प्रचलित भाषाएँ हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन-क्रम में, उस पर पडे पर्यावरण के फलस्व रूप उसकी भावाभिव्यक्ति का ढाँचा-भाषा-भी बदलता जाता है। अपने भावों को सुस्पष्ट अथवा प्रभावात्मक प्रेषित करने में अपनी भाषा को असमर्थ अथवा अपटु महसूस कर हर व्यक्ति ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से उसमें फेर-बदल किया करता है। इसी से एक ही चीज के अनेक नाम पड़ जाते हैं। ऐसे ही, एक ही बात को कभी-कभी एकाधिक रूप से व्यक्त किया करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में इस अभिव्यक्ति की एक पद्धति रहती है। उसकी अपनी रुचि भी एक खास चीज है जो उसे एक विशिष्ट पद्धति में अपने भावों को अभिव्यक्त करने की ओर पवृत्त करती है। इसी को हम उसकी 'शैली' कहते हैं। लेखक की कहने की वह विशिष्ट पद्धति 'शैली' है जिससे वह जाना जाता है। शैली कहने की पद्धति होते हुए भी भाषा का अभिन्न अंग रहा करती है। इसलिये उसे भाषा से अलग करके देखा नहीं जा सकता। इसी से 'भाषा-शैली' शीर्षक से इस अध्ययन का क्रम चलता है। विवेच्य दोनों भाषाओं की कविताओं की शैलियों में नवीनता की जो चर्चा की जाती है, वह सौ फी सदी सत्य है। तेलुगु और हिन्दी की विवेच्य इन कविताओं में **भाषा** व कथन-पद्धति अथवा शैली की पहली व अंतिम विशेषता उसकी **स्वाभाविकता** है जो सब के सब कवियों में एकसमान है। इसका कारण इन कविताओं की भाषा का बोलचाल का होना है। **बोलचाल की भाषा** में कविता जब लिपिबद्ध होती है, तब वह **जनसाधारण की पहुँच** में होती है क्योंकि उसमें प्रेषणीयता एवं संवेदनशीलता की प्रचुरता रहती है। श्री अज्ञेय के ही शब्दों में -...........

(कवि) भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल को फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित भरना चाहता है[1]

दोनों भाषाओं के ये कवि प्रायः एकसमान राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में पले हुए हैं। अतः उनकी सामाजिक दृष्टि एवं जीवन-दर्शन के साथ उन्हें अभिव्यक्त करने की पद्धति भी लगभग एक-सी रही है। दोनों भाषाओं के कवियों की अभिव्यंजना-पद्धति अथवा शैली में यह समानता बराबर नज़र आती है। तेलुगु के दिगंबर कवियों ने मानों कसम खा ली हो कि वास्तविक जीवन में बोलने के तरीकों को भी अपनाये बिना वे रह नहीं सकेंगे। हिन्दी के नये कवियों के सम्बन्ध में भी बात यही है। श्री नेमिचंन्द्र जैन का कहना है:

"बोलचाल की भाषा का इतना आत्मीय, सहज और प्रभावी उपयोग बहुत कम कवियों ने किया है। और बड़ी बात यह है कि वे बनावटी ढंग से लाये गये या आरोपित नहीं हैं। वे आत्यंतिक रूप से भावदशा से उस कविता के कथ्य से जुड़े हैं और उसे अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय ही नहीं, पैना भी बनाते हैं। 'आत्महत्या के विरुद्ध' की कविता में ऐसी प्राणवान और सजीव भाषा का संस्कार है जो हिन्दी कविता को नया संस्कार देता है"[2]

बोलचाल की भाषा का प्रथम सोपान छन्द के बन्धन को तोड़ देना है और द्वितीय सोपान सीधे उसी भाषा में वैसा ही लिखना है जिस भाषा-रूप का तथा जिस बोलने के तरीके का हम रोजमर्रे के जीवन में प्रयोग करते हैं। नयी कविता और दिगंबर कविता-दोनों भी की सजीव भाषा है।

श्री भारत भूषण अग्रवाल अपनी सजीव भाषा में खेद प्रकट करते हैं कि

"आज तक कवियों की भाषा जीर्ण व वृद्धा-सी हो गयी है, जीवन में उभरती-चलती विषमताओं को व्यक्त करने में वह असमर्थ-सी रह गयी है, बदलते हुए जमाने की बदलती हुई परिस्थितियों को, सुलझाने की बात दूर रही, अभिव्यंजित करने में वह अशक्त है, न मानव के बाह्य रूप का न अंतस के तत्व का वह चित्र उताराने में समर्थ है-

1) *आ (सं. अज्ञेय) भूमिका पृ.11*
2) *"आधुनिक हिन्दी कविता-आत्महत्या के विरुद्ध" की श्री नेमिचंन्द्र जैन की आलोचना (सं. श्री जगदीश चतुर्वेदी) पृ.106*

कितनी संकुचित जीर्ण, वृद्धा हो गयी आज कवि की भाषा
कितने प्रत्यावर्तन जीवन में चंचल लहरों के समान
आये बह गये, काल बुद बुद सा उठा, मिटा पर परम्परा
अभिभुक्त अभी परिवर्तित हुई न परिभाषा
रूप की, व्यक्ति की [3]

दिगंबर कवि भी इसी प्रकार भाषा की असमर्थता पर अपना खेद प्रकट करते हुए अपनी भाषा के स्वरूप का विस्तृत संकेत करते हैं। भाषा की परम्पराबद्धता के तिरस्कार के साथ-साथ अब तक भाषा के माध्यम से साहित्य पर चले अत्याचारों का वर्णन करके परोक्ष रूप से अपनी भाषा की सजीवता एवं सार्थकता की बात करते हैं। श्री भैरवय्या की कुछ पंक्तियों का हिन्दी में यह काव्यानुवाद देखा जाय-

दिगंबर कविता के अक्षर
काम से सड़े
लतांगी के पयोधरों पर
नूतन नखक्षत नहीं हैं
आकाश के नक्षत्र भी नहीं-न पुच्छलतारा ही हैं
साहित्य या सरस्वती के
सोने के नये आभूषण भी नहीं हैं
हरे रतनों के हार-मोतियों की लड़ियाँ या नवरत्न
हैं ही नहीं [4]

कवि का आशय यह है कि इसके पूर्व के कवियों ने, कविता के आधुनिक युग में भी, वस्तु को सुंदर बनाने की धुन में उसकी शक्ति-हीनता एवं निरर्थकता को नहीं पहचाना न ही वस्तु के वास्तविक रूप को पाठकों के आगे अवतरित करने का प्रयत्न किया। वस्तुगत सत्य के पीछे नये कवियों का जो आक्रोश रहा है और उस आक्रोश में जो लगन की तीव्रता छिपी हुई है, वही तीव्रता सब के सब दिगम्बर कवियों में निरपवाद रूप से गोचर होती है।

मानव-मानव के बीच के विभिन्न सम्बन्धों में हार्दिकता की आवश्यकता को व्यक्त करने के अवसर पर श्री प्रभाकर माचवे की भाषा की सजीवता देखें-

*3) **इ** 'अपने कवि से' (श्री भारत भूषण अग्रवाल) पृ. 88*
*4) **दि1** 'दिगंबरी' श्री भैरवय्या पृ.14*

जब दिल ने दिल को जान लिया
जब अपना-सा सब मान लिया
तब गैर-बिराना कौन बचा
यदि बचा सिर्फ तो मौन बचा [5]

भय के वातावरण में जीवन व्यतीत करनेवाली जनता से भरे समाज का वर्णन करने के अवसर पर श्री महास्वप्न की ये पंक्तयाँ कैसी सजीव भाषा में गतिशील हैं, यह देखा जाय-

शहर के बीच बाजार मे नगन हो चलता बना-
दरवाजे बन्द, खिडकियाँ बन्द,
द.फ़तर और दूकानें सभी बन्द,
ट्राफिक बन्द
सड़कों-गलियों को बुखार
बाजारों के बाजार बेहोश
हर जगह खामोशी
सब कुछ सूना सूना
मेरे पास एक भी नहीं आता
मुझसे शहर को बहुत ही डर ! [6]

मानव-जीवन के वैषम्य का सबलचित्रण न कर सकनेवाला साहित्य-विशेषकर कविता की विधा-साहित्य ही नहीं, इसी तथ्य को लक्ष्य करते हुऐ श्री भारत भूषण अग्रवाल अपनी व्यथा को यों वाणी देते हैं-

हमको न जरूरत आज देव-वाणी की, हम खुद ढालेंगे
जीवन की भट्टी में भाषा, जी चाहा रूप बना लेंगे।
तू भूल गया अज्ञान ....
शब्दाडम्बर-चक्र में भ्रान्त-अप्सरा बना डाली तूने
षोडश-वर्षीय रूपवती वह पढ़ी-लिखी लड़की 'पागल!
तू सुनता रहा मधुर नूपुर-ध्वनि यद्यपि बजती, थी चप्पल। [7]

भाषा के सम्बन्ध में दो और बातों का उल्लेख अभी आवश्यक है- पहली है शब्दों के प्रयोग का औचित्य और दूसरी है-शब्द-प्रयोग की सार्थकता। नये कवियों और दिगम्बर कवियों ने संस्कृत तत्सम,

---

5) अ.चार और पंक्तियाँ(श्री प्रभीकर माचवे)) पृ.133
6) द,'हठान्तुगा पट्टपगलु बट्टलन्नी विपेसी ?' (अकस्मात खुले दिन में सभी कपडे. निकालकर) पृ.36
7) 'अपने कवि से (श्री भारत भूषण अग्रवाल पृ. 88-89

तद्भव,देशज, ग्रामीण, उर्दू-फारसी-अरबी, विदेशी-सब प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है; इतना ही नहीं, गढन्त और नवीकरण का प्रयोग भी दोनों को इष्ट रहा है और सर्वत्र उनका यह प्रयोग किया है, इतना ही नहीं, गढन्त और सर्वत्र उनका यह प्रयोग अत्यन्त औचित्यपूर्ण एवं कथ्य को प्रभावात्मकता के साथ प्रेषणीय बनाने में समर्थ रहा है। इस अवसर पर यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि भाषा से आशय विशेषकर शब्दों से होता है और शैली का आशय वाक्य विन्यास से होता है। अब तक उल्लिखित अवतरणों द्वारा भावाभिव्यक्ति में शब्द-जाल की सम्मिलित शक्ति को-हमने देख लिया है। भाषा-विज्ञान के मूल सिद्धान्त के अनुसार भावों की इकाई वाक्य होता है, शब्द नहीं,; शब्द वाक्यों के खंडित अंश होते हैं, इस दृष्टि से हमें दोनों भाषाओं की रचनाओं में प्रयुक्त वाक्य-खंड आथवा शब्दों का अध्ययन करना भी आवश्यक जँचता है। जैसे कि कहा गया है, हिन्दी के नये कवियों ने शब्दों के प्रयोग से कोई परहेज़ नहीं रखा है-प्रत्यावर्तन, देवतापन, जडांध, गीति-स्तम्भिता, (गीत के श्रवण के कारण स्तम्भित) अचुम्बिता (अनाघ्रातं के सादृश्य पर), लाभकर्मी (लाभ-कारी धंधा करनेवाला), छलनामयी (छायावादी प्रयोग), वेगातुरता (आधुनिक जीवन की विशेषता को व्यक्त करने केलिए), याचना-सज्जा (भीख-माँगने केलिए साधुओं का वेषधारण), शक्तिदा, स्वस्ति, एकोऽहं बहुस्याम, सो हं का त्वं में लय, वातास (ग्रामीण-छायावादी प्रयोग), देवापगा, कलम घिसना (कविता लिखने के अर्थ में) खोखल (खोखला), गर्मीली (गरम), दौरान (के संदर्भ में) चीन्हना, सपन (सपना), चाहना (स्त्रीलिंग संज्ञा में प्रयोग-चाह के अर्थ में), जुन्हाई, धुंधुलका, बेस्वाद, फिसल, प्रमा, भुवाली, (गली का) पिल्ला (गली के कुन्ते के अर्थ में) खुदगर्ज़, रंजोगम, फरिस्ता, दकियानूसी, हैवानियत, इन्तेहा, इमदाद, रेशनलईज़ेशन, क्वाटर्ज, गुरिल्ला (दल), मोनेड़, बाथ-रूम, रिजर्व, बूर्जुआ, हेड़लाइट, पावरप्लांट, ऐम्ब्युलेंस इत्यादि कुछ उदाहरण हैं जिनके बदले में उनके सन्निकटस्थ पर्यायवाची शब्द भावाभिव्यक्ति एवं प्रेषणीयता के ध्यान से बिलकुल फीके लगने लगेंगे। उक्त उदाहरणों में हम सम्बद्ध मूल-भाषा के गढन्त रूप भी पाते हैं, नवार्थ-द्योतकता भी पाते हैं और तदर्थकता भी पाते हैं।

तेलुगु कविता को नवागन्तुक कवियों ने समासीकरण से तो मुक्त किया, परंतु वे संस्कृत तत्सम-बहुलता से मुक्त नहीं हो पाये; क्योंकि खडीबोली हिन्दी का-सा आन्दोलन ठेठ तेलुगु अथवा देशज तेलुगु (जिसे तेलुगु में अच्च तेलुगु कहा जाता है) को रूपायित करने की दिशा में

नहीं चला था। खडीबोली हिन्दी युगीन आवश्यकता थी, राष्ट्रीय एकता के साधन के रूप में सख्त जरूरत थी, देश भर के पढ़े-लिखे लोगों के कठोर श्रम का सपना था जो सच निकल गया था। लेकिन देशज तेलुगु के निर्माण की क्या आवश्यकता थी जब चालू भाषा-रूप द्वारा काम चलाया जाता रह सके?

तेलुगु में आधुनिक कविता के भाषाई नवीन स्वरूप का आविर्भाव श्री श्री के साथ माना जाता है, किंतु उन्होंने भी संस्कृत के तत्सम-रूप शब्दों को अपनी रचनाओं में प्रयोग-बाह्य नहीं समझा क्योंकि आम जनता उनसे परिचित रहा करती थी-इसी से श्री श्री अथवा उनके युग के अनुयायी प्रत्येक कवि ने भावों में तो सुधार की बात पर ध्यान दिया था, बल्कि भाषा को नवीकृत करने की नहीं सोची।

दिगंबर कवियों वने उग्र भावों को व्यक्त करने केलिये बोलचाल की भाषा का वही रूप चुन लिया जो जीवन के हर क्षेत्र में व्यवहार में चलता आ रहा था। हिन्दी-उर्दू-फ़ारसी-अंग्रेजी के सभी शब्द उसी रूप में उन्हें मान्य हैं जिस रूप में वे दैनिक जीवन में व्यवहृत होते पाये जाते हैं। इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि वे संकृत के तत्सम-तद्भव और तेलुगु के देशज (ठेठ) शब्दों के विरोधी हैं। उनका भी वे रोज़मर्रे के जीवन से लेकर अपनी रचनाओं में प्रयोग करते हैं। तेलुगु के थोडे-से और अन्य भाषाओं के (उर्दू-फारसी-अरबी और अंग्रेजी के) प्रयोगों के यथोचित संख्या में उदाहरण दिये जाते है; आवश्यक होने पर कोष्ठकों में समझाने की चेष्टा भी की जाती है-कागितपु भूतं (कागज़ का भूत-कागज़ पर ही काम किया जाता-सा दिखाया जाता है, परंतु वास्तव में जनता के आगे कुछ नहीं आता), दिगंबर देवुडु (दिगंबर ईश्वर) स्वयं दिगम्बर कवियों का आविर्भाव, कन चेदुरुगा (आँखों को चौंधियाते हुए-यह प्रयोग गढ़न्त है), दिल बेदुरुगा (दिल को धड़काते हुए-यह प्रयोग भी गढ़न्त है) विश्वंभरं घूर्णिल्लगा (विश्वभर के घूर्णित होने पर-यह क्त्वार्थक प्रौढ़ संस्कृत तत्सम शब्द-जाल है), अंट्लवेधवा (निरे निकम्मे की ठेठ तेलुगु में गाली) मुद्राक्षतलु (यह गढ़न्त प्रयोग है जिसका अर्थ है मुद्रित रूप में (IN PRINTED FORM) बाबाकरुलु (झूठे साधुवेष में सज्जनों के रूप में समाज को छलनेवाले बदमाश), कीर्ति कंडूति (यश की तीव्र आकांक्षा), कला-अकारुडिकि षष्टिपूर्ति समास के विग्रह अथवा विच्छेदन में यह संकेत है कि वास्तव में वह कलाकार नहीं, अकलाकार है और इस षष्टिपूर्ति के पीछे उसका अपना निजी प्रयास है), साहिती याचकुलु

(साहित्यिक याचक साहित्यकार होते हुए याचना करनेवाले), मिभ्याग्रथ (भारतीय प्रसासन की ओर संकेत है), स्वातन्त्र्यपु चीकटि (स्वातन्त्र्य का अंधकार-संकेत यह है कि भारत की प्राप्त स्वतंत्रता के मुक्त प्रकाश में हम स्वच्छन्द-विहार के योग्य नहीं, अंधकार में लड़खडाते गिरने पर चोट पहुँचानेवाली है, सुंन्दर हार्म्यातिर्गत, सवालक्ष (सवा-लाख) असंख्यक), काका पट्टडं (चंचागिरी=करना), सलामवालेकम (असलाम अल्लेखुम), बिगबेन अग्निपर्वतं (बिगबेनवाली ज्वालामुखी), न्यूडिस्ट तांडवं (नग्न तांडव)वायुलीनं (वयोलिन Violin-गढन्त) भंडाचोर-भटाचोर (बडा चोर का रूपान्तर), जाबिता (जाब्ता-सूची), पैजांमा (पायजामा), अगाधमी, अनाधमी (अकादमियों के असली रूप की ओर संकेत है कि उन संस्थानों में अगाध अनीतिपूर्ण क्रिया-कलाप चलते हैं और सचमुच कलाकारों का उद्धार करनेवाली वहाँ कोई नाथ नहीं है) सिफिलिस्संगीतं (सिफिलिस रोग फैलानेवाला संगीत), खराब, होदा (ओहदा) मरीजुआना मनुष्युलु (मारजुवाना जैसे मादक द्रव्यों के नशे में जीते हुए कर्तव्य से विमुख लोग), सुप्रीम धर्म देवता (उच्यतम न्यायालय की ओर संकेत जहाँ तक न्याय केलिये सामान्य मानव की पहँच नहीं), टूरिस्टकैंकर्य (पर्यटकों के हवाले), लिस्डलो मन पेरे फस्टु (सूची में हमारा ही नाम पहला है), डियर स्काउंड्रल (Dear Scoundrel), हीरो-विलन (Hero-Villain) डिप्लोमसी (Diplomacy) सेंटिमेंट (Sentiment) कांक्रीटु (Concrete-सिमेंट का) गारेज (Garrage), सेक्सपील सीनरी (Sex-appeal Scenery) ऐलक्शन पेग्गुलु (ऐलक्शन के आम-चुनाव के अवसर पर पिलायी जानेवाली शराब से आशय), काकटेइल (Cocktail) सिन्नर्लु (Sinners) आई.ए.एस ब्यूरोक्रसी (I.A.S Bureaucracy) ऐ.रा.सं.कु एम्बलेम-संयुक्त राष्ट्र-संध का चिन्ह..) कक्कसु (पाखाना) इत्यादि असंख्यक प्रयोग देखने को मिलेंगे जो सौ फ़ी सदी सुयोग्य जँचेंगे।

भाषा का शब्द-सम्बन्धी प्रयोगों का यह प्रसंग अपूर्ण ही रह जायेगा यदि उनकी सार्थकता पर भी थोड़ा-बहुत प्रकाश डाला न जाता। कभी-कभी ऐसा होता है कि कवि ध्वनि के द्वारा भावों को व्यंजित करना चाहता है; ऐसे अवसर पर ध्वनि तथा भाव के साम्य को सुव्यक्त करनेवाले उन आवृत्तियुक्त शब्द-प्रयोगों को ध्वन्युनकरणात्मकतावाले शब्द कहा गया और उन्हें अलंकार की कोटि में रख-सा दिया गया। अंग्रेजी में भी यह परिपाटी चली और उसे Onimatopia (ध्वनि एवं भाव का साम्य) कहा गया। विवेच्य वस्तु में यथोधिक रूप से ध्वन्यानुकरणात्मक प्रयोग के शब्द मिलते हैं और कहीं-कहीं ये खटकते भी हैं। उदाहरणार्थ श्री मदन वात्सायन मशीनों का पूँजीपतियों के प्रतिनिधि के

रूप में चित्रण अंकित करना चाहते हैं। यंत्र-जन्य वर्ग-स्थिति-युक्त संघर्षशील सामाजिक अवस्था प्रकट करने केलिये आप मशीनों की आवाज़ से अपनी कविता का यों प्रारम्भ करते हैं --

मशीनें कहती हैं :
धक - धक खच - खच धक - धक खच - खच
धक - धक धक - धक खच - खच खच - खच
धक - धक खच - खच धक - धक खच - खच
धक - धक धक - धक खच - खच खच - खच
धक - धक खच - खच धक - धक धा - धा
खच - खच खच - खच धक - धक खच - खच
धक - धक खच - खच धक - धक धा - धा - धा
धा धा धा धा - [8]

ध्वन्यात्मकता द्वारा मशीनों के काम करते समय की आवाज़ का भान करने केलिये आठ पंक्तियों की जगह को काला बनाना अनावश्यक-सा लगता है क्योंकि दो तीन पंक्तियों के पढते ही साधारण पाठक भी समझ जाता है कि मशीनें क्रियाशील हैं। इससे शब्दों के निरर्थक प्रयोग की ही पाठकों को अवगति हो जाती है और उन्हें ऐसा लगता है कि या तो कवि को पाठकों की समझ का ज्ञान नहीं अथवा शब्द-प्रयोग के औचित्य का बोध नहीं।

समाज के हर क्षेत्र में, खासकर शिक्षालयों से प्रारम्भ होकर सर्वत्र गन्दा वातावरण है। इस बात को कौन नहीं जानता? और इसे व्यक्त करने केलिये जंग शीर्षक की ये पंक्तियाँ कौन प्रयोजन साधती हैं, यह विचारणीय अंश है-

महाविद्यालय की सीढ़ियों में जंग
पाठ्य-ग्रंथों में जंग
ग्रंथालयों में जंग
अध्यापकों में जंग
कक्षाओं के कमरे में जंग
परीक्षा-फलों में जंग
श्याम पट में जंग
बालकों में जंग

8) इ. अमरपुरी में दस से छे: (श्री मदन वात्सायन) पृ.-161

माँ-बाप लोगों में जंग
जंग-जंग जंग-जंग- [9]

अपने विद्वेष की भावना को उगलना कवि का कर्म नहीं है क्योंकि कविता का प्रयोजन न ऋणात्मक भावों को जगाना है न कि पाठकों को भड़काना; फिर समाज के यथातथ्य चित्र को उतारना यद्यपि साहित्य का एक काम है, फिर भी उसका कोई समाधान सुझाना अथवा प्रयोजनपूर्ण सन्देश पहुँचाना कविता का काम है। नये कवि केदारनाथ सिंह की 'टूटने दो' शीर्षक की कविता में कुल 31 पक्तियाँ हैं। ओरे भाई ! इस गीत की केवल 8 पंक्तियों में कथ्य समा जाता है। वास्तव में इस इक्कीस पंक्तियोंवाले गीत को निम्नलिखित पंक्तियों में समाया जा सकता है-

अगर नहीं है मेरे स्वरों में तुम्हारा स्वर
अगर नहीं है मेरे हाथों में तुम्हारे हाथ
अगर नहीं है मेरे शब्दों में तुम्हारी आहट,
अगर नहीं है मेरे गीतों में तुम्हारी बात
मुझे पछाड़ खाये बादल की तरह
टूटने दो। [10]

नयी कविता के नाम पर साधारण से साधारण बातों का उल्लेख करते हुए शब्दों के शब्दों व पंक्तियों की व्यर्थता अवश्य खटकनेवाली बात है जब उनमें न तो भाषाई चमत्कार है न वागाडम्बर का ही आकर्षण। इसी प्रकार तेलुगु कविता का एक अंश देखें-

स्कूलों में अँधेरा
मन्दिरों में अँधेरा
गिरिजाघरों की प्रार्थनाओं में अँधेरा
बैंकों में अँधेरा
बारों में अँधेरा
होटलों में अँधेरा
स्टुडियो में अँधेरा
मेकप कमरों में अँधेरा [11]

भाषा-सम्बन्धी इस चर्चा को यहाँ पर समाप्त करके अब शैली के सम्बध्न में विचार किया जाता है-

---

9) दि3 'जंग' श्री चेरबडराजु पृ.-180
10) इ. टूटने दो' (श्री केदारनाथ सिंह) पृ.-222-223
11) दि3 'कनुदिक' (श्री चेरबंडराजु) पृ.-194

3. शैली : 'भाषा' से शब्दों के प्रयोग तथा 'शैली' से वाक्य-विन्यास का आभास मिलता है। शैली वह साधन है जो कथ्य को आकर्षक अथवा सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बना सकती है। नये कवियों तथा दिगंबर कवियों की स्वल्पकालीन अवधि में रव्याति-प्राप्ति का कारण उनकी शैली ही है। यों तो दोनों ने छन्द, अलंकार, बिंब, प्रतीक जैसे काव्य-साधनों के विषय में आकर्षण एवं नव्यता लाने का यत्न किया और उक्त सभी बातें शैली के ही अंग हैं।

दिगम्बर कवियों की विशेषता उनके कथ्य की पद्धति की अथवा शैली की है। एक प्रकार से उनकी शैली को हम 'वक्रोक्ति' भी कह सकते हैं। कभी-कभी उसके साथ तीखा व्यंग्य भी जुड़ा रहता है। **दिगम्बर कवियों में से सब के सब वक्रोक्तिवादी हैं।** सीधी बात को धुमा-फिराकर कहना, एक ही बात को अनेक विचित्र प्रकारों से कहना और चली आती हुई परम्परा की राह पर न चलकर वक्र पथ को अपनाना इनकी शैली की विशेषताएँ हैं। अश्लीलता और गाली-गालौज की पद्धति भी शैली का एक प्रकार है, इन दोनों पर अलग रूप से आगे चर्चा की गयी है

व्यंग्य और वक्रोक्ति का डॉ. रामविलास शर्मा और श्री चेरबंडराजु में कैसा साम्य है, निम्नांकित पंक्तियों से मालूम होगा। डॉ. शर्माजी कहते हैं-

हिदुस्तान हमारा है.
प्राणों से भी प्यारा है।
इसकी रक्षा कौन करे?
सेंत-मेंत में कौन मरे?

पाकिस्तान हमारा है,
प्राणों से भी प्यारा है।
इसकी रक्षा कौन करे?
बैठो हाथ पै हाथ धरे!

गिरने दो जापानी बम!
सत्मं शिवं सुन्दरम।
हाथी घोड़ा पालकी
जै कन्हैया लाल की,

हिन्दू हिदूस्तान की
जै हिटलर भगवान की।
टोजो और जापान की

बोलो वन्देमातरम !

सत्यं शिवं सुंदरम ![12]

श्री चेरबंडराजु कहते हैं-

हे मेरे प्रिय मातृदेश !
माता, पिता, ईश्वर तुम ही हो माँ
बदमाशों के साथ पलंग पर रंडीबाजी
करनेवाला शील है तुम्हारा
अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अंग-प्रत्यंग गिरवी रखा
हुआ सौंदर्य है तुम्हारा
संपन्नों के हाथों में मदमस्त होकर सोनेवाला
यौवन है तुम्हारा
थूकने या धूल झोंक देने पर भी अविचलित
सिरचकराई है तुम्हारी
खड़ी फसल में बिल खोदनेवाले
चूहों और मूसों को सहती खजी भारती हो माँ
मुँह तक न पहुँचनेवाले सस्यश्यामल क्षेत्र हो माँ
वन्देमातरम वन्देमातरम
अपनी देह के वस्त्रों से झंडे बनाकर
विवस्त्र हो जुलूस निकलने का धीरज है तुम्हारा

हे माँ भारती! तुम्हारी मंजिल क्या है?
वन्देमातरम
वन्देमातरम [13]

स्पष्ट ही दोनों कवि एक-दूसरे से मिले नहीं थे न ही इन दोनों कविताओं का अनुवाद इधर की भाषा से उधर की भाषा में हो पाया था। भले ही प्रसंग भिन्न हों, विचारों में कैसा साम्य है और उससे बढ़कर 'शैली' की 'वक्रता एवं व्यंग्यात्मकाता' में कैसी समता है! दोनों देश-प्रेमी हैं, स्वदेश की दुस्थिति, उसकी सम्पन्नता को पहुँचती हानि और इसे दैश में रहनेवाले निवासियों द्वारा उसकी दुरवस्था से व्याकुल दोनों कवि अपना शोक प्रकट करते हैं। दोनों की कविताओं के शीर्षक भिन्न हैं, परन्तु वस्तुगत सत्य को प्रकट करने की पद्धति में अलगाव बिलकुल

12) अ. 'सत्यं, शिवं,सुंदरम' डॉ.राम विलास शर्मा पृ.-246-247
13) दि3 'वन्देमातरम' (श्री चेरबंडराजु) पृ.-143

नहीं है। दोनों 'वन्देमातरम' का दो बार [बीच में एक बार और कविता की समाप्ति पर एक बार] प्रयोग करते हैं मानों दोनों ने परस्पर विचार-विनिमय कर लिया हो! दोनों कवि मार्क्सवादी हैं, अतः वे मानवतावादी भी हैं। इसी कारण से अपने यहाँ की जनता की दुरवस्था से उनका हृदय आहत है। देश-प्रेम केवल देश-भक्ति के गीतों तक रह गया है और राष्ट्र-प्रेम राष्ट्र-गीत तक। जनता सर्दी, धूप, वर्षा से तड़पे, भीख माँगते हुए भटके, भूखे से मरे-इससे यहाँ के उसके प्रतिनिधियों का कोई सरोकार नहीं। इस बात का एकसमान व्यंग्य-वक्रोक्तिपूर्ण शैली में भिन्न-भिन्न भाषाओं के कवियों द्वारा एकसमान व्यंजना पाना निराली बात है। तिरस्कृत प्रतिभा का वर्णन करते हुए मुक्तिबोध कवियों में लेखन-प्रयत्न का मजाक भी उड़ाते हैं और तरस भी खाते हैं --

छटपटाती किरनों का पारदर्शी क्वाट्र्ज,
किरनें कि आलोचनाशील, धारदार उपादान
जिनकी तेज़ नोकों से अकस्मात्
मेरी काट-छाँट, छील-छाल लगातार, [14]

श्री भैरवय्या भी कवि के रूप में अपने आगमन की पद्धति को यों बताते हैं-

आँखें चौंधियाते हुए, दिल धड़काते हुए आया हूँ

विश्वंभर के आँगन में बिछे अन्धकार के छिड़काव पर
घूर्णित नेत्रों के साथ आया हूँ। [15]

यहाँ भी अंधकार और प्रकाश की चर्चा है। जब कि श्री गजानन पुक्तिबोध तिरस्कृत प्रतिभा की व्यर्थता का जिक्र करते हैं, श्री भैरवय्या कवि के रूप में कर्मरत अपने मन के भावों की आग, उसका प्रकाश, जनता में फैला अज्ञान और उसे दूर करने की अपनी धुन, समाज में व्याप्त भद्धापन तथा उसे हराकर सौन्दर्य से भरने की अपनी लगन इत्यादि की चर्चा करते हैं। दोनों ही कवि ध्वनि से काम लेते हैं जिससे व्यष्टि एवं समष्टि का व्यंग्य उडाया गया है, इसका कारण दोनों कवियों की शैली की वक्रता है।

---

14) अ. एक आत्म-वक्तव्य (श्री गजानन मुक्तिबोध) पृ.-41
15) दि1 अग्निप्रवेशं (श्री भैरवय्या) पृ.-32

सारांश रूप में, नये कवियों में से कुछ की और दिगंबर कवियों में से सबकी कविताओं में व्यंग्य की अतिशयता है। यह व्यंग्य वक्रता लिये हुए है। वक्रता व व्यंग्य दोनों भाषाओं के इन कवियों की रचनाओं का प्राण हैं। नये कवियों का व्यंग्य सापेक्ष रूप से सीधा है, परंतु दिगम्बर कवि इस धनात्मकता एवं सीधे व्यंग्य के साथ गाली-गलौज को भी जोडते हैं। दिगंम्बर कवियों में सदा ही सापेक्षतः तीव्रता की मात्रा उच्यतर है, उनकी व्यंग्यात्मकता में शिकार को नीचा दिखाना, उसे आडे हाथों लेकर तिलमिलाते हुए मौन रह जाने को विवश करना और अपने व्यंग्य-बाणों के तीखेपन में मांसलता को उभरे रूप में प्रस्तुत करना एक अतिरिक्त विशेषता है। इस व्यंग्यात्मक शैली का उद्देश्य हास्य की उद्भावना नहीं है, क्रोध, कुढन, कुंठा जैसे दमित भावों को विमोचन प्रदान करने का यह साधन है। अपने विषय में उनका उद्देश्य साथ-साथ पाठक-जगत को उसकी दमित वासनाओं से विमुक्ति तो प्रदान करता ही है, फिर उसे सचेत भी करता है।

4. छन्द : आधुनिक काव्य-युग में निराला जी का कवि के रूप में आविर्भाव कविता के छन्द-विधान में एक नया मोड़ है। उनके मुक्त छन्द का पहले-पहल घोर विरोध हुआ था, उन्हें रबड़ छन्दवाले कवि की उपाधि भी प्रदान की गयी थी। अत्यन्त प्राचीनकाल में छन्द में मांत्रिक शक्ति का विश्वास किया जाता था; उसके बाद, आधुनिक युग में, सब की सब भाषाओं की कविता में उसे संगीतात्मक अथवा नाद-सौंदर्य का साधन समझा जाने लगा और उसका मोह प्रायः सभी कवियों में था यद्यपि वर्णवृत्तवाले छन्दों को सब के सब कवियों ने छोड़-सा दिया। मात्रिक-छन्दवाली कविता में प्रस्तुत आकर्षण के कारण कई कवि उससे लगे रहे हैं - परंतु बहुत ही विरल संख्या में। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी छन्द में संगीत-मूलकता को महत्व देते हुए उसके मूल में गति-लय का कारण दर्शाते हैं जिससे उनके समय में कवि लोग छन्दोबद्ध कविता लिखने की ओर अपना झुकाव रखते थे। वे छन्द को केवल मीटर नहीं मानते। इस अवसर पर आप नई कविता के लेखकों की छन्द से विमुखता का कारण भी यों स्पष्ट करते हैं -

'क्षणों में जीनेवाले लोगों के पास इतना समय नहीं बचा कि वे घंटों तक मात्रायें मिलाएँ और लम्बी कविताएँ लिखें, अतः बौद्धिकता के आग्रह को नये कवि मान बैठे कि परम्परागत अनुर्वर और कुंठित माध्यम से नयी ताजी अनुभूतियों को व्यक्त नहीं किया जा सकता। अतः छन्द के रचनाविधान पर पुनर्विचार की आवश्यकता आ पड़ी, छन्द से तात्पर्य उस 'रिद्म' से लिया जाने लगा जो सर्वत्र प्रकाशित है; छन्द केवल मीटर नहीं माना गया' [16]

16) कविता और छन्दोबद्धता (डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी) धर्मयुग, मई-3, 1964

यहाँ इन पंक्तियों में विद्वान आचार्म छन्द के सम्बन्ध में अपने से अधिक नये कवियों के विचारों का अनुमान लगाकर व्यक्त करते हैं। यों तो डॉ. द्विवेदी प्रगतिशील विचार रखनेवाले सहृदय परम्परावादी हैं। उनका अपना विश्वास है कि छंदोबद्ध कविता में गति का सौन्दर्य उसे मोहक बना देता है। अपने इस विचार को वे इसके पूर्व के अपने प्रकाशित दीर्घ-निबंन्ध में व्यक्त कर भी चुके थे-

'छन्द के भीतर की गति ही प्रसादक और मोहक बनाती हैं' [17]

आज भी छन्दोबद्ध कविता-रचना में रुचि रखनेवाले लेखक हैं और उनका आस्वादन करनेवाले पाठक तो हैं ही। पाठकों में सदा विभिन्न रुचिवाले होते ही हैं, अन्यथा प्राचीन काव्यों का पारायण करनेवाले अथवा पढ़कर आस्वादन करनेवालों के बारे में क्या कहा जाना चाहिये? जहाँ तक लिखनेवालों की बात है, उनकी संख्या अवश्य कम ही रहेगी क्योंकि एक तो उनके पास, जैसे कि द्विवेदी महोदय कहते हैं, समय का अभाव है और उन्हें पठकों के समयाभाव का स्मरण है। लघु कविताओं ने यदि प्रबंध काव्यों और खंड-काव्यों का स्थान ले लिया, तो स्वच्छन्द कविता ने छन्दोबद्ध कविता का स्थान ले लिया है। इससे लेखकों का एक तो समय भी बच जाता है और ज्यादा बुद्धि लड़ाने का श्रम भी नहीं करना पडता; इसी कारण से आज कवियों की संख्या इतनी बढ़ गयी है, फिर पाठकों के समय की बचत के साथ-साथ कथ्य को आसानी से समझने की सुविधा भी हो जाती है। रही सौंदर्य की बात, साहित्य की प्रत्येक विधा में सौंदर्य का गुम्फन प्रतिभावान लेखक को सदा ही सुगम होता है। नयी कविता और दिगंबर कविता इसके प्रमाण हैं।

नई कविता के अग्रदूत अज्ञेय भी मानों एक दूसरे प्रकार से इन पंक्तियों में श्री निराला के ही विचारों को दुहराते हैं --

छन्द है वह फूल, पत्ती प्रास।
सभी कुछ में है नियम की साँस ।
कौन-सा वह अर्थ जिसकी अलंकृति कर नहीं सकती,
यही पैरों तले की घास?
समर्पण लय कर्म, है संगीत

17) *साहित्य का मर्म (डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी)* पृ.-17

टेक करुणा सजग मानवप्रीति।
यति न खोजो अहं ही यति है स्वयं रणरहित होते
रहो, मेरे गीत । [18]

निराला जी के कथन से यद्यपि यहाँ कुछ अधिक नहीं है, दो सम्पूरक बातों का श्री अज्ञेम ने उक्त पंक्तियों में प्रतिपादन किया है- करुणा और मानव-प्रेम का; परंतु श्री निरालाजी इन दोनों तत्वों की साकर; मूर्ति थे और प्रायोगिक रूप से न केवल अपने कविता-कर्म में, बल्कि निजी जीवन में भी उन्होंने दिखाया था।

श्री अज्ञेय के उपर्युक्त उद्धरण में विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि आप कविता केलिये इसके पूर्व आवश्यक मानी जानेवाली यावत सामग्री को एकदम नहीं ठुकरा देते, न उसमें किसी अंश को अनावश्यक बताते हैं, किंतु दूसरे विषयों की उनके स्थान पर बिठाना चाहते हैं - समर्पण, कर्म, करुणा और मानव-प्रीति इत्यादि को लय, संगीत, टेक, यति इत्यादि के स्थान पर रखते हैं।

श्री गिरिजाकुमार माथुर एक पग आगे बढ़कर यह घोषित करते हैं कि कविता की आन्तरिक आत्मा केलिये बाह्य शृंखलाएँ तोड़ देनी चाहियें। अनुप्रासात्मक नाद आपके विचार में ह्रासोन्मुखता का परिचायक है। यहँ अनुप्रास से आपका आशय अन्त्यानुप्रास से है और अन्त्यानुप्रास छन्दोबद्धता का प्रतीक है। आप कहते हैं -- 'अनुप्रासात्मक नाद ह्रासोन्मुखता का परिचायक होता है। वस्तुतः वह कविता की आन्तरिक आत्मा का नाद होता ही नहीं बाह्य शृंखलाओं की जड़-आवृत्तियों का शिंजन मात्र होता है।' [19]

ध्यान देने की बात यह है कि उक्त दोनों अवतरण स्वयं नये कवियों के हैं। जो छन्द के बन्धन को तोड़ देना चाहता है वह कोई-न-कोई कारण दर्शाता है। श्री निराला जी की आवाज़ ने कई कवियों के मर्म को स्पर्श किया तो था, परन्तु गति-लय (Rythm) से रास आने को कोई तैयार नहीं था। खुद निराला जी की 'भिक्षुक, विधवा वह तोड़ती पन्यर तुम और मैं, राम की शक्तिपूजा' जैसी कविताओं में गति-लय सम्बन्धी माधुर्य हमें चखने को मिल जाता है। यह उनकी काव्य-प्रतिभा का प्रतिफलन है। सुस्ती हठ और नवीनता के नाम पर बाँकापन-इ-

18) हरी धास पर क्षण भर, श्री अज्ञेय, पृ.-67
19) नयी कविता: सीमाएँ और सम्भावनाएँ (श्री गिरिजा कुमार माथुर) पृ. 28-29

हीं के कारण नयी कविता के अधिक-संख्यक कवि गद्यात्मक-रूप में कविता करने लगे। तब तो वे सीधे में ही अपने विचारों को व्यक्त कर सकते थे। दिगंबर कवियों में तो सब के सब ऐसे हैं जो केवल वक्र-उक्ति के वैचित्र्य का सहारा लेकर अपनी गद्य-कृतियों को कविता की कोटि में अंकित घोषित करते हैं। उनके समर्थक विद्वानों में कुछ इतने श्रद्धालु हैं जो इनकी कविता के स्वरूप को एक नयी विधा बताते हैं जिसे Proetry कहा जा सकता है। पूर्वार्द्ध Pro गद्य का संकेतक है तो उत्तरार्द्ध etry कविता का। इस प्रकार सार-कथन में इन्हें गद्यात्मक अथवा गद्याकृति कविता कहना हुआ और नया कुछ भी हाथ नहीं लगा। छन्दोमुक्तता का आग्रह करनेवाले श्री अज्ञेय के इस कवितांश को देखें-

मैं खड़ा खोले सभी कटिबन्ध पिंगल के,
मुक्त मेरे छन्द, भाषा मुक्ततर, है मुक्ततम मम भाव पागल के।
ज्ञेय हो, दुर्जेय हो, अज्ञेय निश्चल हो,
अर्थ के अभिलाषियों से सतत निर्भय हो
असुर, दुर्दम, दैत्य-कवि तेरी सदा जय हो [20]

इस अंश में कविता केलिये आवश्यक छन्द, भाषा, भाव आदि पिंगल शास्त्र के नियमों के अपने द्वारा उल्लंघन की श्री अज्ञेय द्वारा बात यद्यपि की जाती है, उसमें स्थित गति-लय की झलक सुग्राह्य ही है।

श्री धर्मवीर भारती गति एवं लय को कितना बहुमान देते हैं, यह ध्यान देने की बात है--

कल्पना उदासिनी
ने मलीन छोर से अश्रु-बूँद पोंछकर कहा कि मैं गुलाम हूँ
स्वतन्त्र रश्मि पर पली
स्वतंत्र वायु में चली
मगर सदा यही दरद रहा कि मैं गुलाम हूँ।
गुलाम कल्पना कभी न जोत बन निखर सकी
न प्यास की पुकार पर ओर बन उतर सकी [21]

गद्यात्मकता के बदले में छन्द को गत्यात्मकता में आबद्ध करनेवाले कवियों में श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी एक हैं। 'मैं बिन्दु' वाली आपकी कविता का निम्नलिखित अंश उक्त कथन की अवश्य ही समर्थक कविता होगी-

20) अ (सं : श्री अज्ञेय) जयतु हे कंटक चिरन्तन पृ.-285
21) आ कवि और कल्पना (श्री धर्मवीर भारती) पृ.-182

बिंदु हूँ मैं
मात्र केंद्राभास : वह जो
हर असीम ससीम का
हर रूप हर आकार का विस्तार, प्रणाधार,
फिर भी चिर अरूप, अमाप
अपनी मुक्ति में सन्नद्ध [22]

तेलुगु के दिगंबर कवियों की छन्द-विधान-सम्बन्धी चर्चा बिलकुल नहीं रहेगी क्योंकि छहों कवियों ने अपने तीनों संकलनों के वक्तव्यों में यह घोषणा कर दी थी कि आप 'छन्द के विरोधी हैं और गद्य में ही लिखेंगे; क्योंकि कविता में जनता की, अथत् बोलचाल की भाषा का रूप अपनाना होगा'। अतः सारी की सारी दिगंबर कविता गद्यात्मक है। फिर भी कहीं कहीं हमें छन्दोबद्धता नज़र आ ही जाती है जो अयत्नसाधित समझी जानी चाहिये; इसी प्रकार गति-लय से भी मानों इन्हें पूरा विरोध है क्योंकि बोलचाल की भाषा में इनको अमल में नहीं किया जाता, कहीं गति-लय की झलक इनकी कविता में देखें तो उसे भी अयत्नसाधित समझना चाहिये। सछन्दता एवं गति-लय के संदर्भ अत्यन्त विरल हैं। यहाँ पर दोनों को स्पष्ट करने केलिए एक-एक उदाहरण अंकित किया जाता है-

नित्य जीवन में नैतिक पतन
नित्य सत्य-सा चला रहे हैं।
हम सब जगन्नाटक-सूत्रधारी हैं
हम सब बृहन्नाटक-पात्रधारी हैं

लेकिन फिलहाल मात्सर्य
एवं छल के अधिपति हैं [23]

स्पष्ट है कि छन्दोबद्धता के इस उदाहरण की पंक्तियों की तीनों जोडियाँ समान संख्यक मात्राओं में चलती हैं। प्रथम जोड़ी की हर पंक्ति में 16 मात्राएँ, दूसरी की हर पंक्ति में 20 मात्राएँ और तीसरी की एक-एक पंक्ति में 14 मात्राएँ पायी जाती हैं। परंतु यह मात्रिक छन्द नहीं है। इस अंश में मात्राओं की अपेक्षा गति ही अधिक प्रधान है।

22) इ मैं बिंदु (श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी पृ.-67
23) दि, अवलोकन (श्री ज्वालामुखी) पृ.-29

गति-लय-सहित मात्रा-बद्ध कविता की छन्द-छटा श्री चेरबंडराजु में यत्र-तत्र लक्षित होती है--

जनता के
वास्ते हँस
ते फाँसी
पर मरने
के पीड़ित--
पक्षपात
से बढ़िया
क्या होगा? [24]

श्री महास्वप्न की 'ग्लानिर्भवति भारत' नामक कविता में, एक एक पंक्ति के अंत पर विराम-युक्त गत्यात्मक सौंदर्य की झलक मिलती है जो इस प्रकार है --

कलियुग के रेडियोग्राम में
तेज़ भ्रमित बीसवीं सदीवाले रिकार्ड का पिन हो
मानवता के दोनों नेत्रों के मुँद जाने पर
विस्फारित तीसरा नेत्र हो
काल के वायुलीन [25] पर कमान हो
इतिहास के निद्रासागर पर तूफान हो
मैं दिगंबर कवि आ रहा हूँ [26]

विशुद्ध गद्यात्मकता को ली हुई कविता का उदाहरण देना हो, तो तीनों संकलनों का कोई भी अंश उल्लिखित किया जा सकता है। षष्टिपूर्ति कर लेनेवालों का, विशेषतः समाज-सुधारकों का तीखा व्यंग्य उड़ाते हुए, श्री भैरवय्या कहते हैं--

अरे अरे
षष्टि पूर्ति
साठ साल पूरे होने पर
उस अपूर्व समाज-सुधारक की
षष्टिपूर्ति
चार वर्ष का समय लेकर

24) पल्लनि (श्री चेरबंटराजु) युवतरमा (हे युवा पीढी) पृ.-3
25) Violin से आशय है।
26) दि1 प्रथम संकलन, ग्लानिर्भवति भारत (श्री महास्वप्न) पृ.-24

खुदवाया गया
पानी रहित चरस [27]

वहाँ पर की यीरी की झोंपड़ी
मटियामेट हो गयी-यह दूसरी बात है [28]

कुल मिलाकर नयी कविता और दिगंबर कविता छन्द के बन्धन को ठुकराती गयी हैं और उनका यह कर्म पूर्ण-रूपेण स्वच्छन्द गद्यात्मकता का है। छन्दोबद्धता से स्वच्छन्दता की यह यात्रा अच्छी है अथवा बुरी, इसकी चर्चा यहाँ पर अप्रासंगिक है क्योंकि उसकी गति-विधियों का अध्ययन यहाँ हमारा लक्ष्य है, गुणात्मकता का मूल्यांकन नहीं। दोनों भाषाओं के इन कवियों की रचनाओं में काव्यात्मकता को छन्द-विधान में कभी कहीं आघात नहीं पहुँचा, यह भी ध्यान देने की बात है।

5. **अलंकार-विधान :** अलंकार साहित्य के क्षेत्र में, विशेष रूप से कविता की विधा में, कथ्य की अभिव्यक्ति को पूर्णता, सौंदर्य एवं प्रभाव से भरने का एक सबल साधन है। एक वाक्य में अलंकारों की उपादेयता को स्पष्ट करना हो, तो वे भावों की अभिव्यक्ति के आकर्षण के माध्यम होते हैं।

अलंकार चाहे सादृश्यमूलक हों चाहे विरोधमूलक, वास्तव में दोनों कथ्य की तुलना के साधन मात्र ठहरते हैं। तुलना साम्यवाली होने पर उस साधन को 'साम्यमूलक' अथवा 'सादृश्य मूलक' अलंकार कहते हैं और विषम अथवा 'वैषम्यवाली' होने पर विरोधमूलक अलंकार कहते हैं। यों तो साम्य धनात्मकता का विषय होता है और वैषम्य ऋणात्मकता का, परंतु दोनों ही अवसरों पर उद्दिष्ट विषय तो कथ्य ही है और उसे आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण बनाना अलंकारों का कर्म होता है। इस स्त्री का मुखड़ा चाँद के समान सुंदर है। चाँद जितना सुन्दर है इस स्त्री का मुखड़ा उतना ही भद्दा है -- इन दोनों ही वाक्यों में क्रमशः साम्य-वैषम्य का अन्तर होते हुए भी एक साधारण धर्म है और वह है, परिमाणात्मकता का धर्म। **गुणात्मकता की अवस्थिति सर्वत्र अवश्यंभावी है, किन्तु उसकी भिन्नताओं में भी एक प्रकार की समता लक्षित हो जाती है** जैसे कि ऊपर के उदाहरणों में। सारांश यह कि अलंकारों से रहित कथ्य में आकर्षण का अभाव महसूस होने लगता है। **अलंकाररहित कविता गद्य के स्तर पर गिर जाती है, तो अलंकारयुक्त कविता काव्य का स्तर प्राप्त कर जाती है।**

27) नाम-विशेष
28) दि2 षष्टिपूर्ति (श्री भैरवय्या) पृ.-114

उक्त तथ्य के स्वीकार करनेवाले नये कवियों अथवा दिगंबर कवियोंने अलंकारों के क्षेत्र में भी नवीनता लाने की सोची और इस दिशा में सुयोग्य प्रयास भी किया; यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि विवेच्य दोनों भाषाओं की विवेच्य धाराओं की कविता में धनात्मकता-युक्त अलंकार ही प्राचुर्य में रहे है। बहुतायत से सीधी सरल बोलचाल की भाषा, में आलंकारिकता को कम प्राधान्य देते हुए रचना चलायी, तो दिगंबर कवियों ने बोलचाल की गद्यात्मक भाषा में उक्ति में वक्रता का गुंफन भी करते हुए सादृश्यमूलक अलंकारों से अधिकतर काम लिया है। दोनों कवियों ने उपमा से कथ्य को अधिकाधिक वाणी देने की चेष्टा की है।

गिरिजाकुमार माथुर वक्रता-युक्त शैली में विरोधपूर्ण कथन का किस प्रकार आविष्कार करते हैं, देखें --

मैं शुरू हुआ मिटने की सीमा-रेखा पर,
रोने में था आरम्भ किंतु गीतों में मेरा अंत हुआ
मैं एक पूर्णता के पथ का कच्चा निशान
अपनी अपूर्णता में पूरन,
मैं एक अधूरी कथा
कला का मरण गीत, रोने आया [29]

मिटती रेखा पर उद्भव, गीतों के अंत में रोने का प्रारम्भ, अपूर्णता में पूर्णता.. इत्यादि वक्रोक्ति, विरोध एवं विरोधाभास के एकदम एक-साथ उदाहरण हैं जिनसे कथ्य में आकर्षणपूर्ण सौंदर्य का आविर्भाव हो पाया है। इसकी तुलना में श्री ज्वालामुखी की इन पंक्तियों का अवलोकन किया जा सकता है --

चालूबाज सभ्यता को नंगा बनाकर
नव मधु में सूर्यस्नान कराके
न्यूयार्क नगर वेदी पर नीग्रो योद्धा के साथ
न्यूड़-ट्विस्ट-तांडव करने की मेरी तीव्र लालसा है। [30]

स्पष्ट ही वर्तमान सभ्यता से लेखक की खीज इन शब्दों में व्यक्त है जिस भाव को वक्रता के साथ वे अलंकारहीन आलंकारिकता में बिठाते हैं। यहाँ मधु से आपका आशय शराब है और आधुनिक सभ्यता को शराबखोरी, बेशर्म और रंड़ीबाजी के समतुल्य कहना चाहते हैं। इसमें

29) अ. अधूरा गीत, (गिरिजाकुमार माथुर) पृ.-184
30) दि, सूर्यस्नान (श्री ज्वालामुखी) पृ.-10

रेस्टारेंटों-थियेटरों के काबरे (Kabare) नृत्य की ओर भी संकेत है जो भारत जैसे संस्कृति-संपन्न देशों में भी प्रवेश कर चुका है।

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध का यह विरोध-मूलक रूपक कैसा निराला है, यह देखने योग्य है --

यह उत्साह सफ़ेद ज्वाल है
जो कि कलुष का महाकाल है,
इसमें पड़कर तुम भी खेत बनोगे,[31]

उत्साह-रूपी कल्मष में तपकर सफ़ेद बनना विरोधाभास है क्योंकि उत्साह में निरंतर कर्म करके किसी भी विषय में साफल्य के यश या शुद्धि की प्राप्ति संभव है। इसमें सृजन- क्षण का सम्बोधन है।

कहीं कहीं श्लेष, रूपक इत्यादि के कुछ उदाहरण परम्परागत भी मिलते हैं और नवीन भी, यथा--

(रूपक) स्नेह का सिन्धु (**अ.** प्रत्यावर्तन, श्री भारत भूषण अग्रवाल), पृ.-100

(") आभा का क्षुद्र बिन्दु--वही--

(") तारों का जाल **आ** (पूर्णमासी रात भर, सुश्री शकुन्तला माथुर) पृ.-44

(श्लेष) अर्थहीन है भाव (अर्थरहित, अनुत्पादक)
आ. (स्वतंत्रता दिवस पर, श्री शमशेर बहादूर सिंह) पृ.-108

(मानवीकरण) विजन घाटियों पर अब भी तम सोया होगा, फैला कर पद **आ.** (उषस, श्री नरेश कुमार मेहता) पृ.-129
घाटियों के जनहीन आवरण पर गाढ़े अन्धकार के फैलाव का यह मानवीकृत वर्णन छायावादी शैली का होकर भी बड़ा आकर्षक है।

(रूपक) स्वच्छ अन्धकार का जल **आ.** (मुँह अँधेरे, श्री रघुवीर सहप्य) पृ.-169

(रूपक) एक नहीं कितने ही कौंच-युग्म- भावों के, साधों के
इ.) (तुम्हीं ने बटायी थी, सुश्री कीर्ति चौधरी) पृ.-118

(रूपक) कानून की दरार में से तुमने गोली चलायी अपने फाईलों के जंगल में से ले जाकर (**इ.** सरकारी कारखाने में कर्मचारी की चिन्ता) श्री मदन वात्सायन)पृ.-175

(रूपक) अफसरों से भरा सरकारी कारखाना बबूल का वन है-- वही पृ.-177

तेलुगु के दिगंबर कवियों ने वक्रोक्ति वैदग्ध्य और उपमा का अधिकाधिक सहारा लिया है। तद्भिन्न अलंकार बहुत विरल संख्या में मिलते

---

31) अ. सृजन-क्षण (श्री गजानन माधव मुक्तिबोध) पृ.-28

हैं और जहाँ कहीं भी मिलते हैं, वे बहुत ही आकर्षक लगते हैं-

(रूपक) इस सदी का **कांगो दारुण व्रण** (सूर्यस्नान), श्री ज्वाला मुखी) पृ.-9

(रूपक)पिल्लू-भाव (**दि1** दिगंबरी, श्री भैरवय्या) पृ.-16

(रूपक) परिवारों के गोपुरों में विहार करनेवाले कबूतरों... **दि1** (मुझे कठघरे में चढ़ने दिजिये), श्री चेरबंडराजु-पृ.-18

(") स्नेह सूर्य (**दि1**, सुखरोगी श्री नग्न मुनि) पृ.-25

स्मरण की नव्यता तुम्हारे मुखडे पर निरन्तर धुआँ फैलाकर कोयले की खानें स्मरण आती हैं (**दि1** कब नहीं रोये? श्री निखिलेश्वर) पृ.-26

(विरोध) निरी रंडी पतिव्रता बन उगी,**द1** नीरव निखिलेश्वर, निखिलेश्वर पृ.-44

(रूपक) डिप्लोमसी की कालिख-हड्डियों की चीखें, भैरवय्या पृ.54

(रूपक) आचारों के मूढ़ इत्र की महकें (वही, पृ.-54)

(") कवि-सुअर (**दि2.** कास्मिक जाति के वास्ते, श्री नग्नमुनि) पृ.-71

(") अगाधमी रूपी अनाथ शरणालय -वही-

(") राजनीति (राजनीतिज्ञ से आशय है) रूपी ढोर **द2** किलकिंचित, श्री ज्वालामुखी पृठ-78

" सत्य रूपी शिशु -- वही --

" वाद-रूपी शीशे की सुराहियाँ -- वही --

" चाँदनी रूपी थूक (**दि2**) (अपने मानव संसार में, श्री चेरबंडराजु) पृ.-112

" आशय रूपी सूर्य (**दि2**, जा जा, श्री चेरबंडराजु) पृ.-122

" सपनों की लहरें (**दि3** मैं ही आपकी साँस हूँ, श्री चेरबंड राजु) पृ.-157

" काफी-ओयासिस (**दि3** जाँघ की टूट, श्री नग्नमुनि पृ.-162

" यन्त्र रुपी मानव (**दि3** शव और खटमल, श्री निखिलेश्वर), पृ.-167

(रूपक) घर रूपी गड्ढे से दफ्तर रूपी कब्र में (**दि3** बुद्धक्षमा, श्री नग्नमुनि) पृ.-184

6. उपमा की नवीनता : स्पष्ट ही नये कवि और दिगंबर कवियों ने रूपक को बडा महत्वपूर्ण पाया जिससे भावाभिव्यंजन में उन्हें अधिकाधिक सफ़लता मिल सके। कहीं-कहीं विरोध, अतिशयोक्ति जैसे अलंकारों की छटा भी मिलती है, परंतु इन दोनों कवियों की काव्य-प्रतिभा

रेस्टारेंटों-थियेटरों के काबरे (Kabare) नृत्य की ओर भी संकेत है जो भारत जैसे संस्कृति-संपन्न देशों में भी प्रवेश कर चुका है।

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध का यह विरोध-मूलक रूपक कैसा निराला है, यह देखने योग्य है --

यह उत्साह सफ़ेद ज्वाल है
जो कि कलुष का महाकाल है,
इसमें पड़कर तुम भी खेत बनोगे,[31]

उत्साह-रूपी कल्मष में तपकर सफ़ेद बनना विरोधाभास है क्योंकि उत्साह में निरंतर कर्म करके किसी भी विषय में साफल्य के यश या शुद्धि की प्राप्ति संभव है। इसमें सृजन- क्षण का सम्बोधन है।

कहीं कहीं श्लेष, रूपक इत्यादि के कुछ उदाहरण परम्परागत भी मिलते हैं और नवीन भी, यथा--

(रूपक) स्नेह का सिन्धु (**अ.** प्रत्यावर्तन, श्री भारत भूषण अग्रवाल), पृ.-100

(") आभा का क्षुद्र बिन्दु--वही--

(") तारों का जाल **आ** (पूर्णमासी रात भर, सुश्री शकुन्तला माथुर) पृ.-44

(श्लेष) अर्थहीन है भाव (अर्थरहित, अनुत्पादक)
आ. (स्वतंत्रता दिवस पर, श्री शमशेर बहादूर सिंह) पृ.-108

(मानवीकरण) विजन घाटियों पर अब भी तम सोया होगा, फैला कर पद **आ.** (उषस, श्री नरेश कुमार मेहता) पृ.-129
घाटियों के जनहीन आवरण पर गाढ़े अन्धकार के फैलाव का यह मानवीकृत वर्णन छायावादी शैली का होकर भी बड़ा आकर्षक है।

(रूपक) स्वच्छ अन्धकार का जल **आ.** (मुँह अँधेरे, श्री रघुवीर सहप्य) पृ.-169

(रूपक) एक नहीं कितने ही कौंच-युग्म- भावों के, साधों के
इ.) (तुम्हीं ने बतायी थी, सुश्री कीर्ति चौधरी) पृ.-118

(रूपक) कानून की दरार में से तुमने गोली चलायी अपने फाईलों के जंगल में से ले जाकर (**इ.** सरकारी कारखाने में कर्मचारी की चिन्ता) श्री मदन वात्सायन)पृ.-175

(रूपक) अफसरों से भरा सरकारी कारखाना बबूल का वन है-- वही पृ.-177

तेलुगु के दिगंबर कवियों ने वक्रोक्ति वैदग्ध्य और उपमा का अधिकाधिक सहारा लिया है। तद्भिन्न अलंकार बहुत विरल संख्या में मिलते

31) अ. सृजन-क्षण (श्री गजानन माधव मुक्तिबोध) पृ.-28

हैं और जहाँ कहीं भी मिलते हैं, वे बहुत ही आकर्षक लगते हैं-

(रूपक) इस सदी का **कांगो दारुण व्रण** (सूर्यस्नान), श्री ज्वाला मुखी) पृ.-9

(रूपक)पिल्लू-भाव (**दि1** दिगंबरी, श्री भैरवय्या) पृ.-16

(रूपक) परिवारों के गोपुरों में विहार करनेवाले कबूतरों... **दि1** (मुझे कठघरे में चढ़ने दिजिये), श्री चेरबंडराजु-पृ.-18

(") स्नेह सूर्य (**दि1**, सुखरोगी श्री नग्न मुनि) पृ.-25

स्मरण की नव्यता तुम्हारे मुखडे पर निरन्तर धुआँ फैलाकर कोयले की खानें स्मरण आती हैं (**दि1** कब नहीं रोये? श्री निखिलेश्वर) पृ.-26

(विरोध) निरी रंडी पतिव्रता बन उगी,**द1** नीरव निखिलेश्वर, निखिलेश्वर पृ.-44

(रूपक) डिप्लोमसी की कालिख-हड्डियों की चीखें, भैरवय्या पृ.54

(रूपक) आचारों के मूढ़ इत्र की महकें (वही, पृ.-54)

(") कवि-सुअर (**दि2**. कास्मिक जाति के वास्ते, श्री नग्नमुनि) पृ.-71

(") अगाधमी रूपी अनाथ शरणालय -वही-

(") राजनीति (राजनीतिज्ञ से आशय है) रूपी ढोर **द2** किलकिंचित, श्री ज्वालामुखी पृठ-78

" सत्य रूपी शिशु -- वही --

" वाद-रूपी शीशे की सुराहियाँ -- वही --

" चाँदनी रूपी थूक (**दि2**) (अपने मानव संसार में, श्री चेरबंडराजु) पृ.-112

" आशय रूपी सूर्य (**दि2**, जा जा, श्री चेरबंडराजु) पृ.-122

" सपनों की लहरें (**दि3** मैं ही आपकी साँस हूँ, श्री चेरबंड राजु) पृ.-157

" काफी-ओयासिस (**दि3** जाँघ की टूट, श्री नग्नमुनि पृ.-162

" यन्त्र रुपी मानव (**दि3** शव और खटमल, श्री निखिलेश्वर), पृ.-167

(रूपक) घर रूपी गड्ढे से दफ्तर रूपी कब्र में (**दि3** बुद्धक्षमा, श्री नग्नमुनि) पृ.-184

6. उपमा की नवीनता : स्पष्ट ही नये कवि और दिगंबर कवियों ने रूपक को बडा महत्वपूर्ण पाया जिससे भावाभिव्यंजन में उन्हें अधिकाधिक सफ़लता मिल सके। कहीं-कहीं विरोध, अतिशयोक्ति जैसे अलंकारों की छटा भी मिलती है, परंतु इन दोनों कवियों की काव्य-प्रतिभा

उपमा की नवीनता में पायी जाती है। दोनों भाषाओं की उद्दिष्ट रचनाओं में से चन्द उदाहरण देखेंगे-

भूमि के कम्पित, उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इंद्र का नील वक्ष
(अ. सावन मेघ, श्री अज्ञेय), पृ.-276

अमूर्तता ली हुई यह उपमा बड़ी ही प्रौढ़ है जो दूर की सूझ-सी लगती है; फिर भी इसमें काव्यात्मक आकर्षण पूरा भरा हुआ है। पृथ्वी के वृक्षों पर, आकाश के मेघों की कालिमा छा गयी है, हवा चल रही है-इसे कहने की यह अमूर्त उपमा बड़ी ही सुन्दर है। इसमें दृश्य की रमणीय चित्रात्मकता छिपी हुई है।

छायावादी शैली की इन पंक्तियों की अमूर्तता की आकर्षकता अवश्य द्रष्टव्य है-

जीवन में फिर लौटी मिठास है
गीत की आखिरी मीठी लकीर-सी
आज हैं केसर रंगे रँग वन, (इ. श्री गिरिजाकुमार माथुर) पृ.-171
दो खड़े लालटेन-से नयन दीन(अ. विहार,श्री गजानन मुक्तिबोध)पृ.-24
यह तिमिर-सी शाल अ. जागते रहो, भारतभूषण अग्रवाल, पृ.-105
(मूर्त की यह अमूर्त उपमा कैसी सुन्दर है)
कल्पना-प्रिय युवक कवि-सी सहज निष्प्रभ
खडी हैं वैभव विहीन पहाड़ियाँ (अ. डूबती संध्या, नेमिचंद्र जैन) पृ.-57

यद्यपि इसमें कवि से पहाडियों की उपमा मूर्त से तुलना में आयोजित है, किंतु पहाडियों में वैभव-विहीनता की युवक कवि की कल्पना-प्रियता से तुलना उद्दिष्ट है, यों अमूर्त की यहाँ पर अमूर्त की तुलना है जो अपने में नयी व निराली है

गेहूँ के मोती-से दाने जो पसीने से उगाये..... अ. (गेहूँ की सोच, प्रभाकर माचवे) पृ.-138

यहाँ गेहूँ के दानों का मोती के साथ पहले-पहल रूपित कर उसको पसीने की बूँदों से उपमित करना सचमुच कल्पना के सौन्दर्य-स्तर की ऊँचाई है। इसे रूपकोपमा नाम दिया जाय, तो किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

उड़ता रहे चिड़ियों-सरीखा वह तुम्हारा श्वेत आँचल (**आ.** चाहता मन श्री नरेश मेहता) पृ.-123

यह उपमा पारम्परिक-सी लगते हुए भी नवीनता लिये हुए है। असंरव्यक श्वेत वर्ण पक्षियों के उड़ते समय उनकी उड़ान की लहरदार गतिशीलता की साड़ी के सफेद आँचल से उपमा-अमूर्तता से मूर्त रूप प्राप्त कर जाती है।

छाया चित्र के एक दृश्य जैसा
चाँद सुबह का होता है उदास (**आ.** मुँह अँधेरे, श्री रघुवीर सहाय)पृ.-169

उपर्युक्त उपमा आधुनिक युग की वैज्ञानिक प्रगति से सम्बद्ध है। चलन-चित्र में बदलते चित्रों के वक्त एक चित्र के फीका पडते ही दूसरे चित्र का दर्शन देने की सूचना तो इसमें है ही; उससे चाँद के डूबने की तुलना आधुनिक विज्ञान के रंग में रंगी है जो बड़ा ही आह्लादपूर्ण है। धर्मवीर भारती की यह उपमा अवश्य दर्शनीय है --

मस्तक इतना खाली-खाली
लगता जैसे
हो कोई सड़ा हुआ नारियल,
छूती है ओंठ
कि लगता ज्यों
वाणी इतनी खोखली हुई
ज्यों बच्चों की गिलबिल गिलबिल (**आ.** जाड़े की शाम, श्री धर्मवीर भारती) पृ.-197

शाम के वर्णन के अवसर पर एक तो मस्तक को खाली नारियल से उपमित किया गया है, दूसरे शाम के वक्त की आवाज़ की उत्पेक्षा द्वारा बच्चे की गिलबिल से तुलना की गयी है।

इसी प्रकार सुश्री कीर्ति चौधरी की उपमाएँ भी नवीनता लिये हुए हैं। आप अपनी आत्मा की उपमा कछुए-से करती हैं जिससे यह द्योतित हो जाता है कि अपने अन्तस के भावों को आप प्रकट न कर अन्तरोन्मुखी चित्तवृत्ति रखती हैं--

यह कछुए-सी मेरी आत्मा (**इ.** प्रस्तुत, सुश्री कीर्ति चौधरी)पृ.-96

मदन वात्सायन की उपमाएँ भी कम नयापन नहीं रखतीं--

मेरे हाथ में जुए की एक और बाजी की तरह,
उषे तुम फिर आ गयी हो (**इ.** उषा स्तवन, श्री मदन वात्सायन)

पृ.–141 (मेरे हाथ में एक बार और ताश के पत्तों की तरह, उषे, तुम फिर आ गयी हो। --- वही ---

दिवास्वप्नों-सी तुम निरंतर मधुर हो -- वही पृ.–142

मुझे पूरब की डायन से मुहब्बत है (लुप्तोपमा) –वही– पृ.–143

नये दूल्हे–सा सूरज, नव–वधू–सा

पीछे पीछे यह शुक्रतारा जा रहा है-- (इ. शुक्रतारा, मदन वात्सायन) पृ.–146

इंजन के हेडलाइट–सा, शोरगुल के बीच सूरज निकल गया

(गाड़ी की रोशनी–सा पीछे–पीछे गुमसुम अब शुक्रतारा जा रहा है–वही–) पृ.–146

दूरी में बैलगाड़ी की लालटेन–सा यह शुक्रतारा जा रहा है

वही–पृ.–146

जनता से एम.एल.ए.सा पीछे पीछे यह शुक्रतारा जा रहा है– वही– पृ.–146

उपमेय की विभिन्न–रूप यह उपमान–माला निस्सन्देह बड़ा मनोहर है। अभी–अभी निकल आनेवाले दाँतों से शिशु के हँसने का यह वर्णन उल्लेखनीय है–

सप्तर्षि जैसे तेरे सातों दाँतों का हँसना मधुर है। **इ.** (स्वस्ति मेरी बेटी, श्री मदन वात्सायन) पृ.–154

शिशु हाथों की सूँड जैसे चंचल हाथोंवाली मेरी लक्ष्मी (वही) पृ.–155

चितकबरी नागिन–सी

भाग रही शीत रात **इ.** (जाडों की एक सुबह, श्री कुँवर नारायण) पृ.–260

तीव्र गति से सरकती जानेवाली छींटेदार नागिन के समान शीतकाल की रात्रि गुजर खिसक रही है। स्पष्ट है कि यह प्रात:कालीन सन्ध्या का वर्णन है जब सुबह के दृश्य अस्पष्टता में से स्पष्टता में और खंडरूप से अखंड रूप में बदलते जाते है। इसकी व्यंजना अमूर्त होकर भी मूर्त रूप से बड़े ही कौशल के साथ हुई है।

अन्ततः श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की यह विशेष उपमा परखी जाय-

मान मेरा
स्मृति के कब्जे पर
कसे हुए खिड़की के पल्ले-सा
खुलता, बन्द होता रहा-
इ. ('रात भर' श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) पृ.379

चंचल मन की खुलते बन्द होते पल्ले से उपमा नवीन इसलिए है कि वह विचारोत्तेजक है। कसने पर भी खिड़की के पल्ले-सा मन खुलता- बन्द होता रहता है, यह कवि की विवशता का एक तरफ़ और मानव-मन के सहज स्वभाव का दूसरी तरफ़ एक साथ संकेत देता है।

दिगम्बर कवियों की उपमाएँ अधिक रूप से परम्परा-विरोधी हैं, बीभत्सपूर्ण हैं और ऋणात्मक भाव को उभाड़नेवाली हैं। एक प्रकार से उनकी उपमाओं में विद्रोहात्मकता झलकती है जब कि नये कवियों की उपमाएँ धनात्मक हैं। यह बात निम्नांकित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती हैं-

'जीन वाल जीन की भूख की ज्वाला के समान,
बड़ा होकर काम आया बेटा
यम के अधीन होने पर
छटपटाती विधवा माँ के गर्भ-शोक के समान
दि1 (दिगंबरी, श्री भैरवय्या) पृ.-14

पहली उपमा का रसास्वादन तभी किया जा सकता है जब कि पाठक को इसका ज्ञान हो कि विक्टर ह्यूगो के 'ले मिज़रब्ले' (Les Miserables) नामक उपन्यास का नायक जीन वाल जीन है जिसे भूख के मारे एक रोटी की चोरी पर 19 वर्ष का कारावास भुगतना पडता है, दूसरी उपमा सामान्य है जिसकी आवश्यकता, लेखक को इसीलिये महसूस हई कि पाठक में उस अववोध का उसे संशय है।

(मानवता कालिख-लगा बरतन ....
(दि1 ...., ग्लानिर्भवति भारत, श्री महास्वत्न,) पृ.-23
आग सरीखा, नंगा हो विकसित होता आया हूँ,
दिल में भभकती आशा-सा आया हूँ
(दि1 'अग्नि प्रवेश,' श्री भैरवय्या) पृ.32
हिरोशिमा की ओढ़नी पहने अणु-रज के-से

(**दि1** 'हड्डियों की चीखें', श्री भैरवय्या) पृ.-53
'तारे अल्यूमिनियम के सिक्कें-से चमकते हैं'
(**दि2** अपने देश में मैं एकाकी हूँ, श्री निखिलेश्वर) पृ. 66
विश्वास की तहों के नीचे खटमल के-से
रीढ़ रहित अंडे के समान
रद्दी के कागज में पतली बनी स्याही के जैसे
(**दि2** 'अपने मानव संसार में, श्री चेरबंडराजु) पृ.-93
कीडों के-से घूम-फिरनेवाले कलाप्रिय व्यक्ति'
(**दि2** 'अपने मानव संसार में श्री चेरबंडराजु) पृ.-112
'गर्भवती स्त्री की दमा के जैसे' 'विलपनेवाली दीनता
(**दि2** सब मृत्यु ही है, श्री चेरबंडराजु) पृ.-126
'तुम्हारे मन पाखाने-सा बना'
(**दि3** हिजडों की कामलीला देख रहा हूँ, श्री नग्न मुनि), पृ.-146

"चाकू की नोक पर हठात् नरमी से कटी उँगली के जैसे मृत्यु ले जा रहा है भौतिक सत्य को (**दि3** 'इस मिट्टी में से, श्री निखिलेश्वर), पृं-155

'जैसे हर मंजिल पर रंडी नयी साड़ी बदलती जाती है' (**दि3** मैं ही आप की साँस हूँ, श्री चेरबंडराजु) पृ. 158

अब तक प्रस्तावित ये उपमाएँ एक तरफ़ रखकर देखें तो, श्री नग्नमुनि की 'ब्रह्मपदार्थ' वाली कविता उपमाओं की माला लगी-सी दिखती है-

'विश्वविद्यालयों के जैसे बोल रहे हो
मंत्री महोदय के लिखना लेकर पढ़ते
निबन्ध के-से लगते हो
अनाधमी के समान
बदबू फेंकती हो

पृथ्वी बूढ़े भगंदर के समान है
पृथ्वी आन्धों के जीवन के समान है
पृथ्वी कवि सामाट के तर्क के समान है
पृथ्वी वचन कविता के आन्दोलन की-सी है

पृथ्वी तेलुगु-चलन-चित्र की-सी है
पृथ्वी आल इंडिया रेडियो के समान है
पृथ्वी बैलवाली सरकार के बराबर है
पृथ्वी सूखी अनसाफ़ गाँड की-सी है
पृथ्वी बिलकुल भारत की ही-सी है

पृथ्वी अमेरिका के राष्ट्र-पति के मुख के जैसे अबोध है
पृथ्वी अमेरिका के राष्ट्र-पति के दिमाग के जैसे अमानुष है

पृथ्वी भगवान के चलते समय उनकी लुंगी में
झूलनेवाले बूढ़े भगंदर की-सी है

(दि$_3$ 'ब्रह्मपदार्थ,' श्री नग्नमुनि) पृ.-177-179

ये ऋणात्मकता से भरी उपमाएँ भी हैं और हैं नीचोपमाएँ भी। परंतु इनकी आकर्षकता का कारण उनकी औचित्यपूर्णता है। समाज की गन्दगी का भंडाफोड़ करने केलिये गन्दी उपमाएँ बड़े काम की रहती हैं; एक ओर ये विचारोत्तेजक भी हैं और राजनीतिक व्यवस्था-मूलक वर्तमान सामाजिक दशा के प्रति पाठक की खीज, कुढ़न एवं कुंठा का समंजन कराने में भी समर्थ हैं।

इन उपमाओं के अलावा कुछ प्रतीक, आरोप और समवांची उपमेयों का भी उपयोग किया गया है जो सदा ही परम्परा-विरोधी रहते हुए भी बहुत ही चित्तमोहक लगते हैं।

'चुप सोयी इस नयी चमेली के नीचे
नूपुर किस के मंद लजीले बज उठते हैं?

(आ. इतनी रात गये, सु श्री शकुंतला माथुर), पृ.-41 ['नूपुर' यहाँ हवा की आवाज का प्रतीक है।]

'किसने कहा कि आयु का एक एक दिन ह्रास करती हो?

चोर तो साँझ है' (इ. 'उषा-स्तवन,' मदन वात्सायन) पृ.-141 (उषा का मानवीकरण)

तेलुगु के ये प्रयोग आकर्षण की अपेक्षा विकृति लिये हुए हैं। चन्द उदाहरण तो आकर्षक अवश्य लगेंगे-

'मानव एक खाली टिन है'
(दि1 'नीरव निखिलेश्वर,' श्री निखिलेश्वर), पृ.-40
'चाँद एक सफ़ेद चमगीदड़ है'
(दि2 अपने देश में मैं एकाकी हूँ, श्री निखिलेश्वर) पृ.-73
'स्नेहरहित हर व्यक्ति एक एक व्दीप है' - वही - पृ.-73
सफ़ेद बँटी माँग में पीप बिखरती रिसती है (दि2 'दल दल,' श्री चेरबंडराजु), पृ.-87

भाल पर गाली का सिन्दूर कानून है (-वही-), पृ.-87

सूक्ति-रूप आलंकारिक सौंदर्य की शोभा भी कहीं कहीं मिलती है। एक दो उदाहरण इस प्रकार हैं-

'पशु का संघर्ष मानव की हार है' ("दि3 'पराजय का विद्रोह', श्री ज्वालामुखी) पृ.-237
'पशु का साहस मानव का आत्मसमर्पण है' -वही- पृ.-237
'पराजय को विद्रोह करना होगा (-वही-) पृ.-238

7. नवीन प्रतीक-योजना : प्रतीकों का उपयोग बड़ा ही पुराना है। प्रतीकों की उपादेयता निर्विवाद है। जो बात खुले तौर पर कहते समय सामाजिक मर्यादा में भंग पड़ने की आशंका होती हो या राजनीतिक कुव्यवस्था को न सहकर जनता को विद्रोह की दिशा में जागृत करने की धुन लगती हो अथवा काव्यात्मक सौन्दर्य भरकर कान्तासम्मित उपदेश द्वारा किसी की चित्तवृत्ति में परिवर्तन लाना अभिलषित समझ पड़े किंवा अन्य क्रिया कलाप उद्दिष्ट हों तो प्रतीकों को अपनाना अनिवार्य हो जाता है। मानव मात्र केलिये प्रतीक ढूँढ लेने की प्रवृत्ति सहजात है। श्री सी.एम.बावरा तो अभिव्यक्ति को सीधे प्रतीकत्व मानते हैं-

'ऐसा लगता है कि मानवता को अपने को अभिव्यक्त करने केलिये प्रतीक खोजना पडा है। वास्तव में अभिव्यक्ति ही प्रतीकत्व है [32]

प्रसादजी की ये चार प्रसिद्ध पंक्तियाँ हिन्दी साहित्य का साधाारण पाठक भी जानता है --

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग - जल का

32) "हेरिटेज आ.फ सिम्बालिजम"(ले. श्री सी.एम.बावरा) पृ.-73

यह व्यर्थ-साँस अब चल चलकर
करती है काम अनिल का [33]

नयी कविता के अवसर पर नवीन प्रतीकों की आवश्यकता पर श्री अज्ञेय जोर देते हैं। आपके विचार में पुराने भावों का निराकरण करते वक्त पुराने प्रतीक काम नहीं आते --

जो जिज्ञासाएँ सनातन हैं, उनका निराकरण करनेवाले प्रतीक भी सनातन हो जाते हैं। [34]

श्री अज्ञेय मानों प्रतीक की नयी कविता में नवीनता दर्शाना चाहते हों, इसकेलिए अपने इसी काव्य-ग्रंथ में कुछ पंक्तियाँ रचते हैं जो नवीन प्रतीक-योजना के साक्षात प्रमाण हैं--

हम निहारते रूप
काँच के पीछे है जिजीविषा [35]
आँसू के अनगिन ताजमहल
(अ. अधूरा गीत, श्री गिरिजा कुमार माथुर) पृ.-185
प्रेम की विफलता का यह परम्परागत, परन्तु नवीकृत प्रतीक है।

इस वन में जहाँ अशुभ ये रोते हैं शृगाल,
निर्मित होंगी जन-सत्ता की नगरी विशाल (अ. कवि श्री रामविलास शर्मा) पृ.-230

'वन' शहर का और 'श्रृगाल' कुव्यवस्था का प्रतीक है
हम घुटने पर, नाश देवता। बैठ तुझे करते हैं वन्दन
मेरे सिर पर एक पैर रख नाप तीन जग तू असीम बन,
(अ. नाशदेवता, श्री गजानन मुक्तिबोध) पृ.-26

बलि चक्रवर्ति के सिर पर वामन के रूप में अवतरित होकर भी यह नव्यतापूर्ण प्रतीक-रूप है।

युनानी मुनि प्लेटो की मुद्रा में बैठे समय सनातन
(आ. समय देवता, नरेश मेहता) पृ.-112
प्लेटो की सोचनेवाली मुद्रा, उनके शिल्य-खंड में सुरक्षित है। समय का मानवीकृत यह रूप ऐतिहासिकता की पृथ्वी पर मूर्तीभूत चित्ताकर्षक रूप है।

---

33) "आँसू" (श्री जयशंकर प्रसाद)
34) आत्मनेपद (ले.श्री अज्ञेय) पृ.-47
35) -- वही -- पृ.-151

जब कलम उठाता हूँ
कोरे कागज पर
लम्बी चोचंवाली एक चिड़िया
बैठी पाता हूँ।
चोच वह खोलती नहीं,
फुदकती बोलती नहीं
हिलती है न डुलती है,
चुपचाप घुलती है
बनाती न नाम है,
करती न काम है,
फिर भी सुबह को
बना देती शाम है [36]

अन्तिम दोनों पंक्तियों पढ़ले, पाठक कुछ भी समझ नहीं पायेगा क्योंकि सारी की सारी कविता प्रतीक-शैली में है। अन्तिम दो पंक्तियों को पढ़कर पाठक सोचने लगता है कि कवि के कथ्य का आशय क्या है। एक प्रकार से इसे हम पहेली की शैली भी कह सकते हैं। यों तो प्रतीक पहेली का ही रूप होता है जिसे पढ़कर हमें सोच-विचार करने की आवश्यकता पढ़ती है। कवि का यहाँ पर अभिप्रेत समय है, इसका पता लगाने केलिये हमारेलिये आधार केवल सुबह के शाम बन जाने की बात है।

तेलुगु के दिगम्बर कवियों की शैली प्रत्यक्ष एवं सीधी है, अतः उनकी कविताओं में प्रतीक-योजना बहुत ही विरल लभ्य होती है।

तुमने आरोहण किया बिगबेन ज्वालामुखी पर्वत पर (**दि1** आत्मयोनि, श्री निखिलेश्वर पृ.7 बिगबेन (ज्वालामुखी पर्वत) वर्तमान भयंकर वैषम्य से भरी सामाजिक (कु) व्यवस्था का प्रतीक है। कब हमारा किस प्रकार जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा हमीं को पता नहीं।

'आधी रात को नीग्रो सखी के आलिगंन में जाँघों की तराइयों में चद्रोदय' (**दि1** दिगंबर नृत्य, श्री नग्नमुनि) पृ.-39 यहाँ नीग्रो सखी भूख है।

(माधाकवल मेधावी, लंगामार्क चलन-चित्र
(**दि2** कास्मिक जाति केलिये, श्री नग्नमुनि, पृ.-71)

'माधाकवलं' भीखमंगों का प्रतीक है और लंगामार्क (अश्लीलता का)

---

36) द्र. (यों ही बस यों ही, श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) पृ.-388

निकम्मे राजनीतिज्ञों का, जो कि पार्टी के अधिष्ठान-वर्ग के कठपुतले हैं, उपहास करनेवाली यह प्रतीक-भाषा कितनी मनमोहक है-

बिल्ली का दिल दिल्ली नगर
वहाँ पहुँचे सियारों और बेईमान कुत्तों को
अपना दम दिखा दूँगा।
(**दि3** इस मिट्टी में से, श्री निखिलेश्वर) पृ.-158

पूर्ण विकसित अथवा अद्यतन अवस्था में इन दोनों भाषाओं की विवेच्य कविता में प्रतीकों का प्रयोग अवरोहण के क्रम में दिखाई देता है। प्रतीकों की योजना चाहे परंपराधारित हो, अथवा परम्पराविरोधी किंवा कपोल-कल्पित, सर्वत्र ही सदा नयापन दर्शन देता है। तेलुगु की दिगंबर कविता परंम्पराविरोधी होने के कारण एक तरह से उन्हें प्रतीक-विरोधी भी कहा जा सकता है जब कि नये कवि प्रतीकों में नयेपन के आकांक्षी हैं, प्रतीकों के पूर्णतः विरोधी नहीं।

8. **बिम्ब योजना एवं रस-नियोजन :** हर प्राणी के मस्तिष्क में विश्व भर का संपूर्ण ज्ञान बाहर से अंदर की ओर संप्राप्त हुआ करता है। स्वयं मस्तिष्क इसका साधक्षन है और द्वार इंद्रियाँ हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने सम्बन्ध में ज्ञान का संचय कर लेना चाहता हो तो उसके बारे में क्या कहा जाय? तब भी यही सिद्धांत अन्वयशील रहता है। एक वाक्य में कहा जाय, तो ज्ञानोपलब्धि का एक मात्र आधार भौतिक वास्तविकता है और उसका साधन केवल मस्तिष्क-रूपी यंत्र है। इस प्रकार संप्राप्त संपूर्ण ज्ञान की अभिव्यक्ति का साधन भी यही मस्तिषक है जिससे निकलकर इंद्रियों के द्वारा यह ज्ञान बहिर्गत होता रहता है। मानव-जगत के विषय में मस्तिष्क एवं इद्रियों द्वारा संचित ज्ञान का एक और साधन भाषा है। साहित्य-रचना द्वारा शाश्वतता को प्राप्त कर जाता है और तब भी एक मात्र साधन भाषा है। यों कहने का आशय यह हुआ कि इंद्रियों द्वारा संचित ज्ञान-राशि प्रतिक्रियाशील मानव मन में भाषा का आश्रय लेकर ठोस रूप पा लेना चाहती है। मन अमूर्त विषयों को भी मूर्त रूप प्रदान करके पाठकों-श्रोताओं के आगे एक साकार चित्र खड़ा करना चाहता है। साहित्य की विशेष विधा-कविता के क्षेत्र में भाव-विभोर कवि का यह कर्म विशिष्टता लिये हुए होता है। नयी कविता और दिगंबर कविता के विषय में प्रगतिवादी कवियों की सी प्रक्रिया नज़र आती है। कृष्णलाल कहते हैं कि इन कवियों ने काव्य में बिम्बविधान, अर्थात् कल्यना के आधार पर नवीन

उपमानों और प्रतीकों की खोज़ के प्रति विशेष आग्रह किया है। नित्य नवीन प्रयोगों और खोजों का दावा तो तारसप्तक की भूमिका में ही कर दिया गया है। अत: उनकी नवीनता के प्रति आग्रहशील प्रवृत्ति बिम्ब पर भी लागू होती है। अब तक के काव्य में व्यापक रूप से प्रयुक्त उपमान उन्हें रूढिबद्ध और अपदस्थ लगते हैं। अत: उन्होंने भौतिक जगत का नये सिरे से विश्लेषण किया और नूतन बिम्ब-ग्रहण को कवि का धर्म माना [37]

बिम्ब-विधान की प्रक्रिया के सम्बन्ध में आप कल्पना, नवीन उपमान और प्रतीकों की भी चर्चा करते हैं। यों तो किसी विषय का उसी रूप में उल्लेख करना साहित्य नहीं कहलाता। जब उसके साथ कल्पना जुडी होती है और सौंदर्य भी घुला-मिला होता है, तभी वह साहित्य की कोटि में बैठता है।

बाह्य जगत की किसी चीज़ या दृश्य को जब हम देखते हैं, तो उसका हमारे मनोपटल पर एक बिंब अंकित हो जाता है, उसी बिंब का लेखक अपनी कविता में प्रत्यंकन करता है जिसकेलिये उसे कल्पना के सहारे अलंकार, प्रतीक इत्यादि का सहारा लेना पडता है। यह बिंब ही कविता में भावाभिव्यक्ति का सब कुछ है। श्री नेमिचन्द्र जैन यही बात इन शब्दों में कहते हैं।---

बिम्ब काव्य का अत्यन्त प्रभावी माध्यम है, प्राणतत्व नहीं है, काव्य का सहकारी मूल्य अवश्य है, प्राथमिक मूल्य नहीं। किंतु उनकी आपत्ति है कि ऐसे काव्य के बारे में क्या कहेंगे, जिसकी बिम्ब-योजना और संरचना में ही उसका प्राण तत्व निहित है। [38]

नगेन्द्र के अनुसार जब कि बिंब काव्य का प्राणाधार है, श्री नेमिचन्द्र जैन उसे प्रभावी माध्यम मानते हुए भी प्राथमिक मूल्य नहीं, सहकारी मूल्य कहते है, साथ ही आपका यह कथन थोड़ा अनोखा लगता है कि बिंब-योजना और संरचना में ही उसका प्राण-तत्व निहित है। ऐसे परस्पर-विरोधी कथनों को बुद्धिमान साहित्यकारों की लेखनी से पाकर थोड़ा खेद होता है। नयी कविता और दिगंबर कविता के सब के सब कवियों ने, श्री नेमिचन्द्र जैन के साथ, बिम्ब-योजना को बहुमूल्य दिया है क्योंकि किसी रचना का रस-नियोजन उसी के साथ जुड़ा होता है। बिम्ब कथ्य

37) नयी कविता, डॉ. कृणलाल) पृ.-153
38) समीक्षा (श्री नगेन्द्र के उत्तर में नेमिचन्द्र जैन) पृ.-49

का होता है और उसकी योजना जितनी ठोस एवं प्रभावक हो, पाठकों को रसास्वादन का अवसर भी उतना ही सुगम होगा। इसी से काव्य के आलोचक अर्वाचीनकाल में किसी रचना की परख करते समय बिम्ब-योजना का विशेष रूप से परीक्षण करते हैं।

नयी कविता में फिर बिंब-योजना की सफ़लता अधिकतर पाँचों इन्द्रियों को प्रचेतना-देनेवाले तत्व में रहती हैं; विशेषकर दृश्य-चित्रात्मकता बिम्ब-योजना का प्राण है जिससे पाठके आगे कथ्य का ठोस रूप प्रत्यक्ष होकर कविता का रसास्वादन सुगम हो जाता है। श्री अज्ञेय की ये दृश्यात्मकता युक्त बिम्ब-योजना देखने लायक है --

यह जो कलम घिसता है
चाकरी करता है पर सरकार को चलाता है
उसकी मैं व्यथा हूँ।

यह जो रद्दी बटोरता है
यह जो पापड़ बेलता है, बीड़ी लपेटता है, बर्क टूटता है,
धौंकनी फूँकता है, कलई गलाता है, रेढ़ी ठेलता है,
चौक लीपता है, बासन माँजता है, ईंटें उछालता है,
रूई धुनता है, गारा सानता है, खटिया बुनता है,
मशक से सड़क सींचता है,
रिक्शा में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है,
जो भी जहाँ भी पिसल है
पर हारता नहीं न मरता है
पीडित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा उसकी मैं कथा हूँ [39]

मानव की कथा संक्षेप में यहाँ पर अंकित है। भिन्न-भिन्न पेशे करनेवाले सब कोई मानव श्रमजीवी हैं, यह उनकी अनन्त कथा है।

कवि के खींचे इस बिम्ब में 'रिक्शा में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है' वाली पंक्ति में मानों इस कविता-दर्पण में बिम्बित एक और प्रतिबिम्ब

---

39) अ. मैं वहाँ हूँ (श्री अज्ञेय) पृ.-306-307

झलक उठता है। घोडे जैसे जानवर पर सवार होकर उसे दौडानेवाले व्यक्ति को भूतदया सिखानेवाला मानव, साक्षात मानव पर ही सवार होता है, यह मानवता के प्रति घोर अपचार है, अपमान है। प्रस्तुत पंक्तियों में आयोजित बिम्ब-विधान की सबलता एवं सफलता निर्विवाद है।

कवि के रूप में अपने आविर्भाव की भूमिका का बिम्ब श्री महास्वप्न यों अंकित करते हैं-

> अनबुझी प्यासवाली जिह्वाओं में
> भूकंपों की भूख की जंभाइयों में
> कामाग्वि-पर्वतों से फूटकर उगलती लावा में
> ------------------------------
> ------------------------------
> यशोकामी, नियंता एवं अहंकारीयों की दुराचारी
> बाहुओं के दुराक्रमणों में
> विभिन्न देशों के गुप्त-रोगपूर्ण फोडों में
> कीडों से भरे गूलरों से
> पृथ्वी वेश्या बन पतित एवं भ्रष्ट हो जब
> सड़कर बदबू फेंकती है,
> तब मैं दिगंबर कवि पैदा हो जाता हूँ [40]

यहाँ पर दिगंबर कवि के रूप में श्री महास्वप्न के आविर्भाव की बात नहीं, समाज की विषमता का नग्न दृश्य-बिम्ब खड़ा करना उद्देश्य है पृाथ्वी की जिह्वाएँ जिनकी प्यास बुझती नहीं है, उसकी भूख के भूकंप उसकी कामवासना की अग्नि का लावा उसपर यश केलिये एकाधिकार स्थापित करने केलिए अहंकार के साथ दुराक्रमण करनेवाले देश के अन्दर व बाहर के आतताइयों के गुप्त रोगों के उदंबरों से भरी फोडोंवाली पतित, भ्रष्ट वेश्या पृथ्वी का सड़कर-दुर्गन्ध बिखेरना-यह सब मानव में निहित अतृप्त कामनाओं व उससे जन्य उसकी अत्याचार-प्रवृति की भड़क का संकेत है। प्रकृति के इन सभी उत्पातों का बिम्ब हमारे मन पर एक तरफ़ अंकित होता जाता है और साथ ही साथ दूसरी तरफ मानव. जीवन की अवांछनीय, परन्तु वास्तविक स्थिति का भी चित्र खड़ा हो जाता है। बिम्ब-योजना प्रतीकात्मक होकर भी सुग्राह्य है, यही इसकी सफलता की पहचान है।

---

40) दि1 ग्लानिर्भवति भारत, श्री महास्वप्न, पृ.-22

इसके समतुल्य, नयी कविता का यह अंश देखने योग्य है जिसमें वस्तु ऊपर की ही है, परंतु बिम्बांकन में थोड़ा-बहुत अन्तर दिखता है-

मेरे पीछे आये हुए युवा-बाल-जन
धरित्री के घन
खोजता हूँ उनमें ही
छटपटाती हुई मेरी छाँह
असंरव्यक इत्यादि जनों का मैं भाग
इसलिये, अनदिखे,
सुलगता धीरे से आग। [41]

धरा की दुरवस्था-जन्य दुःख ही में तीव्रता का मह बिंब-रूप सच-मुच सराहनीय है। कुछ घरों में महीना बीत जाने पर कैलंडर के उस महीने के कागज़ फाड़ दिये जाते हैं, डेस्क पर रखी किताबों के पृष्ठ पढ़ते हुए बाहर जाने पर पंखे की या बहाँ की हवा के कारण उडते-बदलते जाते हैं, प्यालियों के कान टूट जाते हैं और वे कटोरे से लगने लगते हैं, दीवारों पर मकडियों के रंग-बिरंगे जाल कुछ लिखे हुए-से मालूम होते हैं। मेज़ पर रखी लैंप में बल्ब नहीं है न ही छतरी और वहाँ की मौसमी फुलवाड़ी में केवल डंठल और डालियाँ हैं, फुल बिलकुल नहीं हैं-

'कैलेंडर दिसंबर तक फटा है, ग्लास चकते हुए हैं,
किताबों के पन्ने फट-फट कर एक दूसरे में मिल गये हैं
कान टूटने से प्यालियाँ कटोरियाँ बनी हुई हैं,
दीवारों पर लाल-काली मकड़ी-जालियाँ लिखी हैं,
टेबल-लैंप में न बल्ब है न छतरी मौसमी
फुलवाड़ी में सिर्फ डण्ठल और डाल हैं,[42]

श्री निखिलेश्वर विभिन्न प्रसंगों द्वारा देश में व्यक्ति की दुस्थिति का एक चित्रात्मक बिंब हमारे आगे प्रस्तुत करते हैं। 'अपने देश में एकाकी हूँ' वाली कविता में श्री निखिलेश्वर की बिम्ब-योजना कैसी जबरदस्त है, ठोस है, चित्रात्मक एवं काव्यात्मक है, यह अवश्य देखने योग्य है। आप कहते हैं कि वे अपने देश में एकाकी हैं। जब भी देखो, उनके अंदर का हैम्लेट तलवार खींचे आगे खडे होकर सवाल करता रहता

41) अ.'एक आत्म-वक्तव्य' (श्री गजानन मुक्तिबोध) पृ.-42-43
42) इ.'स्वस्ति मेरी बेटी' (श्री मदन वात्सायन) पृ.-155

है। कवि केलिये उसके देश की दी हुई दो बड़ी समस्याओं में से एक है फँासी की रस्सी और दूसरी है निरंतर मरोड़ खाते हुए टिकाऊ बननेवाली भूख की बेकारी वाली सुइयाँ।

'अपने देश में मैं एकाकी हूँ
जब कभी देखो, सामने खड़े हो
तलवार खींच सवाल करता है हैम्लेट
अपने देश ने मेरेलिये छोड़ रखीं
दो समस्याएँ-फँासी की रस्सी और
निरन्तर सिर पर मरोड़ खाते हुए
टिकाऊदार बननेवाली भूख की बेकारी की सुइयाँ [43]

राजनीतिज्ञों तथा नेतागिरी में मदमस्त लोगों की झूठखोरी और बेईमानी का वर्णन करने के निमित्त श्री चेरबंडराजु के विभिन्न चित्र-बिंब इस प्रकार हैं। जनता ने इस प्रकार सोचा था-

'हमारा उद्धार करोगे
काँटे से टँगी हमारी इच्छाएँ
सीधे अधिकार को सुना दोगे
हमसे किये गये वादे
आदमकद आईने के-से प्रतिबिंबित करोगे
परंतु होता क्या रहा है?
अपने घर के आगे पहरा देते कुत्तों को
गैरेज में गर्जन करनेवाली मोटर को
और पहरेदार की डाँट-डपट देखने के बाद
जनता के प्रतिनिधि बने हुए तुम
राक्षस-राज्य की नींव डाल रहे हो [44]

आम जनता कितनी नादान है कि विभिन्न उम्मीदवारों के वादों में विश्वास करती है कि वे उसके प्रतिनिधि बनकर पूरे के पूरे अपने वादों को अमल में रखेंगे, परंतु जनता की दुस्थिति यहाँ तक जाती है कि उनके पहरेदार उन्हें दुत्कार भगा देते हैं जिससे स्पष्ट पता चलता है कि राक्षसों के राज्य का यह शिलान्यास है।

---

43) दि2 'अपने देश में मैं एकाकीं हूँ' श्री निखिलेश्वर, पृ.-72
44) दि3 'खून की आवाज,' श्री चेरबंडराजु पृ.-135-136

अब तक के उदाहरणों के आधार पर नयी कविता और दिगंबर कविता की बिम्ब-योजना की प्रशंसा किये बिना सहृदय पाठकों एवं आलोचकों द्वारा रहा नहीं जा सकता। तेलुगु की दिगंबर कविता तो एक तरह से पूरी की पूरी 'बिम्बात्मक' कही जा सकती है। दिगम्बर कवि जो कुछ भी कहना चाहते हैं, उसकेलिये योग्य बिम्ब आयोजित किये बगैर रह नहीं सकते। सारांश रूप में नयी कविता और दिगंबर कविता बिम्बविधान की दिशा में नितान्त सफल है जिससे रसास्वादन में पाठक को सुगमाता ही नहीं होती, बल्कि काव्य-सौन्दर्य की अनुभूति भी होती है।

9. **नग्नता :** "तारसप्तक" (प्रथम भाग) से लेकर तीसरे सप्तक तक नयी कविता में नग्नता की मात्रा यदि बढ़ती गयी, तो दिगंबर कविता के तीनों संकलन निरी नग्नता से कूट-कूट कर भरे हुए हैं। यों तो नग्नता दो बातों की होती है। सामाजिक यथार्थ-सम्बन्धी और दूसरी कथ्य की अभिव्यंजन सम्बन्धी। नयी कविता में, "तारसप्तक" में, अभिव्यंजन सम्बन्धी नग्नता की यत्र-तत्र कमी मालूम होती है। दूसरे और तीसरे सप्तकों में सामाजिक अथवा राजनैतिक वास्तविकता के चित्र नग्नतापूर्ण मालम होते हैं, रही अभिव्यंजन-सम्बन्धी यथार्थ की मात्रा, शैली-परक नग्नता काव्य के सौंदर्य से संबद्ध है, उसकी चर्चा निरर्थक समझकर यहाँ पर सामाजिकता की नग्नता एवं राजतीति-सबंधी प्रसंगों का परीक्षण किया जाता है।

नये कवि और दिगंबर कवि समाज के यथार्थ से सदा जागरूक रहे हैं। इसीसे अपने हृदय के उद्वेगों को वे बिलकुल प्रतीकात्मक नहीं थ्ख पाये हैं। खुली यथातथ्य सामाजिकता को दोनों ही भाषाओं के कवि सदा वाणी देते रहे हैं। इसी से उनकी कविता में नग्नता की बात की जाती है।

नये कवियों ने प्रकृति, मानव और उसके जीवन में- व्यक्ति, परिवार का सदस्य, समाज का अंग-इत्यादि विभिन्न ओहदों को वस्तु बनाकर कविता लिखी। प्रकृति-वर्णन का कोई अर्थ नहीं होता यदि मानव-जीवन का उसके साथ सामंजस्य बिलकुल न रहे। नये कवि एवं दिगबंर कवि, दोनों के सामाजिकता से जागरूक होने से उनकी रचनाओं का कथ्य कला के अपने पर्दे को फेंक गिराता है। यह नग्नता यद्यपि जीवन की वास्तविकता है, यही उनकी कविताओं में सौंदर्य का रूप धारण कर प्रत्यक्ष हो जाती है, इसमें कलात्मकता को कोई क्षति नहीं पहुँचती।

डॉ. रामविलास शर्मा यद्यपि मार्क्सवादी हैं, कविता में आकर आप जनतावादी, साम्यवादी, प्रयोजनवादी और उपयोगितावादी बन जाते हैं, परंतु जनता के जीवन में साम्य कैसे लाया जावे, इसका अकेला व्यक्ति कैसे निर्णय कर पाता जबकि व्यवस्था में संक्लिष्टता परिव्याप्त रहे? इसलिये जनता को जागृत करने केलिये आप वक्रोक्ति एवं व्यंग्य का आधार लेकर उग्द्गारों को उन्मुक्त करते हैं। इस तथ्य की पुष्टि करनेवाला एक समर्थक उदाहरण 'सत्यं,शिवं,सुन्दरम' वाली कविता है। इस कविता की चन्द पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

इस धरती पर बसनेवाले
उसके हित पर मर मिटनेवाले
कहाँ भागेंगे ताबड़तोड़
हिन्दी हम चालीस करोड?

यह आजादी का मैदान
जीतेंगे मज़दूर किसान।
एक यही है राह सुगम,
सत्यं,शिवं,सुन्दरम।

आज बढेंगे साथ-कदम
निश्चय विजयी होंगे हम
गिरने दो जापानी बम।
बोलो वन्देमातरम। [45]

इस देश में रहते हुए, इसकी भलाई केलिये मर मिटनेवाले इन्हीं देशवासी चालीस करौड़ भारतीयों की सुरक्षा देश ही के अन्दर नहीं है, उनका अस्तित्व ही एक प्रश्न-चिन्ह है। वे कहाँ भाग चलें?

स्वतंत्रता के मिल जाने के बावजूद मजदूर और किसानों की दुस्थिति जैसी की तैसी बनी हुई है, इनकी मुक्ति का मार्ग वया है? केवल 'सत्यं,शिवं,सुन्दरम' का नारा? वन्दे मातरम का नारा? परोक्ष में, नारों से किसी का क्या उद्धार होगा?

देश की स्वतंत्रता की प्राप्ति के पूर्व इस पर जापानियों ने बम गिराये थे, हम कदम आगे बढाते हुए 'बन्देमातरम का नारा लगाते हुए आगे-आगे बढे थे। अब देश के अन्दर ही हमें यह नारा लगाते हुए (देशी) जापनी बम सहते हुए संघर्ष करना पड़ रहा है। अर्थात हम अब भी अपने स्वतंत्र देश में गुलाम ही बने हुए हैं।

---

45) अ. 'सत्यं,शिवं,सुन्दरम' (डॉ. रामविलास शर्मा पृ.-247-248

तेलुगु में भी श्री चेरबंडराजु 'वन्देमातरम, शीर्षक से इसी आशय से मिलती जुलती एक लघु कविता लिख चुके थे जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

'हे मेरे प्रिय मातृ देश!
माता,पिता, ईश्वर तुम ही हो माँ
बदमाशों के साथ पलंग पर रंडीबाजी करनेवाला शील है तुम्हारा
सम्पन्नों के हाथों में मदमस्त होकर सोनेवाला यौवन है तुम्हारा
थूकने या धूल झोंक देने पर भी अविचलित सिरचकराई है तुम्हारी
खड़ी फसल में बिल खोदनेवाले
चूहों और मूसों को सहती खड़ी 'भारती' हो तुम माँ
मुँह तक न पहुँचनेवाले सस्यश्यामल क्षेत्र हो माँ
बन्देमातरम वन्देमातरम
अपनी देह के वस्त्रों को झंडे बनाकर
विवस्त्र हो जुलूस निकलने का घीरज है तुम्हारा

सूखे स्तनों पर रेंगनेवाली सन्तानों को
आश्वासन न दे सकनेवाला शोक है तुम्हारा
भूख से सूख, झुलसकर उधार के गहनों से
सड़क पर सजा श्रृंगार है तुम्हारा
हे माँ भारती तुम्हारी मंजिल क्या है?
वन्देमातरम
वन्देमातरम [46]

भाव जितना सरल है, बात उतनी ही जटिल एवं गम्भीर है। डॉ.शर्माज़ी के वक्तव्य का ब्योरेवार वक्तव्य है यह कविता।

राजनीतिज्ञों की सत्ता देश की जनता की भूख प्यास न मिटाकर देश को बेचती जा रही है, गिरवी रखकर कर्ज़ ला रही है। ये सत्ताधारी यहाँ की फसलें विदेशों में बेच रहे हैं, देश-भक्ति के नाम पर अनगिनत रंग-बिरंगे राष्ट्रीय झंडे फहरा रहे हैं जब कि यहाँ की जनता को पहनने को कपड़ा नही। एक प्रकार से आज देश माता अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में रंड़ीबाजी कर रही है। जिसको हमने स्वतन्त्र बनाया, वह स्वयं अब अनेकों के हाथों में गुलाम बनी हुई है। जनता का पालन करनेवाले प्रतिनिधि

46) दि3. 'वन्देमातरम' श्री चेरबंडराजु पृ.-14

लोग पूरे अत्याचारी, दुराचारी और तुच्छ बनकर अपने स्वार्थ के पीछे देश और देश की संपूर्ण सम्पत्ति को बेच देने केलिये तैयार हैं। देश का अनर्थ ही अनर्थ प्रत्येक क्षेत्र में होता जा रहा है। इसका कारण केवल अविद्या है। आजकल शिक्षा के नाम पर कालेजों-विश्वविद्यालयों में जो ज्ञान दिया जा रहा है, वास्तव में वह अज्ञान है जिससे न मानसिक विकास होता है न पेट भरने की योग्यता ही आती है। वे तो केवल ज्ञान-गर्भपात के निलय हैं। ये पढाइयाँ अन्धा और विकलांगी बनाती हैं। जीवन को सीधी राह से न ले जाकर गलियों-कूचों द्वारा दबाते-धमकाते मुज़रिम और गुलाम बना देती हैं-

टाँगों से खाली स्कूल
पेट न भरनेवाले कालेज
विश्वविद्यालय ज्ञान-गर्भपात के निलय
आखें फोड़कर जबरदस्ती से
अन्धा और विकलांगी बनानेवाली शिक्षा
जीवन मेइन रोड न बन कर
गलियों-कूचों में
दबकर-दुबककर
भयग्रस्त एवं अपराधी की तरह
गुलाम बनाकर क्या सिखाती है यह पढाई? [47]

शहरी जीवन की अधोगति का वर्णन करते हुए श्री प्रभाकर माचवे कहते हैं कि सड़कों-गलियों में सर्वत्र बदबू-ही बदबू फैली हुई है; वह इन मानव यन्त्रों में शायद नहीं घुसती, अन्यया वे कैसे जीवित रहते? वेतन केलिये जीवन चला लेनेवाले इनके शरीरों में रक्त नहीं, गाय का मूत्र बहता है, अर्थात धार्मिकता से इनका मन भरा होता है, अतः नयी बातों व क्रान्ति से ये डरा करते है, लकीर के फकीर हैं और वे लोग अपनी नौकरी की तरक्की, वेतन की वृद्धि, संतानों की बढ़ती और पाव भर आटे की प्राप्ति का आश्वासन देकर जाते हैं, अर्थात कुछ न कुछ रकम या खाद्य बदले में उड़ा ले जाते हैं।-

शहर की तमाम नालियों की जो सडांध है,
न घुस पाती इनके दिमाग में, नथुनों में।
पुर्जे-से बेजान
बीस-बीस पच्चीस

47) दि3. 'नग्न शिशु' (श्री नग्नमुनि) पृ.-222

माहवार रुपयों पर जीते हैं।
इनके कोई नहीं विश्वास अथवा मत।
जैसा कहा सबने, त्यों,
लहू नहीं, गोमूत्र बहता इन जिस्मों में
इसी से सदा डरते क्रान्ति से नवीनता से घबडाते।

पीटते लकीर।
औ' मुहल्ले में इनके जो आता है
सदा देने बुड्ढा फकीर,
वह भी तो जानता है
इनकी इस दासत्व-जर्जरित मनसा की नस-नस, सो
कहता है काम में तरक्की हो
ओहदा बढ़े
कमानेवालों की खैर रहे,
औलाद बढ़ती रहे,
मिल जाय पाव भर आटा [48]

सफ़ेद-कंठी जीवन (White Collared Life) में शहरों में बसनेवाले नौकरी पोश मध्मवर्गीय परिवार के लोगो की दुस्थिति का एक दूसरे प्रकार से, बल्कि मिलते-जुलते रंग में श्री भैरवय्या अपनी 'अकाल-भिक्षा' नामक कविता में व्यंग्य-मिश्रित कारुणिकता के पुट में बताते हैं। इन लोगों के जीवन की आकांक्षा थोडा-सा जीवन-सुख और बढा लेने की है। चीजों के बढ़ते हुए मूल्य इसके अवरोध हैं। इनके आगे एक ही एक रास्ता है महंगाई भत्ते की आशा। सदा बढ़नेवाले दामों से उनके जीवन में एक प्रकार से अकाल है जिसका निवारण केवल उस भत्ते के द्वारा ही सम्भव है। वे मानों इसी से उस भत्ते नामक भिक्षा से अकाल का काल पार करने की आशा में रहते हैं। यह कविता सरकारी नौकरी में लगे हुए निकम्मे डरपोक लोगों को लक्ष्य में रख कर लिखी गयी है जो अपनी नग्नता में रसवत्ता से भरी है। इसमें व्यंग्य भी है,. करुणा की धारा भी है और वक्रतापूर्ण हास्य का एक साथ आभास भी है। बात सीधी है, पर कहने की रीत निराली है-

भाई ! डरो मत

महँगाई भत्ता बढ़नेवाला है
अजगर के मुँह में मक्खी का बच्चा कूद पड़नेवाला है।

48) अ. 'निम्नमध्यवर्ग' (श्री प्रभाकर माचवे) पृ.-145

अपने जीवन के ही-से फटे कुर्ते पर नया रफू लगा सकोगे।
कर्ज़ देनेवाले को एक कोस की दूरी पर से
धीरज के साथ दैख सकोगे
साहूकार नामक काले भगवान की मनौती कर सकोगे
अफ़सर के छोटे बच्चे केलिये बिस्कुट ले जा सकोगे
पेट की शिकायत करनेवाले, लोक से अपरिचित आखिरी बच्चे को सीधे डाँट सकोगे

कुछ भी हो
दुनिया जैसी भी रहे
बड़े भैये!
तुम्हारा महँगाई भत्ता जरूर बढ़ेगा
दामों का वेग बढ़ेगा
अजगर और एक बार जम्हाई लेगा [49]

लोगों के जीवन की दयनीमता से शोकतप्त होकर स्वयं आवेश से उद्दीप्त नये कवि श्री हरिनारायण व्यास के ये थोडे से शब्द साक्षी हैं-

'दूसरे पक्ष पर पड़ी हैं हड्डियाँ
फैला हुआ भोले जनों का रक्त
द्रौपदी भी चीखती हैं नारियाँ निर्वस्त्र
जिनके चीर दुःशासन कहीं पर
फेंक आया खींचकर

हम खड़े होकर बुभुक्षित फौज में
निज मोरचे पर
सामने के शत्रु दुर्गों के-
क्योंकि पहले तोडना है दुर्ग
जिसकी गोद में बन्दी हमारी चाहना है [50]

इस अवतरण के पथमार्द्ध में सामाजिक व्यवस्था-जन्य एक अत्याचार का उल्लेख है जो नारी-सम्बन्धी है। अपनी ही बहन से दुःशासन का-सा व्यवहार करनेवाले दुराचारियों के प्रसंग के पश्चात उत्तरार्द्ध में इस

49) दि2 'अकाल भिक्षा' (करूवुबिच्चं) श्री भैरवय्या, पृ.-124-125
50) आ. 'एक मित्र से' (श्री हरिनारायण व्यास) पृ.-96-97

व्यवस्था-रूपी दुर्ग को तोड़ देने की प्रेरणा देना कवि का उद्देशय है ताकि ऐसे अत्याचारों की समाप्ति हो जाय; व्यवस्था के संचालक शत्रुओं के अन्त द्वारा ही यह सम्भव है, इसकेलिये हमें भूखे सिपाहियों की तरह व्यूह रचकर लड़ना है।

इसी बात को और जोश के साथ, थोड़ी असामाजिकता के रंग में दिगंबर कवि श्री नग्नमुनि कहते हैं। उनके अनुसार वर्तमान युवा पीढ़ी अकर्मठ है, निर्वीर्य है, वह नेताओं से फेंके जानेवाले पेशाब को करुणरस समझ चाट रही है, उनकी चप्पलों के नीचे फूंककर फेंके गये सिगरेट के-से और रसोई घर के जूठे बर्तनों के-से जी रही हैं। आप उसे क्षमा नहीं कर सकते। अन्यायी को न ललकारनेवाले को माफ़ करना उन्हें नहीं आता-यहाँ तक तो ठीक है। 'शान्तिकामी' भारत के अवतार 'भगवान बुद्ध को वे ठुकराते ही नहीं, उनके क्षमावाले सिद्धान्त की समाप्ति कर देना चाहते हैं। यद्यपि शान्तिकामी अहिंसावादी हिंदुओं को अन्तिम पंक्ति अखरती है, फिलहाल गुजरते जानेवाले अत्याचारों की पृष्ठ- भूमि में कवि की उक्ति ठीक ही जँचती है-

नेता लोग जनता के मुखड़े पर जो मूत्र फेंक रहे हैं,
उसे करुण रस समझकर चाटनेवाली युवा पीढदी को
बीडी के दुकडों के-से, चप्पलों के नीचे फूंककर
फेंके गये सिगरेट के टुकड़ों के-से
रसोई घर के जूठे बरतनों के-से जीनेवाली
इस पीढ़ी को मैं क्षमा नहीं कर सकता
सवाल करना न आनेवाले अस्तित्व को मैं क्षमा नहीं कर सकता
हे बुद्ध तू और तेरी क्षमा मुझे नहीं चाहिए
तू अकेले ही बोधिवृक्ष के नीचे मर जा [51]

हम सत्य, शिव एवं सुन्दर की बात किया करते हैं मानों वे समझने में बड़े-बड़े दार्शनिकों की ही सामर्थ्य की बातें हैं। यादि कोई पूछेगा कि 'सत्य का रंग क्या है? उसका उत्तर होगा कि 'जनता का दुःख। ये हवा में लहरें खाते हुए झंड़े असंख्यक मानवों के दैन्य के क्रूर चिन्ह हैं; जनता की दीनता को न हटाकर स्वतन्त्रता-दिवस का त्योहार मनाना क्रूरता है, बुद्धि का दारिद्र्य है। घर घर में श्रमिक हैं, इनका अमर वर एकमात्र एकता का स्वर है। अर्थात सच्ची स्वतन्त्रता की प्राप्ति की साधना है-

51) दि3. 'बुद्धक्षमा' (श्री नग्नमुनि) पृ.-186

सत्य का
क्या रंग?
पूछे
एक संग
एक-जनता का
दु:ख : एक।
हवा में उड़ती पताकाएँ
अनेक
दैन्य मानव।
क्रूर स्थिति।
कंगाल बुद्धि।
मजूर घर भर।
एक जनता का अमर वर।
एकता का स्वर।
- अन्यथा स्वातन्त्र्य - सिद्धि [52]

श्री चेरबंडराजु शेष पाँचों दिगंबर कवियों से अधिक भाव-प्रवण एवं संवेदनशील कवि हैं। इसी से आप प्रपीड़ित जनता के प्रति अपनी पूरी सहानु भूति रखते और उसको जोरदार भाषा में वाणी भी देते हैं। लोग मानो बकरे-बकरियाँ हैं जिनके उद्धारार्थ नेता लोग वादों से प्रारम्भ कर अपनी पदवी को जीत लेते और शोषण का कार्य प्रारम्भ करते हैं। वे कसाई हैं। जनता उनके अधीन में रह कर प्रकृति की सम्पत्ति के पत्तों और पानी तक पर भी अपना अधिकार खो देती है। खाना, काम, कपड़ा और यहाँ तक कि एक तिनके पर भी उसका अधिकार नहीं रहता। वही कसाई सारे देश का हक़दार है, उस हक की सदा रक्षा कर लेने केलिये फौलादी संविधान उसने अपने हाथों में रख लिया है। जनता को याद रख लेना चाहिए कि उसके पाँचों प्राण उसके हाथों के नाखूनों पर टिके रहते हैं। यों तो ये राजनीतिज्ञ अपने को जनता के पालन-पोषण करनेवाले के रूप में दर्शन देते हैं और वादे करते हैं और अधिकार मिलते ही जनता-रूपी बकरियों के झुंड केलिये गड़रिये नहीं, कसाई बन जाते हैं। वे इस तथ्य का उद्घाटन करते हैं 'हे मेरे बकरे!' शीर्षक से एक सुंदर कविता श्री चेरबंडराजु ने बहुत ही जबरदस्त भाषा में कथ्य का नग्नांकन करते हुए लिखी है जिसका केन्दक अंश इस प्रकार है-

52) आ. 'बात बोलेगी' (श्री शमशेर बहादूर सिंह) पृ.-91-92

कसाई की आँखों के इशारों पर
घूमने-फिरनेवाले हे मेरे बकरे
तुम जो पत्ते खाते हो
और जो पानी पीते हो
वह प्रकृति से प्राप्त होनेवाली
सहज सम्पत्ति तो नहीं है!
खाना, काम, कपड़ा,घर
इस देश में आखिर
एक तिनके पर तक
बकरों का अपना जन्मजात अधिकार बिलकुल नहीं है
उन सबका हकदार कसाई है
उसके तथा कथित हक को क्षमा करने के लिये
फौलादी संविधान उसके हाथों में सुरक्षित है
तुम्हारे पाँचों प्राण, लो! वहाँ
उसके नाखूनों के सिरे पर टिके रहते हैं।
यह बात गाँठ बाँध लो! [53]

राजनैतिक दुस्थिति-जन्य वर्तमान आर्थिक विषमता से पीडित जनता की दुस्थिति का कारण क्या है? राजनीतिज्ञों की सुरक्षित पदवी के अधीनस्थ अधिकारिक यन्त्रांग है जिससे प्रान्तीयता की बधिरता, जातिगत-विद्वेष की अंधेर, भष्टाचार-जन्य भूख, शक्ति-सामर्थ्य की 'अनुपयोगिता, अधिकारी लोगों की कदाचारपूर्ण कार्य-कारिता पर फाइलों की छतरी और फिर लोक-मत के नाम पर जलन, आकांक्षा और धुआँदार दहक। सदा परिव्याप्त इस सड़ते समाज में चिकने हरे पत्ते कैसे लहरा उठेंगे? इस पतन की बाढ़ में जनता का सुख-सन्तोष कैसे टिकेंगे? श्री मदन वात्सायन के हार्दिक शोक-तप्त उद्गार इन पंक्तियों में यों लहरा उठते हैं-

बधिर प्रान्तीयता, जातीयता अन्धी
बुभुक्षित भ्रष्टता, सहमी हुई ताकत
सबों पर फाइलों का छत्र
जलन से, कामना से, धुआँ देता, दहकता लोक-मत।
फैलती इस सड़न में हैं लहक उठते
ये किसके चिकने पत्ते?
पतन की बाढ़ में? [54]

53) *"पल्लवि" (श्री चेरबंडराजु) 'हे मेरे बकरे,' पृ.-42*
54) *इ. मिथिला में बाढ़' (श्री मदन वात्सायन) पृ.-189*

श्री महास्वप्न भाषाई नग्नता को भी मिलाकर राजनीतिज्ञों के नग्न स्वरूप का वास्तविक चित्र खींचते हैं। वे अँधियारे में सैर-सपाटे करनेवाले डाकू-लुटेरे हैं। नकाबपोश धोखेबाज़ हैं। वे सब खून चूसते खटमल हैं, खिसक जानेवाली छिपकलियाँ हैं, खून चूसनेवाले जोंक हैं, निशाचर पिशाच हैं। श्री महा स्वप्न की इन पंक्तियों में कथ्य का खुला यथार्थ है, हालत पर शोक है, रोष है और इसीसे अपनी विवशता में टूट पड़कर गालियाँ तक देने से आप पीछा नहीं करते-

मुझे मालूम है कि आप मुझे देख नहीं सकते
मुझे मालूम है कि आप मुझे सुन नहीं सकते
मुझे मालूम है कि वहाँ पर मनुष्य नहीं हैं
मुझे मालूम है कि आप सब मनुष्य हैं ही नहीं
आप सब अन्धेरे में घूमने-फिरनेवाले डाकू-लुटेरे हैं
आप सब नकाबपोश धोखेबाज हैं
आप सब आप सभी
खटमल हैं खटमल! छिपकलियाँ हैं छिपकलियाँ
खून चूसनेवाले जोंक हैं, पिशाच हैं निशाचर

आपको बचानेवाले
अंधेरी रात का यह किला फोड़ दूँगा [55]

श्री ज्वालामुखी एक दूसरे तरीके से चालू लोकतन्त्र की कुरूपता का चित्र आँकते हुए उस कुरूपता के कारणों को भी स्पष्ट करते हैं।

प्रधान कारण लोगों में घनी भूत गहरा अज्ञान है। इस अज्ञान का कारण विभिन्न धर्म हैं जो व्यापार करनेवाले मन्दिरों, अंहकार से भरी मस-जिदों और आडंबर से भरे गिरिजाघरों को खोल सौन्दर्य पूर्ण बनाकर आम जनता को दबा रख कर, मूढ़ता का उन्हें आश्रय बनाकर संप्रदायों के बाज़ारों में बेच रहे हैं। समाज रूपी सरोवर में शाश्वत रूप से मल मिला रहे हैं-

किरायेदार वादों के किराना-कोणों पर
मँडरानेवाली समाचार-पत्र-रूपी मक्खियाँ
अज्ञान-रूपी कलश फैला रही हैं

---

55) दि1 'अकस्मात बीच दुपहर को कपड़े उतारकर' (श्री महास्वप्न) पृ.-36-37

और लोकतन्त्र के नाम पर जनता का
उपहास कर रही हैं

धर्म ----------
व्यापार करनेवाले मंदिरों
अहंकार से भरी मसजिदों
और आडंबर से भरे गिरिजाघरों को
खोलकर, सुन्दर सजाकर
सामान्य मानव को दबा रख
मूढता के आश्रय बनाकर
सम्प्रदाय-रूपी बाजर में भेज रहे हैं
समाज-रूपी सरोवर में मल को
शाश्वत रूप से भर रहे हैं [56]

श्री विजयदेव नारायण साही मानव की दयनीयता का वर्णन करके पाठकों का लक्ष्य उसके कारण की ओर प्रेरित करना चाहते हैं। इस स्वतंत्र देश में हम अपना सब कुछ खो बैठकर व्यर्थ जीवन बिता रहे हैं। हमने अपने अज्ञान में सच्चाई को नकली समझकर मूल्यवान मोतियों को बेच दिया है-

जलते माथे पर सूने कुहरे की छाया,
टूटती पसलियों में रीता, गूँजता दर्द,
खाली जेबों में हाथ, दिये, सामर्थ्यहीन
बिलकुल यों ही
सब कुछ खोकर
हम सभी उतरकर आये हैं इस घाटी में।

हम सबने उस मदहोशी में
नकली सच्चाई के बदले अनमोल सितारे बेच दिये। [57]

श्री ज्वालामुखी भी वर्तमान के दैन्य के कारणों का नग्न दर्शन कराते हैं जिनका आधार लेकर राजनैतिक व्यवस्ठा आज टिकने की जड़

56) दि2 *'किलकिंचित' (श्री ज्वालामुखी) पृ.-79-80*
57) इ *'हम सभी बेचकर आये हैं अपने सपने' (श्री विजयदेव नारायण साही) पृ.-319*

जमाकर ठहर जाने की भरसक कोशिश कर रही हैं। धर्म और राजनीति के ठेकेदार अपने देश की महत्ता को जिन अंशों में फोकस कर दिखाना चाहते हैं, वे कितने निरर्थक हैं, सोचने पर किसी भी विचारशील पाठक को अवगत हो जायेगा। बुद्ध भगवान का अहिंसा का सिद्धांत क्या हमारी रक्षा करता है? गांधी का पथ क्या हमें खाना देता है? धर्मशास्त्र क्या हमें अपने जीवन की क्लिष्टता से बचाव का रास्ता दिखाते हैं? कर्म-सिद्धान्त ने हमें गुलाम बना दिया है। सब से असीम शोक की बात यह है कि देश का उच्चतम न्यायालय जो एक आलीशान सुन्दर हर्म्य है उसकी सीढियों तक भी सामान्य मानव की पहुँच नहीं है।

बोधि-वृक्ष ने मुट्ठी-भर छाँह नहीं दी है
गाँधी-पथ ने करछुल भर माँड नहीं दिया है
धर्मशास्त्र ने बचाव की कोई राह नहीं छोड़ी
कर्म-सिद्धान्त ने गुलाम बनाकर छोड़ा है [58]

और-

सुन्दर हर्म्यान्तर्गत
सुप्रीम घर्म देवी
जिसकी सीढियों तक भी
सामान्य मानव की पहुँच नहीं है [59]

स्पष्ट है कि दोनों ही कवियों ने निर्भीक भाव से सामाजिक एवं राजनैतिक वैषम्य का दर्शन कराने के अवसर पर 'नग्नता' का रास्ता अपना लिया है। यह नग्नता एक तरह से पाठकों को चेताने का एक साधन है।

10. भद्दापन : भद्दापन किसी वस्तु अथवा व्यक्ति या विषय में स्वयं अपने आप में नहीं रहता। व्यक्ति सामाजिक अवश्य होता है, परन्तु संस्कार-जन्य होता है। कोई व्यक्ति जिस पर्यावरण में पला हुआ होता है, भद्दापन उस पर्यावरण-जन्य संस्कारों की पुत्री होती है। अतः वैयक्तिक रूप से अनुभूत भद्दापन भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। सामूहिक रूप से अनुभूत भद्देपन की भी यही बात है। कोई व्यक्ति किसी के व्यवहार को भद्दा पा सकता है और कोई दूसरा भी उसे ऐसा पावे, इसकी आवश्यकता नहीं है। किसी व्यक्ति-विशेष को किसी अमुक व्यक्ति की हर बात

58) दि3 'हाव का विद्रोह' (श्री ज्वालामुखी) पृ.-227
59) वही पृ.-229

भद्दी लग सकती है क्योंकि वह पहले मित्र था, परन्तु इस बीच दोनों में मनमुटाव हो गया है। मल, मूत्र जैसी कुछ वस्तुओं का प्रसंग सामाजिक रूप से भद्दा माना जाता है। स्त्रियों के बीच में पुरुष से फूहड़ बात कहना सभ्य व्यक्ति को फूहड़ लगता है। किन्तु झोपंडियों में जीवन चलानेवाले लोगों में ऐसी बातें वहाँ के किसी को भद्दी नहीं लगतीं। शाकाहारी व्यक्तियों के भोजन करते समय किसी के द्वारा आमिषाहार के पदार्थों की चर्चा भद्दी लगती है, किन्तु मांसाहारी व्यक्तियों को शाकाहार के पदार्यों की चर्चा नहीं खटकती।

सारांश रूप में-(1) भद्देपन का अनुभव व्यक्ति-विशेष के पले हुए संस्कारों का परिणाम होता है; इस सिलसिले में परिवार और पास-पडोस का भी हाथ होता है।

(2) सामाजिक रूप से अनुभूत भद्दापन सामूहिक संस्करों का परिणाम होता है।

(3) भिन्न व्यक्तियों व भिन्न समाजों (देश भी) के बीच में भद्देपन की आस्पद वस्तु, व्यक्ति एवं विषय भिन्न-भिन्न हो सकते हैं और उस भद्देपन की अनुभूति के स्तरों में भी भिन्नता हो सकती है।

साहित्य अथवा कविता व्यक्ति की उत्पाद्य वस्तु है। अतः उसक। स्रष्टा, अपनी दृष्टि में जो बात भद्दी लगती है, उसका अपनी रचनाओं में विसर्जन करता जाता है। फिर भी व्यक्ति-विशेष की भिन्नता के कारण किसी पाठक को कोई बात भद्दी लग सकती है। **कवि से पाठक तक जाते-जाते उसकी रचना व्यक्ति रुचि से सामाजिक रुचि की तरफ यात्रा करती है;** अतः साहित्य में भद्देपन का सदा ही अवसर रहता है। इसी से भद्देपन का सदा ही अवसर रहता है। इसी से भद्देपन और जुगुप्सा को नीचा कहते हुए भी उसकी अनिवार्यता को गुण मानकर काव्यशास्त्रज्ञों ने उससे युक्त भाव को एक विशिष्ट रस कहा और उसे 'बीभत्स' की उपाधि देकर आदर का स्थान प्रदान किया। यद्ध के वर्णन के अवसर पर वीर एवं रौद्र का वर्णन होता है, तो तत्पश्चात बी भत्स का दश्य बचता है।

भद्दे प्रसंगो की गणना में श्री अज्ञेय की ये पक्तियाँ बहुचर्चित हैं-

मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टाँगों पर खड़ा नतग्रीव
धैर्य-धन गदहा

गदहे का तीन टाँगों पर मूत्र से भीगी मिट्टी में झुकी गर्दन लेकर धैर्य के साथ खड़ा होना-ये बातें लेखक की सूक्ष्म दृष्टि को ही अधिक प्रकट करनेवाली हैं, न कि उनकी निम्न कोटि की रुचि अथवा भद्देपन को।

तीनों सप्तकों की नयी कविता में भद्देपन के प्रसंग नहीं के बराबर मिलते हैं, प्रायः इस कथन में शोधार्थी की वैयक्तिक रुचि एवं प्राप्त संस्कार भी क्रियाशील रहते हों, यह भी सम्भव है। केवल एक अवसर पर श्री अज्ञेय ही के चन्द शब्द भद्दे मालूम होते हैं-

टीका (यद्यपि भाष्यकार है दुर्मुख)
हम लोगों का एक मात्र श्रम है- सुरति- श्रम
उस अन्त्यज का एक मात्र सुख है- मैथुन-सुख [60]

यद्यपि यहाँ पर दो भद्द तथ्यों का उल्लेख है अन्तिम पंक्ति में 'अन्त्यज' के विषय में ही उक्त सुख की चर्चा थोड़ी खटकती है।

दिगम्बर कवियों ने कथ्य को प्रभावपूर्ण रूप से प्रस्तुत करने केलिये भद्देपन को एक आकर्षक साधन के रूप में स्वीकार किया। चूँकि अश्लीलता भद्देपन की चरमसीमा है, उसे काव्य में अवांछनीय माना जाता है। असामाजिक होने पर दिगंबर कवियों ने खुलकर इसका आवश्यकता से अधिक प्रयोग किया है। इससे पाठक-जगत की दृष्टि तो खिंच ही जाती है, दूसरी तरफ़ लेखकों का सामाजिक-राजनैतिक वैषम्य पर खेद कम हो जाता है। पाठक लोगों का मन भी थोड़ा हल्का हो जाता है। लेखक व पाठक की कुंठा एवं घुटन को शमन मिल जाता है।

अर्ध-रात्रि शयन गृहों
का अर्थ इक ही तो होता ना? [61]

जनता की भूख और काम-भाव, इनकी तृप्ति की बात करना आज के कवि का कर्तव्य है। इसी से उक्त पंक्तियों में एक पक्ष की खुलकर श्री चेरबंडराजु चर्चा करते हैं जो पाठकों को उतना नहीं अखरता; जब श्री ज्वालामुखी कहते हैं कि 'शासनों के सन्ध्या वन्दनों, भाषणों के अनाप-शनापों, हकों के ऋकों की गाँठों, प्रस्तावों के माधुर्यों में व योजनाओं के वसंतों के शामियानों में भयभीत विवश गरीब सत्यों

60) "अ. 'वर्ग-भावना-सटीक' (श्री अज्ञेय) पृ.-228
61) "दि1. 'मुझे चढ़ने दीजिये कठघरे में' (श्री चेरबंडराजु) पृ.-20

का साम्प्रदायिक रूप से ही मान भंग होता जा रहा है, तब भी बात उतनी भद्दी नहीं लगती-

शासनों के सन्ध्यावन्दनों में
भाषणों के अनाप-शनापों में
हकों के ऋकों की गाँठों में
प्रस्तावों के माधुर्यों में
योजनाओं के वसंतों के शामियानों में भयभीत
विवश गरीब सत्यों का मानभंग
साम्प्रदायिक रूप से होता जा रहा है [62]

दिगम्बर कविता के प्रथम संकलन के पश्चात विद्वान आलोचकों ने उसमें अश्लीलता को दर्शाया था। अपने द्वितीय संकलन में श्री नग्नमुनि भद्दी भाषा में उसका उत्तर इस प्रकार देते हैं-

'दिगम्बराक्षर अश्लीलता बक रहा है-
यों कह रहे हो बेशर्म होकर
तुम्हारा चमड़ा सड़ गया है
तुम्हारी आँखों में छेद पड़े हैं
कीडों ने तुम्हारा दिमाग खा लिया है
तुम्हारा अंग सड़ गया है
तुम्हारा मन पाखाना बन गया है
अब तुम्हें हर बात में
अश्लीलता को छोड और क्या दिखेगा? [63]

परन्तु जब जननांगों के नाम लेते हुए जनन-कार्य अथवा मान-भंग की चर्चा करते हैं, तो इन कवियों की रचनाएँ भद्दी व अश्लील ही लगती हैं। ऐसी अश्लीलता प्रायः श्री नग्नमुनि में अत्यधिक है।

आप कहते हैं कि मैं जिस किसी भी देश में जाऊँ और जहाँ कहीं भी कदम रखूँ, दिन-दहाड़े पीसे मिर्च में लोटाये मूसलों से जोदने को जी करता है-

---

62) "दि2. 'किलकिंचित' (श्री ज्वालामुखी) पृ.-80
63) "दि2. 'हिजडों की रति-क्रीडा देख रहा हूँ' (श्री नग्नमुनि) पृ.-146

'किसी देश में जाऊँ में
किसी देश में कदम रखूँ
पीसे मिर्च में लोटाये मूसलों से दिन दहाडे
चोदने को जी करता है [64]

एक और जगह वे आकाशवाणी (अशरीर वाणी अधवा दिव्यवाणी) का सम्बोधन करते हुए पृथ्वी का विभिन्न रूप से वर्णन करके अन्त में यों कहते हैं-

अब तुम प्रत्यक्ष होकर
अपनी नकाब व मुखड़ा
और 'नाभि के नीचे की तस्वीर'
न दिखा कर
जिस रास्ते से आयी हो,
उसी रास्ते से होकर
सप्तगिरि पर चली जाओ ! [65]

ये दोनों अश्लीलता की चरमसीमा के उदाहरण हैं। सारांश यह है कि नयी कविता में भद्देपन अथवा अश्लील ता को श्री अज्ञेय ने मात्र एक-दो जगह अपनाया था, पर दिगंबर कवियों ने उसे तो भावाभिव्यक्ति का एक सबलतम साधन ही माना और उसका मुक्त रूप से प्रयोग किया। हम दिगंबर कविता को 'नीली कविता'(Blue Poetry) कहें, तो किसी को कोई अपत्ति नहीं होनी चाहिये। कुछ प्रसंग सभा-सम्मेलनों में पढ़े नहीं जा सकते, आलोचना अथवा शोधकार्य के अवसर पर उद्धृत भी नहीं किये जा सकते क्योंकि असामाजिकता का भद्दापन है और अश्लीलता मर्यादा का उल्लंघन है।

64) "दि2. 'कास्मिक जाति केलियें' (श्री नग्नमुनि) पृ.-72
65) 'वही' 'ब्रह्मपदार्थ', श्री नग्नमुनि

छठा अध्याय

जनता पर प्रभाव और परिवर्तनः

1. साक्षरजनता : हमारे देश की जनता पर जब साहित्य के प्रभाव का प्रश्न उठता है, तो झट हमारे मन में जनता की साक्षरता-निरक्षरता के अनुपात का स्मरण हो आता है। अतः यहाँ 'जनता' से अभिप्राय 'साक्षर जनता', वह भी विवेच्य कविता को पढ़ने-समझने, उसका विश्लेषण करने में 'सुयोग्य जनता' से होता है। ऐसी जनता का क्या एक भी प्रतिशत होगा? यह बात विचारणीय है। एक प्रतिशत जनता में मानसिक परिवर्तन होना न होना, दोनों बराबर हैं।

इस अवसर पर कहना आवश्यक है कि हिन्दी की 'नयी कविता' और तेलुगु की 'दिगम्बर कविता', दोनों भी उन-उन भाषा-साहित्यों के अध्येताओं में विवादास्पद वस्तु रहीं। नयी कविता प्रगतिवादोत्तर काव्य-प्रक्रिया है जिसके "तारसप्तक" [1943] के साथ उदीयमान 'प्रगतिवाद' पर पर्दा-सा पड़ गया। पहले यह 'प्रयोगवाद' नाम से आविर्भूत हुई थी। श्री राजनाथ शर्मा के अनुसार "पाठकों को आकर्षण में डालने केलिए इन लोगों ने एक तरफ़ तो कुछ प्रगतिवादी साहित्यकारों का सहयोग लिया, अपनी रचनाओं के साथ उनकी प्रगतिवादी रचनाएँ प्रकाशित कीं और दूसरी ओर साहित्यिक चमत्कारवाद का सहारा लिया। पाठकों को चौंकाने केलिए इन्होंने यह प्रचार किया कि हमारा साहित्य और उसका माध्यम- भाषा दोनों ही अत्यधिक रूढ़िग्रस्त और प्रगतिशील रूप-धारण कर चुके हैं, वे नवीन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हैं, इसलिए इनका बहिष्कार कर नये नये प्रयोग करने चाहिए और उन लोगों ने नये-नये अप्रचलित शब्दों, वाक्यों, प्रतीकों, बिम्बों इत्यादि का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। पाठक इन नये प्रयोगों को देखकर चौंके और साहित्य में इन लोगों की चर्चा होनी आरम्भ हो गयी"[1]

2. श्री राजनाथ शर्मा का वक्तव्य : श्री राजनाथशर्मा के अनुसार "प्रयोगवाद" की जन्मभूमि यूरोप है जहाँ प्रतीकवाद, छायावाद, अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद, फ्रायड़वाद आदि ऐसे ही नये कला-रूप ये [2] डॉ. देवराज

1) *"हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' (श्री राजनाथ शर्मा) प्रयोगवाद पृ.-642-643*

के शब्दों को वे उद्धृत करते हैं कि हिन्दी-प्रयोगवाद भी केवल युग से प्रभावित नहीं है..... वह बहुत हद तक इलियट, पाउंड आदि की शैली के अनुकरण में उपस्थित हुआ है। ["नयी कविता-प्रथम अंक][2] प्रयोगवाद को श्रीशर्माजी मूलतः पलायनवादी काव्य-धारा मानते हैं। "नयी कविता"[3] शीर्षक से सन 1954 में डॉ.जगदीश गुप्त के सम्पादन में अर्ध-वार्षिक पत्र के सम्पादन के साथ यह लब्ध-प्रतिष्ठ होने लगा। "धर्म युग"[4] और 'दिनमान' ने भी श्री अज्ञेय को मान्यता देने में सफलता प्राप्त कर ली।

श्री शर्मा जी के शब्दों में प्रयोगवाद का नाम 'नयी कविता' में बदलकर "अपनी कुख्याति का विसर्जन कर एक छद्म रूप में सामने आया .... ध्वंस के उपरांत भावी निर्माण के प्रति अड़िग आस्था का रहना पहली शर्त है। परंतु प्रयोगवाद ध्वंसात्मक ही अधिक रहा है। और उसका कारण है इसके मूल में स्थित हताशा, पलायन, कुंठा आदि का प्राबल्य और एक स्पष्ट दृष्टि (विज़न) का अभाव। [5]

श्री शर्माजी के कथनानुसार 'नयी कविता' पनपती हुई प्रगतिशील कविता की तिरोगामिनी है, उसने शोषित वर्ग एवं जागृत होनेवाले युवा पीढ़ी के प्रति अन्याय किया। एक प्रकार से बुर्जुआ प्रवृत्ति को बढ़ावा देने में इसने सफल प्रयास किया। पूँजीवादी इस व्यवस्था में नये माल को, माल अनुपयोगी और सड़ा हुआ भी क्यों नहो, प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ विज्ञापन दे जाती हैं, आकाश में उठा देती हैं, इतना ही नहीं, सरकार भी ऐसे माल के विक्रय को प्रोत्साहित करती है। श्री शर्माजी के शब्दों में 'नयी कविता' का यह परिचय-सार है। एक प्रकार से इसे वे प्रतीपगामी काव्य-प्रक्रिया कहते हैं। इन कवियों के प्रारम्भिक यत्न के सम्बन्ध में आपका मानों कहना है कि उन्होंने सड़क के चौराहे पर "धड़ा फोड़कर या कपड़ा फ़ाड़कर" ["धटं भित्वा पटं छित्वा"] वाली लोकोक्ति के अनुसार पाठकों की दृष्टि आकृष्ट करनी चाही।

शर्माजी के कथनों में सत्यांश की झलक तो मिलती है, परंतु हमें सभी कवियों के सन्दर्भ में यह धारणा रखना उचित नहीं जँचता। शायद

---

2) वही- पृ.-645-646
3) "नयी कविता" अंक 4,5,6 और 8
4) "धर्मयुग" 3,मई 1964, 13 अगस्त 1967, "दिनमान", नवम्बर, 1968
5) "हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास" (श्री राजनाथ शर्मा) प्रयोगवाद पृ.-650-651

नके विचार में अज्ञेय ही रहे होंगे जिनके कारण प्रगतिवाद को भारी
ट लग गयी थी। परंन्तु नये कवियों में भी कई एक ऐसे हैं जो प्रगतिशील
चार रखते हैं, जो मानवतावाद के अग्रगामी हैं और सामाजिक दायित्व
प्रति नितान्त जागरूक हैं।

3. दिगम्बर कविता का जनता पर प्रभाव : तेलुगु की दिगम्बर
विता के प्रति भी जनता की प्रतिक्रिया प्रायः वही है जो हिन्दी की
यी 'कविता' के विषय में है, कारण भी इस प्रान्त की जनता में साक्षरता
ी कमी है। इस कविता का विरोध ही पहले हुआ, भले ही रसास्वादन
ी पाठक कर रहे थे। पाठकों में निद्रित कुंठाओं के बहिर्गमन के द्वार
 रूप में दिगंबर कविता कृतकृत्य तो हो सकी। परंतु यौन-प्रतीकों
था अश्लील वर्णनों के कारण अपभ्रष्ट कहलाने लगी।

दिगम्बर कविता का लक्ष्य व्यक्ति में सुप्त चैतन्य को जागृत करना
ः अथवा उसके लेखकों में उद्दीप्त क्रोध को निकास देना है, यों सामाजिक
यथार्थ को पाठकों के सम्मुख पहुँचाना है किंवा राजनैतिक नेताओं के
प्रति अपनी खीज, क्रोध व कुढ़न को प्रदर्शित करना है, हम नहीं निर्धारित
कर सकते। किंतु इन सभी प्रतिक्रियाओं में उसने ठोस सफ़लता प्राप्त
कर ली है। सीधे राजनीतिज्ञों की कड़ी से कड़ी आलोचना के साथ
गाली-गलौज दैने के कारण सरकार ने इन पर निगरानी रखी। आपात
स्थिति [EMERGENCY] में श्री चेरबंडराजु को सन 1971 से (और फिर
सन् 1974 में भी] करीब दो वर्ष भर कारावास भुगतना पड़ा और वे
अब नहीं रहे हैं [6]

निष्कर्ष रूप में हम सकते है कि हिन्दी एवं तेलुगु की विवेच्य
दोनों काव्य-प्रक्रियाएँ अपने आप में नयी हैं, आकर्षक हैं और सामाजिक
दायित्व से खाली बिलकुल नहीं हैं। **दोनों आन्दोलन भी नहीं हैं।** भारतेंदु
के द्वारा मंडली में स्वतंत्रता-संग्राम में हाथ बँटानेवालों को एकत्रित करने
केलिए देश-भक्ति एवं राष्ट्र-प्रेम जागृत करने-जैसी, इन प्रक्रियाओं के
अगुए कवियों में, चेतना नहीं है, इनमें खाली व्यक्ति-चेतना है जिसके
द्वारा सफ़ेद कागज़ पर काली स्याही पोतकर जनता में परिवर्तन देखने
की उमंग मात्र है।

पुरानी कविता एवं अब तक प्रचलित भाषा-शैली एवं शिल्पगत
कमजोरियों की ओर इशारा करनेवाले इनमें वह चैतन्य भी नहीं कि भाषाई
शक्तिमत्ता से जनता का संगठन करके बढ़ा देने का वे प्रयास करते।
प्रारम्भ में नयी कविता प्रतीपगामी रही, तो भी उत्तरोत्तर सामाजिक न्याय

---

6) "ना जीवित रेखलु' (श्री चेरबंडराजु) 13-14

की ओर सजग बनती जाने लगी ; परंतु दिगम्बर कविता अतिवाद से प्रारम्भ होकर विच्छित्ति की दशा पर आ पहुँची है जो अब उन कवियों में न वह जोश है, न वह आग है न वह एकता ही है

4. जनता में परिवर्तन : साहित्य का समाज पर प्रभाव अवश्य रहता है जैसे कि समाज का भी साहित्य पर प्रभाव रहा करता है। लेखक दोनों के बीच की कड़ी है। उसका सबलतम साधन कविता है। कविता में उस शक्ति की संस्थिति में विश्वास किया जाता है जो वह लोगों की चित्तवृत्तियों में परिवर्तन लाने में समर्थ रहती है। किंतु **न तो हिन्दी की नयी कविता जनता में कोई परिवर्तन ला सकी न ही तेलुगु की दिगम्बर कविता**। इसका कारण देश की जनता का निरक्षर होना है, अशिक्षित होना है, दारिद्र्य में सड़ना है; कल को भूल जावें, आज आगे पेट की पूर्ति की समस्या है; अतः **किसी भी काव्य-प्रक्रिया द्वारा समाज अथवा उसके नागरिकों में भलाई अथवा प्रगति की आशा करना मूर्खता होगी।** देश के स्वातन्त्र्य के सन्दर्भ में जो राष्ट्रीय आन्दोलन हुआ था अथवा उसके योग्य साधन को सुरूप देनेवाली खडी-बोली हिन्दी का आन्दोलन चला था, वैसा आन्दोलन जब चले-वह भी राष्ट्रीय स्तर पर-तब तक जनता में परिवर्तन की संभावना सपना मात्र ठहरेगा। अतः नये कवियों अथवा दिगम्बर कवियों को सामाजिक परिवर्तन लाने में अशक्त ठहराकर उन्हें दूषित करने का हमें अधिकार नहीं है। जब टी.वी.के द्वारा "रामायण" और "महाभारत" में प्रदर्शित नैतिकता लोगों पर प्रभाव ड़ालकर उनमें परिवर्तन लाने में विफ़ल रहे, तब साहित्य, वह भी कम संख्या के लोगों की पहुँच की विधा, 'कविता' में वह बूता कैसे रहे?

सप्तम अध्याय

नयी कविता के आलोचक :

1. "तारसप्तक" के प्रकाशन से नयी कविता का आविर्भाव हो गया। यदि किसी नाम के बिना ये कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होतीं अथवा काव्य-संकलनों के रूप में निकलतीं, तो विवाद की कोई भी बात नहीं होती। लेकिन श्री अज्ञेय जैसे महान प्रतिभाशाली लेखक अपने नये साथियों को जुटाकर मानों विज्ञापन दे चुके थे कि आज से हम नयी कविता लिख रहे हैं। उन्होंने यह भी अपने प्रथम संकलन में घोषित किया था कि ये कविताएँ किसी स्पष्ट अथवा बनी-बनाई राहों में चलनेवाली नहीं बल्कि राहों के अभी अन्वेषी हम इन्हें चला रहे हैं, अर्थात् लक्ष्य में नयापन है और मार्ग अनिश्चित है। इसी से इस कविता को प्रयोगवाद नाम भी दिया गया क्योंकि ये कवि अपने को अन्वेषण के प्रयोक्ता कह चुके।

2. **डॉ. व्दारिका प्रसाद सक्सेना:** डॉ. व्दारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार एक ऐसी काव्य-धारा का श्री गणेश हुआ जिसमें न तो छायावाद की-सी मधुर एवं सकुमार कल्पनाओं की रंगीनी थी और न जिसमें प्रगतिवाद की सी ठोस यथार्थ की शुष्कता एवं रूक्षता थी, अपितु जिसमें प्रयोगशीलता के प्रति ललक थी, कविता की नई-नई राहों के अन्वेषण की प्रवृत्ति थी, छायावादी रोमांटिक भावुकता से छुटकारा दिलाने की प्रेरणा थी, नवीन परिवर्तनों से विक्षुब्ध समवेदना की नयी सौंदर्य-दृष्टि प्रदान करने की उत्कंठा थी, व्यक्ति की इकाई तथा समाज की व्यवस्था के बीच संबंध को स्वर देने एवं उसे शुभ बनाने की लालसा थी। काव्य का सामाजिक महत्व एवं स्वीकृति का आग्रह था और जिसमें सादृश्यमूलक अलंकारों के स्थान पर बृहत्तर अर्थों को प्रतिध्वनित करनेवाले स्वतन्त्र स्फूर्त प्रतीकों एवं सजीव बिम्बों को सजाकर एवं सँवारकर रखने केलिये अधिक जोर दिया गया था। इस काव्यधारा को प्रयोगवाद नाम दिया गया और 'तार सप्तक' के प्रकाशन की तिथि से इसका शुभारंभ माना गया।[1] .... शहरी जीवन, शहरी परिवेश और विशिष्टीकरण आपके विचार में नयी कविता की देन है। डॉ. सक्सेना उदारवादी सहृदय आलोचक हैं। इन पंक्तियों में आप एक तरफ़ छायावादी विभिन्न प्रक्रियाओं की कविता से

1) दे. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास ले. श्री द्वारिका प्रसाद सक्सेना) पृ. 409

नयी कविता की विशिष्टता दर्शाना चाहते हैं और साथ ही इन कवियों में निहित प्रयोगशीलता एवं नये अलंकारों, प्रतीकों एवं बिम्बों की प्रशंसा भी करते हैं। वास्तव में प्रत्येक कवि अलंकार, प्रतीक, बिम्बादि क्षेत्रों में भी नव्यता लाने का ही प्रयास करता है। स्पष्ट है कि डॉ. सक्सेना श्री अज्ञेय और उनके साथी कवियों के प्रति श्रद्धावश उपर्युक्त वचन कह जाते हैं।

3. **श्री पद्मधर :** आपके विचार में यह नवीनता का आंदोलन है जो मात्र-रूप के वस्तु-निरपेक्ष चमत्कारों के अनुसन्धान से जुड़ा होता है जहाँ हमें शिल्प-सम्बन्धी नवीनता की चर्चा देखने को मिलती है।

आपका कहना है कि साहित्य के क्षेत्र में अब तक जो वस्तुएँ, जो पात्र, जो अनुभूतियाँ अस्पृश्य और अकाव्यात्मक मानी जाती रहीं, उन्हीं में सौंदर्य दिखाई पडने लगा। भारतेन्दु ओर उनके सहयोगियों तथा श्रीधर पाठक ने सामाजिक चेतना की ओर दृष्टि उन्मुख कर सामिाजक जीवन को प्रभावित करनेवाले दृश्यों, व्यापारों और प्रश्नों को लिया। बाढ़, भुखमरी आदि की काव्य केलिए लघु समझी जानेवाली वस्तुओं को काव्य का विषय बनाया [2] आप लघु मानव की चर्चा भी करते हैं और उपेक्षित पात्रों को वाणी देनेवाले कवियों के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं। तेलुगु में भी श्री श्री ने 'कुक्कपिल्ला, अग्गिपुल्ला, सब्बुबिल्ला-कावेवी कवित कनर्हं,[2] कहा था जिसका भावार्थ है कि कुत्ते का पिल्ला, अंगार-शलाका, साबुन की टिकिया-कुछ भी हो, कविता के अयोग्य नहीं हैं। सम्पादक पद्मधर अनुभूतियों को क्षणों में गुजरनेवाली कहकर उन्हें सखंड न मानने का उद्‌बोधन-सा देते हैं क्योंकि क्षणों में जीनेवाला मानव भी संपूर्ण होता है और क्षणिकानुभूति भी सम्पूर्ण होती है। "कवि की प्रत्येक अनुभूति कविता का विषय है।" अनुभूति छोटी-बड़ी नहीं होती है। अनुभूति कोई शास्त्र-निर्देशित परिपाटी या अनुगामी वस्तु नहीं, वह व्यक्तित्व द्वारा भोगे गये सत्य की प्रतीति है।[4] श्री पद्मधर के मत में मार्क्सवादी दर्शन ने व्यक्तित्व की उपेक्षा कर दी। व्यक्ति समूह की एक यांत्रिक इकाई बन गया[5] प्रयोगवाद ने व्यक्ति के मन में यथार्थ के गहन स्तरों को खोलने

---

2) नयी कविता (सं. पद्मधर) पृ.9
3) महाप्रस्थान (श्री श्री)
4) नयी कविता (सं. पद्मधर) पृ.14
5) वही -- पृ. 16

का प्रयत्न किया..... मध्यवर्गीय व्यक्ति-मन की उलझी संवेदनाओं को अपना कथ्य बनाता है।...... प्रयोगवाद ने व्यक्ति-द्वारा भोगे हुए छोटे सत्य को भी उधार-- लिये हुए बडे सत्य से उच्च माना.... जीवन को जीवन के रूप में देखा, इसमें कोई सीमा नहीं निर्धारित की।[6] अंततः सार संकलित मन्तव्य यों दिया गया है--

क्षणबोध, अन्तर्मन की अदृश्य शक्तियों और व्यवसायों, संवेदनाओं, मुक्त साहचर्य की प्रतीतियों, नये बिम्ब, प्रतीक, उपमान, छन्द से मुक्त शिल्प की छवि को लेकर प्रयोगवाद नयी कविता में विलीन हो गया।[7]

श्री पद्मधर के विचार नयी कविता के विषय में बहुत उपयुक्त जँचते हैं, परंतु उनके प्रयोगवाद का नयी कविता में विलीन होना क्या है, इसका आशय स्पष्ट ही यह हो जाता है कि किसी के कहने मात्र से कि वह प्रयोग कर रहा है, उसे मान्यता देने की जरूरत नहीं है। कवि कविता लिखता है, अपने भावों, अनुभूतियों, संवेदनाओं व साथी भाई-बहनों इत्यादि के प्रति अपने स्पन्दनों को वाणी देने भर का काम करता है, न कि प्रयोग करता अथवा वाद लिखता है। इतनी छोटी-सी वात को समझने से क्यों कई विद्वान् आलोचक चूक गये, यह विचारणीय विषय है।

4. **डॉ. राकेश गुप्त और श्रीऋषिकुमार चतुर्वेदी :** 'नयी' शब्द के प्रयोजन के प्रश्न को उठाकर डॉ. जगदीश गुप्त का यह समाधान सम्पादक महोदय प्रस्तुत करते हैं-

किसी काव्य-कृति का कविता होने के साथ ही 'नयी' होना अभीष्ट है। वह नयी हो और कविता न हो, यह स्थिति साहित्य में कभी स्वीकार्य नहीं हो सकती। फिर नयी कविता का विरोध आज नयेपन के कारण उतना नहीं हो रहा है, जितना इस कारण कि जो बाह्यतः और साधारणतः कविता नहीं लगती, उसे उसके अन्तर्गत कविता कहा जाता है[8]

उक्त उद्धरण की समीक्षा में सम्पादकों का कहना है कि-- स्पष्ट यह है कि कविता के पहले 'नयी' विशेषण उसके नियामकों को इसलिए लगाना पड़ा कि वह कविता के परम्परागत रूपविधान से इतनी अधिक

6) नयी कविता सं पद्मधर पृ.-17
7) -- वही -- पृ. 18
8) दे. नया सप्तक, नयी कविता (प्रस्तावना) पृ.-9

भिन्न थी कि ऊपर से देखने पर कविता लगती ही नहीं, जैसे किसी नारी ने पुरुष की वेषभूषा धारण कर ली हो। [9]

डॉ. जगदीश गुप्त और दोनों सम्पादकों ने एक सारवान तथ्य पर अपनी दृष्टि केंद्रित की है; यद्यपि हर कवि को अपनी कविता उसके पूर्व की कविता से नयी लगती हो, उसने कभी उसे नयी कहने की चेष्टा नहीं की थी। फिर इन महाशयों को ऐसा कहने की क्या आवश्यकता पड़ी? स्पष्ट ही पाठकों की माँग को ध्यान में रख कर नहीं, बल्कि उनकी दृष्टि को आकृष्ट करने केलिये। फ़िर अपने विशेषण (नयी) के समर्थन में उन्हें लम्बी भूमिकाएँ लिखनी पडीं, प्रस्तावनाएँ करनी पडीं और वैयक्तिक रूप से भी हर कवि को किस प्रकार वह नयी कविता का निर्माता है, यह सफ़ाई देने का कष्ट भी करना पड़ा।

5. **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी :** वाजपेयी जी प्रगतिवादियों को सुझाव देते हुए कहा कि प्रगतिशील साहित्यिक केलिए आवश्यकता यही नहीं कि वह नये विचारण को लेकर साहित्य के बगीचे में उसे इस प्रकार सजा दे कि वह चार ही दिन में सूख न जाय। आवश्यकता यह भी है कि वह अपनी विचारलता-को कला के संजीवन रस से सिंचित करे और उसे उपवन के अन्य सुन्दर वृक्षों और बेलियों के साथ लहलहाने योग्य बनाये[10] युग की सब से विवादास्पद प्रयोगवादी धारा (नयी कविता) का भी उन्होंने विवेचन किया। वाजपेयी जी का यह विवेचन इतना तीखा, कटु और प्रहारात्मक था कि उस धारा के कुछ साहित्यकार तो इन प्रहारों को न सह सकने के कारण उस खेमे को छोड़कर बाहर आ गये और कुछ पत्र-कारिता के रूप में आलोचना-प्रत्यालोचना करने लगे। किंतु फिर भी वाजपेयी जी के तीखे प्रहारों तथा तर्कों के समक्ष ने टिक न सके[11] वाजपेयी जी ने स्वयं कहा है कि प्रयोगवाद (नयी कविता) केलिए मेरी चौथी पुस्तक में एक भी संवहना का शब्द नहीं है, बल्कि ऐसी तीव्र समीक्षा है जिससे बहुत से प्रयोगवादी तिलमिला उठे हैं। कुछ ने सफ़ाई देने की कोशिश की है तथा एक महाशय ने उस निबंध को मेरा बचकाना प्रयास माना है। तारसप्तक महारथियों केलिये मेरी उस निबंध की उर्वरता सचमुच अभिमन्यु का बचकाना प्रयास ही है। खैरियत यह हुई कि यह अहिंसात्मक युद्ध किसी के सिर नहीं बीता, पर हृदय-परिवर्तन बहुतों का हुआ है।

9) दे. नया सप्तक, नयी कविता पृ.-9
10) आधुनिक साहित्य, नंददुलारे वाजपेयी, पृ.- 375
11) इस सन्दर्भ में डॉ. योगोश्वरी शास्त्री की कृति नंद दुलारे वाजपेयी: स्वच्छन्दतावादी आलोचना के संदर्भ, में द्रष्टव्य है।

बहुत से प्रयोगवादी नये सिरे से समझदार हो गये हैं[12] और कोई तो खेमा छोड़कर बाहर चले गये हैं। इस प्रकार प्रयोगवादी धारा के इन साहित्यिकों को वाजपेयी जी का बहुत बड़ा प्रवेश ही बे-राहों के अन्वेषी, राहों में भटकते-भटकते वाजपेयी जी द्वारा रास्ते पर लाये गये।[13] उपर्युक्त वक्तव्यों से ये निष्कर्ष निकलते हैं:

प्रथम निष्कर्ष यह है कि **प्रयोगवादी रचनाएँ पूरी तरह काव्य की चौहद्दी में नहीं आतीं। ये अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त हैं।**

दुसरा निष्कर्ष यह है कि ये रचनाएँ वैचित्र्य-पिय हैं, इनमें बृत्ति का सहज अभिनिवेश नहीं है।

तीसरा और अन्तिम निष्कर्ष यह है कि ये रचनाएँ ऐसी हैं कि **नये किवि अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं हैं** और उनकी रचनाएँ सामाजिक उत्तर दायित्व को पूरा नहीं करतीं।

ऊपर के निष्कर्षों से यह स्पष्ट है कि आचार्य वाजपेयी जी नयी कविता से बिलकुल सहानु भूति नहीं रखते, उल्टे उसके प्रति अपनी ऋणात्मक दृष्टि को अभिव्यक्त करते हैं। प्रयोगवाद को तो आप कविता के घेरे में स्थान ही नहीं देना चाहते हैं। कविता **में, आपके विचारानुसार, बुद्धिवाद केलिए स्थान नहीं है।** बौद्धिक दुरूहता पैदा करने से ही आचार्य केशवदास को कठिन कवि[14] और क्लिष्ट काव्य का प्रेत[15] इसीलिए कहा गया था। ऐसे भावुक चमत्कार-स्रष्टा को यह उपाधि प्रदत्त की गयी, तो इन नये कवियों को क्या कहना पड़ेगा?

डॉ. योगेश्वरी शास्त्री जी ने अपने शोध-ग्रंथ नन्ददुलारे वाजपेयी में विवेचन करते हुए कहा है कि इन प्रयोगवादियों की कविता की कठिनता, जटिलता, दुरूहता, उद्देश्यहीनता और नीरसता आदि का जितना स्पष्ट विवेचन वाजपेयी जी ने किया, वैसा अन्य आलोचक अभी तक नहीं कर सके हैं। इन साहित्यकों की दूषित प्रवृत्तियों पर प्रतिबंध लगानेवाले, नियंत्रण करनेवाले वे ही प्रथम आलोचक हैं। इन कवियों के संघटित चक्र-व्यूह के भेदन का कार्य उन्हीं से प्राय: हुआ।[16] इस प्रकार की दूषित प्रवृत्तियों को पाठकों के समक्ष निर्भिकतापूर्वक वाजपेयी जी ने ही सर्व-प्रथम रखा।

12) नया साहित्य, नये प्रश्न, निकष, नंददुलारे वाजपेयी) पृ-20
13) नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. योगेश्वरी शास्त्री पृ.-421
14) हिन्दी साहित्य का इतिहास (आचार्य रामचंद्रशुक्ल) पृ.-144
15) केशव की काव्य-कला (पं.कृष्ण शंकर शुक्ल) पृ.-126
16) नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. योगेश्वरीशास्त्री पृ.-421

आचार्य वाजपेयी जी के निर्णयों एवं निष्कर्षों को स्वीकार करने में हमें आपत्ति नहीं होनी चाहिये। परंतु आप और कुछ समय जीवित रहते, तो परवर्ती नये कवियों तथा उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण थोड़ा सा बदल लेते, और अपना पुनर्मूल्यांकन देते, ऐसा अनुमान किया जाता है।

6. **श्री अज्ञेय:** कवि मूलत: भावुक होता है और आलोचक विचारशील। भावुकता अनुभूति-सम्बन्धी है और विचारशीलता बुद्धि से सम्बधित है। कवि होते हुए आलोचक भी रहने की चेष्टा नये कवियों ने की है, परंतु इनका सारा प्रयास अपनी कविता की वस्तुगत अवं शिल्पगत विशेषताओं की झाँकी पस्तुत करना-सा लगता है और पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से अपनी रचनाएँ किस प्रकार नयी एवं विशिष्ट हैं, यह दर्शाने का प्रयास मानों इनका उद्देश्य रहा है। हरेक नये कवि ने इस प्रक्रिया अथवा धारा की कविता एवं विशेष रूप से अपनी कविता के सम्बन्ध में थोडी बहुत चर्चा की थी। इस धारा के अगुए श्री अज्ञेय तथा प्रथम आलोचक के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करके नयी कविता में पदार्पण करनेवाले डॉ. रामविलास शर्मा और नये कवि के रुप में भारी यश की प्राप्ति कर चुकनेवाले श्री मुक्तिबोध के विचारों पर भी थोड़ा ध्यान देना इस अवसर पर बहुत आवश्यक है।

श्री अज्ञेय तारसप्तक में संकलित अपनी कविताओं के वक्तव्य में कहते हैं --

युग यथार्थ के समक्ष छायावादी रूपाकर और संवेदना-दृष्टि अनुपयुक्त तथा सर्वथा अपर्याप्त हो चुकी थी। परिवर्तित भाव-बोध केलिए न उपकरण थे न उनकी संकेत-दिशाओं का आभास ही था। भाषा, छन्द, उपमान, प्रतीक, भाव-भूमियाँ सभी अस्मिभूत हो चुके थे, यहाँ तक कि काव्यगत संगीत-तत्व और तुकान्त तक रूढ़ बन गये थे। नये रचनाकार अपनी सामर्थ्य और दृष्टि के अनुसार इस स्थिति से संघर्ष कर रहे थे[17]

इस अवतरण में प्रथम वाक्यान्तर्गत कथन सौ फ़ी सदी सत्य है।

छायवादी-रहस्यवादी कविता पूर्णत: असामाजिक व्यक्तिवाद की मूर्तता से भरी होकरा जीवन से पलायन है या जीवन से अनास्था कह नहीं सकते।

---

17) अ. (सं. अज्ञेय) पृ.-194

प्रयोगशीलता के सम्बन्ध में श्री अज्ञेय कहते हैं:

तारसप्तक की प्रयोगशीलता का प्रेरणा-स्रोत बनी साधारणीकरण और सम्प्रेष्य की समस्या। यही समस्या कवि को प्रयोग-शीलता की ओर प्रेरित करती है[18]

इसके पूर्व के अवतरण में श्री अज्ञेय नयेपन की चर्चा कर चुके थे जिस अवसर पर कवियों की असामर्थ्य एवं संघर्षशीलता की बात कर चुके थे। वे उपर्युक्त शब्दों में बहुत सँभलकर यह सूचना-सी देते हैं कि आप भी खुद ऐसे संघर्ष में पड़ रहे और इसी हेतु आपको प्रयोग करने की सूझी; प्रयोग किस बात का? इसका भी आप संकेत कर चुके हैं कि साधारणीकरण का है, अर्थात छायावादी-व्यक्तिवाद को समाप्त करके सामाजिकता का श्री गणेश करना अपना अभीष्ट है। इस प्रकार व्यक्ति-सत्य को व्यापक सत्य बनाने की आपकी उमंग उक्त शब्दों में स्पष्ट है।

इसी सत्य को लेकर दूसरे सप्तक की भूमिका में श्री अज्ञेय और दावे के साथ कहते हैं --

कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अच्छी तरह से स्पष्ट कर सकता है। [19]

उक्त कथन के पीछे तारसप्तक (प्रथम भाग) पर निकले आक्षेपों की हमें सूचना मिल जाती है जिसका उत्तर देने का दूसरा संकलन अच्छा मौका उन्हें दे चुका। कवि आलोचक न हो ऐसा कहीं भी नियम नहीं है। अतः वास्तविक आलोचक कवि से बढ़कर कोई और नहीं हो सकता। सृजनात्मक शक्ति से संपन्न कवि विश्लेषणात्मक-विवेचनात्मक शक्ति से भला खाली रहेगा? वैसे तो सामाजिक जीवन के खंड एवं पूर्ण विश्लेषण के फलस्वरूप ही तो कविता का कर्म चलता है। इस तथ्य के अनुसार श्री अज्ञेय का यह कथन संपूर्णतः सत्य है। परंतु आप उक्त कथन को स्वयं की कविताओं का विवेचन, उनके गुण-दोषों का विश्लेषण अथवा सामाजिक उपादेयता का मूल्यांकन करते समय व्यक्तिनिष्ठ न रह कर विषय-बद्ध रूप से अमल कर सकते हैं? यह परीक्षणीय विषय है।

18) अ. (सं. अज्ञेय) पृ.-270
19) आ. (अज्ञेय), भूमिका पृ.-7

इसी प्रकार प्रयोग शब्द पर चले आक्षेपों को ठुकराते हुए आप अधिक ज़ोर देते हुए कहते हैं--

प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है, वह साधन है और दोहरा साधन है। [20]

प्रयोग के वाद के दायरे में से हटकर उसे संपूर्ण कविता के रूप में न देखकर एक साधन के रूप में स्वीकार करने का श्री अज्ञेय का आग्रह इसके (प्रथम संकलन के वक्तव्य के) कथन का संशोधन है जिसे मानने में किसी को कोई अपत्ति नहीं होगी।

अन्तत : तीसरे सप्तक के आपके एक वाक्य से नयी कविता के विवादों का अंत देखने की उनकी आकुलता व्यक्त होती है--

तारसप्तक एक नयी प्रवृत्ति का पैरवीकार माँगता था, इस से अधिक कुछ नहीं।[21]

इस से स्पष्ट है कि आप उदीयमान एवं विकासशील कवियों के रूप में नये कवियों को प्रयत्न करनेवाले व्यक्ति मान लेने का आग्रह करते हैं।

7. **डॉ. रामविलास शर्मा :** डॉ. रामविलास शर्मा प्रथमत: आलोचक हैं, परंतु मानवतावादी होने के कारण आप में कवि का हृदय अवश्य है। आपका कहना है--

प्रगतिशील कविता ने छायावादी अस्पष्ट भाषा की दुरूहता, निराशावादी भावनाओं और पलायनवादी प्रवृत्ति को दूर किया, जीवन में आस्था, दलित और शोषित जनता की मुक्ति की उत्कंठा, सामाजिक दायित्व की भावना व्यक्त की [22]

मानों अपने इस दृढतापूर्ण विचार को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं-- अनेक ऐसे कवि लेखक थे जिन्होंने प्रगतिशील साहित्य की परम्परा को समृद्ध सिया। भले ही ये सभी किसी एक वैचारिक चिन्तन को लेकर न चले हों, सभी के लक्ष्यों में एकता तथा समानता देखी जा सकती है। इसका सीधा-सा कारण यही है कि ये सब जन-जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं तथा यथार्थ प्रसंगों से संवेदना के स्तर पर जुड़े

---

20) आ. वही पृ.-7
21) -वही- पृ.-7
22) आस्था और सौंदर्य (डॉ. रामविलास शर्मा) पृ.-249

रहे हैं। जहाँ जन-जीवन के सम्बन्ध-में धनिष्ठता का अभाव हो गया, वहाँ प्रगतिशील काव्य की कलात्मक शिथिलता तथा वैचारिक अस्पष्टता दोनों ही को लक्षित किया जा सकता है। [23]

यहाँ डॉ. रामविलास शर्माजी दो तथ्यों का उद्घाटन करते हैं। एक तो प्रगतिशील अथवा प्रगतिवादी काव्य-साहित्य के द्वारा छायावाद की विधिवत् समाप्ति का है, फिर प्रगतिशील साहित्य को आगे बढ़ाकर नयी राहों में यात्रा के आकांक्षी नये कवियों के वैचारिक चिंतन एवं जन-जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं को काव्य-वस्तु के रूप में स्वीकृत करने के औदार्य का है।

शिल्प के सम्बन्ध में भी आपका कहना है--

शिल्प कोई स्थिर और जड़वस्तु नहीं है, बल्कि विषय-वस्तु को काफी दूर तक प्रभावित करने की क्षमता भी श्खता है। साहित्य का रूप विषय-वस्तु की सीमाएँ निश्चित करके उसे संयत और नियन्त्रित भी रखे रहता है। यही कारण है कि एक-सी विषय-वस्तु हर प्रकार के काव्य रूप में सफ़ल नहीं हो सकती।[24]

इसी प्रकार डॉ. शर्माजी नयी कविता की भाषा को हिन्दी केलिए गर्व का विषय मानते हैं क्योंकि उसके बड़े-बड़े साहित्यकारों ने बोलचाल की भाषा को आधार बनाया। [25]

ऊपर के चारों अवतरणों में अलोचक-कवि नयी कविता की विषय -वस्तु, शिल्पगत सौंदर्य एवं स्वाभाविक भाषा इत्यादि बातों पर सुयोग्य विचार व्यक्त करते हैं जिन्हें मानने में किसी को कोई हिचक करने की जरूरत नहीं पड़ती।

8. **श्री गजानन माधव मुक्तिबोध :** ये तार सप्तक प्रथम संकलन के कवि हैं और उनकी लिखी रचनाओं की संख्या भी काफ़ी बड़ी है। इससे पता चलता है कि आपने न केवल अपने पूर्व के साहित्य मात्र का अध्ययन कर छोड़ा, बल्कि जीवन का भी गहन एवं विस्तृत अध्ययन कर लिया। इस दृष्टि से नयी कविता के अग्रदूत लेखकों-उन्नायकों में आपके मन्तव्य मूल्य के माने जाते हैं। साहित्य क्या है? इस पर आपका मत देखने योग्य है--

23) आस्था और सौंदर्य (डॉ. रामविलास शर्मा) पृ.-250
24) आस्था और सौंदर्य (डॉ. रामविलास शर्मा) पृ.-17
25) राष्ट्र-भाषा की समस्याएँ (डॉ. रामविलास शर्मा) पृ.-36

साहित्य का सम्बन्ध आपकी संस्थिति से है, आपकी भूख-प्यास से है, मानसिक और सामाजिक। अतएव किसी प्रकार का भी आदर्शात्मक साहित्य जनता से असम्बद्ध नहीं। [26]

इन चन्द शब्दों में जीवन का तथा साहित्य का निचोड़ मिल जाता है। मानसिक कहने से व्यक्ति-जीवन और सामाजिक कहने से सामूहिक जीवन, अर्थात् सभी अर्थों में साहित्य को जीवन का दर्शन कहा गया है। फिर जीवन केलिए मूलाधारी भूख-प्यास को न छोड़ना इस कवि की मानवतावादी दृष्टि का परिचायक है। अन्ततः संकेत रूप में आप कहना चाहते हैं कि जिस किसी भी बात की साहित्य में चर्चा की जाय, उसे आदर्शात्मक ही मानना पड़ेगा क्योंकि प्रयोजन रहित साहित्य कुछ भी जीवन में नहीं रहता।

श्री मुक्तिबोध वस्तु-तत्व को रूप-तत्व की अपेक्षा अधिक मूल्य देते हैं। सच्चे कवि की कविता में, आपके अनुसार, वस्तु-तत्व में इतनी शक्ति होती है कि वह स्वयं अपने रूप को लेकर आता है। अतएव मुख्यतः हमारे लिये वस्तु-तत्व प्रधान हो जाता है। [27]

इन शब्दों में श्री मुक्तिबोध कवि या लेखक के कथ्य को सर्वोपरि मूल्य देते हैं और उसमें इतनी शक्ति की अपेक्षा भी करते हैं कि रूप-पक्ष को वस्तु-पक्ष की जननी होना चाहिये। जटिलतापूर्ण आधुनिक जीवन में वस्तु-तत्व कितना ही एवं कैसा ही उत्कृष्टतापूर्ण क्यों न हो, वह रूप-तत्व के विषय में उतना ही उत्कृष्ट बन पडेगा, यों मान लेने में हमें संदेह होता है।

हमारे उक्त संदेह की पुष्टि में अपने एक दूसरे ग्रंथ में मानों वे यों प्रकट करते हैं-

शिल्प का विकास काव्य-व्यक्तित्व से अदूट रूप से जुड़ा हुआ है और शिल्प में व्यक्तित्व की क्षमता और सीमा, भाव और अभाव, सामर्थ्य और कमज़ोरी, ज्ञान और भ्रम सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष-रूप से प्रकट होते हैं [28]

इसी कथन को आप निम्न लिखित वक्यों में और स्पष्ट कर जाते हैं

अपने हृद्गत तत्वों को उनके मौलिक रूप-रंग और भार में स्थापित और प्रकट करने केलिये नये शब्द-संयोग बनाने या लाने पड़ते हैं।....

26) नये साहित्य का सौंदर्य-शास्त्र (मुक्तिबोध) पृ.-78
27) -- वही -- पृ.-62
28) नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबंध (मुक्तिबोध) पृ.-61

हमें नवीन वक्रोक्तियों और भंगिमाओं का सहारा लेना पड़ता है। साथ ही कल्पना-शक्ति भी नव-नवीन रूप-बिम्बों का विधान करती है जिससे मनस्तत्व अपने मौलिक रूप-रंग में प्रकट हो सके[29]

श्री मुक्तिबोध के सभी वक्तव्य वैज्ञानिक-से लगते हैं, परंतु आपने उपर्युक्त दोनों अवतरणों में जो कुछ कहा है, वह कवि के शिल्पगत अथवा अभिव्यक्ति-गत कठिनाइयों से सम्बद्ध है जिससे पाठक में आम तौर पर सहानुभूति जाग पड़ती है। लेकिन विचारणीय बात यह है कि कविता-पुत्री के प्रसव का यह कष्ट, क्या, उनके पहले के कवियों को सहना नहीं पड़ा था? वास्तव में इन कवियों का प्रयास अपेक्षाकृत सुलभ ही रहा क्यों कि पूर्व के कवियों को छन्द-निभाने, यति-प्रास, विशेषत: अन्त्यानुप्रास आदि अतिरिक्त काव्य-शास्त्रादिष्ट नियम सफ़लतापूनक निभाने का कष्टसाध्य यत्न करना होता था।

<u>दिगम्बर कविता के आलोचक :</u>

9. तेलुगु में दिगम्बर कविता एक बेजोड़ साहित्यिक प्रक्रिया है जो अज तक नव्यतम रहने का आदर पा चुकी है। प्ररम्भ में इसकी ओर संदेह की आँखें टकटकी बाँध लग चुकी थीं, बाद में 'इसमें क्या है? जरा पढ़कर तो देखें' की भावना जग पड़ी। पढ़कर इसमें क्या है? कैसी भद्दी बातें हैं? कहने की रीति क्या काव्य-देवी सरस्वती के योगय है? ऐसे ऋणात्मक प्रतिक्रियाशील पाठक भी हो सकते हैं और वाह! कैसी बात कही। बात कहने की क्या ही सुहावनी रीत है? काव्य के आँगन को कैसा पवित्र कर डाला कहनेवाले भी होते हैं।

यों तो दिगम्बर कविता की आलोचनाओं-समीक्षाओं में अधिकाधिक संख्या मौखिक आलोचकों की है। लिखित रूप से इनकी कविता पर आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करने वालों की संख्या एक हाथ की उंगलियों पर गिनी जा सकती है।

10. श्री वेल्चेरु नारायण रावः सर्वप्रथम कुछ खास मूल्यों की बातों का उल्लेख करने वाले श्री वेल्चेरु नारायणराव हैं जिन्होंने अपने 'तेलुगुलो कविता विप्लवाला स्वरूपं' [30](तेलुगु में कविता के विप्लवों का स्वरूप) नामक शोध-प्रबन्ध पर पी. हेच.डी. की उपाधि प्राप्त कर ली थी। उक्त शोध-प्रबंध के आठवें अध्याय का शीर्षक दिगम्बर कवित्वं

29) वही पृ. 3-4

30) इस शोध-प्रबंध को हैदराबाद बुक ट्रस्ट, हैदराबाद - 500 029 ने 1987 (प्रथम संस्करण) में प्रकाशित किया।

(दिगम्बर कविता) है जिसमें वे इस कविता को एक प्रकार से विद्रोही कविता कहते हैं। उनका कहना है कि इसके पूर्व की कविताएँ जीवन की वास्तविकता को छू न सकीं। दिगंबर कविता ने विद्रोहात्मकता अपनाकर कविता व्दारा, चित्रण में, शब्दों में और वस्तु में पूर्ण परिवर्तन लाने का कार्य किया। इस कविता का मुख्य कर्म यौन-प्रतीकों एवं हेय दृश्यों के साथ-साथ अश्लील शब्दों का सहारा लेकर पाठकों में ही नहीं, इतः पूर्व के कवियों में घनीभूत जड़ता को फ़ोड़ना था और वे उसमें कृतकृत्य भी हुए। इस प्रक्रिया से उन्होंने मानवता के मूल्यों को उद्बुद्ध किया, यह आश्चर्य की बात है। सभी दिगम्बर कविताओं में यद्यपि एक-सी काव्य-चेतना नहीं दिखती, तथापि क्षीयमान मूल्यों के प्रति सभी में विद्रोहात्मक भावना का लक्षण सामान्य है। किसी में ऋणात्मकता की अति हो सकती है, किसी में नकारात्मक भाव का आधिक्य हो सकता है, किसी में दूषण की प्रवृत्ति की मात्रा बढ़ी-चढ़ी हो सकती है, किंतु उनकी रचना-शैली में सिद्धान्तों का कोई कथनीय अन्तर नहीं है। श्री नारायणराव, शैली के ध्यान से, नग्नमुनि, भैरवय्या और चेरबंडराजु को विशिष्ट स्थान देते हैं। शेष तीनों की शैली को उनकी शैली से भिन्न मानते हैं। कविता के रूप में क्रांति लाने में प्रमुख तत्व नग्नमुनि, भैरवय्या और चेरबंडराजु में वे स्वीकारते हैं। श्री नारायणराव इन कवियों की रचनाओं में अश्लील का प्रसंग करते हुए श्री भैरवय्या के इन शब्दों को उद्धृत करते हैं--

फूहड़पन को अस्पृश्य वस्तु समझना हममें एक प्रकार का कायरपन है। दिगम्बर कविता के अन्तर्गत प्रयुक्त फूहड़ शब्दों का स्पन्दन यौन-भावनाओं को उत्तेजित नहीं करता बल्कि समाज का यथातथ्य-चित्रण करता है। [31]

अश्लील प्रयोगों के सन्दर्भ में श्री नारायणराव के विचार वैज्ञानिक-से जँचते हैं। उनका कहना है कि:

हर व्यक्ति में दो वांछाएँ क्रियाशील रहती हैं-- एक सुरक्षा की और दूसरी यौन-भाव की। ये दोनों एक ही प्राण-शक्ति के दो स्वरूप हैं। प्राकृत-स्थिति से इन दोनों ने कालानुरूपी क्रमबद्धता प्राप्त कर ली है। सभी सामाजिक धर्मों की भाँति यौन-नीति केलिए भी सामाजिक व्यवस्था की उपर्युक्त अनुल्लंध्यता की मात्रा होती है। किंतु, उससे परे की लोकातीत पवित्रता नहीं रहती। फिर भी मानव में गाढ़तम तत्व यौन-भाव है। इसलिए यौन-नीति अन्य नीतियों के समान इतनी जल्दी नहीं बदलती। इसके

31) दे. तेलुगुलो कविता वित्लवाला स्वरूपं, अष्टम अध्याय, पृ.-151

अतिरिक्त, सुरक्षा की वांछा से निकटस्थ सम्मेलन के फलस्वरूप यौन-भाव एवं अहंता में अभेदता का आभास पाया जाता है[32]

उपर्युक्त शब्दों में श्री नारायणरावजी के, एक विशुद्ध आलोचक के रूप में, वैज्ञानिक सत्य का उदूधाटन अधिक प्रस्फुटित है, न कि इन कवियों के प्रति एक सहृदय के रूप में सहानुभूति। पाठकों को चकरा देनेवाली बात यही है कि अश्लील एवं भद्दे प्रसंगों और गाली-गलौज़ के इतने खुले रूप का दर्शन इसके पूर्व इतना गाढ़ा कभी नहीं हुआ था। श्री नारायणराव मानव-जीवन से संस्पृष्ट विभिन्न विषयों के प्रसंगों की वैज्ञानिक चर्चा चलाकर इस बात को यों कहते जाते हैं कि पाठक के मन की चकराहट का शमन हो जाता है और वह इन कवियों की कथन-पद्धति को मान्यता देने केलिये राजी हो जाता है।

11. **श्री निकीता गूरोवः** नग्न मुनि के काव्य-दर्शन पर दो शब्द कोय्यगुर्रं (काठ का घोड़ा) के आमुख-रूप में कहते हुए लेनिनग्राड विश्वविद्या-लय के तेलुगु विभाग में अध्यापन का काम करनेवाले श्री निकीता गूरोव उक्त काव्य के लेखक श्री नग्नमुनि के काव्य-तत्व के सम्बन्ध में यों कहते हैं --

नग्नमुनि की कविता ताज़ा दूध के जैसे आकर्षक नहीं लगती, डाक्टर से निर्दिष्ट दवा की-सी रहती है। उसकी कविताएँ पाठकों को पुचकारने-दुलारनेवाली नहीं, कभी-कभी गालों पर तमाचे लगानेवाली होती हैं। फिर भी, उसकी लिखी रचनाओं को एक बार पढ़कर आप उसे कभी भूल नहीं सकते। वह आपके स्मृति-पटल पर सदा केलिए रह जाती हैं [33]

यद्यपि यह बात श्री नग्नमुनि के विषय में कही गयी है, प्रायः सभी दिगम्बर कवियों की रचनाओं केलिए लागू होती है। श्री गूरोव के मन्तव्य में दो बातें स्पष्ट हैं`क कथ्य सम्बन्धी ेर फिर कथ्य को पाठकों तक पहुँचाने की पद्धति से सम्बद्ध-दोनों ही के विषय में श्री गूरोव का कथन सौ फ़ी सदी सही लगता है।

12. **श्री चेकूरि रामारावः** उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद के भाषा-शास्त्र-विभाग के प्रोफ़ेसर श्री चेकूरि रामाराव के अनुसार दिगम्बर आन्दोलन एक ऐतिहासिक आवश्यकता के रूप में अपना कर्तव्य निभा

32) दे. तेलुगुलो कविता विप्लवाला स्वरूपं, अष्टम अध्याय पृ.-152
33) दे. कोय्यगुर्रं, 'ले. नग्नमुनि प्रस्तावना,' निकीता गूरोव

गया है। तेलुगु की कविता के इतिहास में अत्यन्त स्वलपावधि में (पाँच वर्ष भर में) साहित्य पर ऐसी प्रगाढ़ मुहर डाल सकनेवाला कोई दूसरा आन्दोलन दिखाई नहीं देता। कैलंडर-कविताएँ और प्रयोजन-कविताएँ लिखते रहनेवाले लेखकों, राजनैतिक आन्दोलन की निर्बलता के कारण निद्रालु अभ्युदय कवियों, वाक्यों के चमत्कारों से युक्त वचन-गीतों से सरकारी कवि-सम्मेलनों और आल इंडिया रेडियो व्दारा कानों में शोर मचानेवाले कवियों, थोड़ा-सा श्रृंगार और थोड़ा-सा अभ्युदय-दोनों का मिश्रण कर पत्र-पत्रिकाओं में धारावाहिक कविता प्रकाशित करनेवाले कवियों के अलावा आप क्या कह रहे हैं, खुद न जाननेवाले गड़बड़झाले में फँसे कवियों को अपने कोड़े-जैसे दिकों से मारकर दिगम्बर कविता ने काल को विचलित कर दिया है। विस्मृत सामाजिक प्रयोजन के लक्ष्य को पुनः प्रतिष्ठित किया। यह कोई आसान काम नहीं है। कथनी के अंदर की शक्ति के कारण ही यह सुसाध्य हो गया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्र प्रवृत्ति को भी इसने बल दिया है[34]

ऊपर की पंक्तियों में श्री चेकूरि रामाराव ने एक तरफ़ दिगम्बर कविता की पूर्ववर्ती काव्य-स्थिति पर संक्षिप्त किंतु जबरदस्त प्रकाश ड़ाला और दूसरी तरफ़ दिगम्बर कविता की विशिष्टता को स्पष्ट किया। जैसे समाज में, वैसे ही लेखक-वर्ग में भी, जिन्हें मेधावी वर्ग माना जाता है, जड़ता छा गयी थी, स्वार्थ घनीभूत होकर सामाजिक दायित्व को भुला कर अर्थकृते लेखन-कार्य चला रहे थे। अभ्युदय के नाम से लिखा जानेवाला सब कुछ कचरा था। ऐसे अवसर पर दिगम्बर कवियों ने बाण साधा।

13. **श्री बी. प्रसाद :** दिगम्बर कविता पर श्री बी. प्रसाद नामक एक सज्जन ने नागार्जुन विश्वविद्यालय से शोध-कार्य करके पी.हेच.डी.की उपाधि प्राप्त कर ली थी। बड़े खेद के साथ निवेदन करना पड़ता है कि उक्त शोध-प्रबन्ध के प्रकाशित रूप के अभाव में प्रस्तुत शोध-कर्ता उससे लाभान्वित होने से वंचित रह गया है।

14. **स्वयं दिगम्बर कवि :** दिगम्बर कवियों ने अपने तीनों संकलनों की कविताओं की प्रस्तावनाएँ लिखी उस-उस संकलन में, विशेषकर प्रथम संकलन में, उनकी कविताओं की उद्देशिका दी गयी थी जिसका पूरा पाठ अन्य दोनों संकलनों की प्रस्तावनाओं के साथ इस प्रबन्ध के

34) दे. कोय्यगुर्रं (ले. नग्नमुनि) प्रस्तावना (कोय्यगुर्रं महाकाव्यं-श्री चेकूरि रामाराव) पृ. viii-ix

तृतीय अध्याय में दिया गया है। यहाँ पर उनके संयु क्त वक्तव्यों की थोडी-सी चर्चा करना आवश्यक है। दिगम्बर सदी में अपने को पादार्पण करते हु ए घोषित करने वाले इन कवियों में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था से खीज है, उस व्यवस्था का बना रहना चाहकर उससे अपने स्वार्थ की पूर्ति करनेवालों से व्देष है, उस व्यवस्था के ठेकेदारों पर अपार क्रोध है और व्यवस्था-जन्य दुष्परिणामों का शिकार बननेवाली निरीह असहाय जनता पर अपार दया है। अपनी खीज, व्देष व क्रोध को उन उन व्यक्तियों पर उतारना तो सही बात है, परंतु असहाय जनाता को निर्वीर्य कहकर उसे नीचा दिखाना कहाँ तक न्यायसंगत है, यह विचारणीय विषय है। यों तो वर्तमान व्यवस्था इतनी शक्ति-संपन्न बन गयी है कि निहत्थे लोग उससे संघर्ष करके अपने अस्तित्व से ही हाथ धो बैठते। फिर विचारणीय दूसरी बात यह है कि संघर्ष केलिए समाज में तत्संबन्धी संगठन आवश्यक है। अपने छे की संख्या को सात तक बढ़ा न सकनेवाले ये दिगम्बर कवि ऐसे सामाजिक संघर्ष की आशा कैसे कर सकते? कम-से-कम दिगम्बर कवि-मंडली के रूप में भी अपने को संगठित करने से विमुख इनके मुँह से सामाजिक संघर्ष की बात अर्थहीन लगती है। व्यक्तियों के वैचारिक संगठन से ही सामाजिक संघर्ष की आधार भूमि बन जाती है। इस दृष्टि से दिगम्बर कवियों की उद्देशिका ईमानदारी से खाली है। इसका यही सबूत है कि वे स्वयं दो वर्गों में बँट गये। एक मृत है और शेष पाँच भी संगठित नहीं रह सके, तो उनका यह कथन "आपका जीवन आपका नहीं। आपका नकाब-अभिनय का जीवन है!"[35] क्या, अव पाठक कह नहीं सकते कि छे दिगम्बर कवियों ने जो यह संयुक्त आक्षेप जनता (पाठकों) पर किया था, वह गलत था, अन्यायपूर्ण अभियोग था क्योंकि छे की बात एक नहीं थी, वे एककंठ नहीं थे क्योंकि वे एकमन नहीं थे। यदि वे यह तर्क पेश करना चाहेंगे कि बदलती हुई परिस्थितियों में उनमें व्यक्ति-विकास के परिणाम स्वरूप उनका यह अलगाव अवश्यंभावी हो गया, तब पाठक एवं जनता भी वही तर्क प्रस्तुत कर सकेंगे कि तत्कालीन परिस्थितियों ने उनके तत्कालीन व्यक्तित्व को यों ढाँचे में ढाले रखा।

एक और विचारणीय बात यह है कि वे यह दावा करते हैं-- हम अपने अंदर के असली रूप का दर्शन करते हुए अपने चारों और

35) दि1 पृ.-4

के लोगों से प्रेम करते हुए, उनसे यह कहना चाहते हैं कि वे भी यही प्रयत्न करें[36]

इन पंक्तियों की संक्षिप्त व्याख्या यही है कि उन छे व्यक्तियों को छोड़कर शेष जगत में कोई और ऐसा नहीं कर रहा है। प्रेम दया जानता है, क्षमा जानता है और अन्यों को विपद-ग्रस्त देख हाथ बढाना जानता है न कि गालियाँ बकना।

उनका यह भी दावा है कि वे पुस्तकों में से बातें करना नहीं जानते, बल्कि अनुभवों में से बोलना चाहते हैं। इसलिए शंकराचार्य ने यों कहा, जानपाल सार्त्रे ने यों कहा-कहना नहीं चाहते।[37]

यह दावा अहंता-पूर्ण है और गलतफ़हमी पर आधारित है। एक तरह से इसमें स्वखंडन है। क्योंकि इसके अनुसार पाठकों अथवा समाज में से कोई भी किसी के वचनों का उद्धरण नहीं दे सकता, उसे खुद के ही अनुभवों से सोचना-बोलना होगा। हम भी यों कह नहीं सकेंगे कि नग्नमुनि ने इस तरह कहा या 'निखिलेश्वर ने यों कहा।' क्या वे यह मानेंगे?

अपने द्वितीय संकलन में ये स्वतंत्र मानव के आविर्भाव की कामना करते हैं। आन्ध्र प्रदेश को जड़ता-से भरा हुआ कहते हुए, कोढ़ की व्यवस्था से रोगप्राय बताकर, उससे मुक्त होने की चेतावनी देते हैं। तीस कविताओंवाले इस संकलन के आवरण पृष्ठ के पीछे वर्तमान (सन 1966) को दिगम्बर सदी कहते हुए यों नया कालमान देते हैं कि उन छहों कवियों के नाम पर छे वर्ष हैं, फिर आशा, तपन, अश्रु, मदिरा, विरह एवं विषाद नामक ऋतुएँ हैं और स्नेह, विश्रृंखलता, क्रांति, सृजन, विकास एवं अनन्तता नामक सप्ताह हैं।[38]

प्रथम संकलन की कविताओं से प्रतिस्पन्दित जनता में प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इन कवियों में अहंता का अतिरेक हो गया। अपने तृतीय संकलन में भी उसी कालमान को दुहराते हुए तेलुगुवालों को बेशर्म और हिजड़ा कहकर, उन्हें जगाकर अपनी सदी में पदार्पण करने का निमंत्रण देते हैं। यहाँ पर भी विसंगति यह है कि वे कौन हैं? यदि वे अपने को आँध्र के नहीं मानते, तो आन्ध्र-प्रान्तीय होने मात्र से अन्तर्राष्ट्रीय

36) -- वही -- पृ.-5
37) दि1 पृ.-5
38) दि1 पृ.-64

दृष्टि रखनवालों के विषय में ये गालियाँ कहाँ तक न्याय संगत होंगी? वस्तुतः किसी दूसरे को गाली देना क्या हमारी अपनी बड़ाई का प्रमाण है?

सारांश यह कि जहाँ तक तेलुगु की दिगम्बर कविता का प्रस्ताव है, वह गाली-गलौज़ की कविता है, अश्लीलता की कविता हैं उसके कवि अहंता से अवश्य आविष्ट रहे, उनके कथनों में विसंगतियाँ हैं एवं उनकी कथनी का करनी से सामंजस्य नहीं है। दिगम्बर कविता का आन्दोलन नहीं चला, केवल उन्हीं कवियों में मानसिक आन्दोलन था। ईर्ष्या-व्देष के पीछे मानवता के प्रति दया की अवश्य कहीं-कहीं झलक मिल जाती है, **कहने की पद्धति अथवा भाषा-शैली का वैचित्र्य ही तेलुगु की दिगम्बर कविता का आकर्षण है,** प्राण है। मानवता के मूल्यों पर कवियों की क्रोधाग्नि की परत है। तब भी हम मान सकेंगे कि यह कविता की एक विशिष्ट प्रक्रिया है जिसका मूल्य तेलुगु काव्य-साहित्य के इतिहास में अवश्य चिरस्थायी रहेगा।

अष्टम अध्याय

उपसंहार :

हिन्दी की नई कविता और तेलुगु की दिगम्बर कविता का पृथक एवं तुलनात्मक रूप से अध्ययन करने के पश्चात् कुछ और बातों की चर्चा शेष रह जाती है। चर्चा करने योग्य इन बातों को हम इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं।

1. नयी कविता की हिन्दी साहित्य को क्या देन है? विशेषतः हिन्दी के काव्य-साहित्य को उसकी क्या देन है? नये कवियों ने अपने और अपनी कविता के विषय में जो कुछ स्वयं उद्घाटित किया था, उसका उनकी कविताओं में कहाँ तक अन्वय हुआ है? फिर सामाजिकता के ध्यान से नयी कविता ने क्या साधा है? चूँकि आधुनिक युग जो सामाजिक चेतना का युग है, उससे पृथक करके साहित्य को परखा ही नहीं जा सकता, दूसरे शब्दों में, अपने शोध-प्रबंध के कथ्य के विश्लेषण के रूप में हम लेखक की कथनी और करनी के बीच के सामजस्य की चर्चा करना चाहते हैं, फिर सामाजिक उत्तरदायित्व की पूर्ति में उसकी सफ़लता का परीक्षण भी करना चाहते हैं। **साहित्य की प्रयोजनशीलता सामाजिक उत्थान है।** इसी दृष्टि से विवेच्य वस्तु का मूल्यांकन होना समीचीन है।

2. इसी प्रकार, इतनी विवादास्पद-इतनों के क्रोध का लक्ष्य-यह दिगम्बर कविता तेलुगु के काव्य-साहित्य में किस प्रकार विशिष्ट है? उसकी तेलुगु-साहित्य को क्या देन है? दिगम्बर कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से समाज का कहाँ तक विकास किया है? यदि किया है, तो उनकी सफ़लता का प्रतिशत कैसे आकौ जाना चाहिये? काव्य-साहित्य के क्षेत्र में क्या, उनके दावे का दिगम्बर-युग सचमुच चला था? यदि चला था, तो उसकी समयावधि, क्षेत्रावधि एवं संख्या की अवधि का प्रसार क्या है? क्या, उनके अपने आशयों के प्रतिपादन के अनुसार जनता में क्रांति-मूलक स्पन्दन की उद्भावना हो चुकी है?अगर नहीं, तो उसके कौन-कौन-से कारण उत्तरदायी हैं?-कारण इन कवियों की विचारधारा है अथवा उनकी शैली में प्रेषणीयता की कोई कमी है? यदि जनता की चित्तवृत्ति में वांछित परिवर्तन आ चुका है, तो क्या उसके और कोई अन्य कारण भी हैं?

3. विवेच्य दोनों साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन के व्दारा उपलब्धियाँ क्या हैं? भविष्य में उनकी उपयोगिता क्या हो सकती है? प्रस्तुत शोधकर्ता अपने इस प्रबंध में किस नयेपन एवं प्रयोजन का दावा कर सकता है?

उपर्युक्त तीनों प्रकार के विभिन्न प्रश्नों की, बहुत ही संक्षेप में, निम्नलिखित पंक्तियों में चर्चा करने का प्रयास किया जाता हैं --

लक्ष्य-बद्धता लेखक केलिये अनि वार्य है। लक्ष्य अथवा उद्देश्य की एक बार स्वयं लेखकों ने पाठकों के आगे घोषणा कर दी, तो यह उनका कर्तव्य है कि वे उस से न ड़िग जावें।

लिखने का मतलब बोलना ही है। इसका उद्देश्य बाह्य परिस्थिति या परिस्थितियों को बदलनामात्र होता है। अपने ही लिये तो न कोई बोलता न ही लिखता है।

लेखन-क्रम साहित्य के सृजन में एक अंश मात्र है, उसका संपूरक अंश पठन है। साहित्य की प्रगति अथवा तिरोगति के कारण लेखक और पाठक, दोनों भी होते हैं। हम इस बात के कायल हैं कि सिनेमा के निर्माता दर्शकों की रुचि को ध्यान में रखते हैं और दर्शक निर्माता से प्रदत्त रुचिकर विषयों की पुनरुक्ति चाहते हैं। किसी काव्य-प्रक्रिया की गतिशीलता अथवा उसका अवबोध भी इसी हिसाब से चला करता है। **चलन-चित्र में बोलना और साहित्य में लिखना दोनों बराबर हैं।**

रचनाएँ दो प्रकार की होती हैं-- अच्छी या बुरी, बुरी रचनाएँ पाठक में या तो उव्देग भरती हैं, उसे भड़काती हैं और समाज में अव्यवस्था की नीवं डालती हैं अथवा पाठकों को सुला देती हैं। **अच्छी रचनाएँ मानव के स्वातन्त्र्य की रक्षा करने तथा समाज के व्यक्ति-व्यक्ति में मानवता की भावना भरने का स्तुत्य प्रयास करती हैं।**

लेखक अपने समय के लोगों को उद्दिष्ट करके लिखता है, न कि अतीत के अथवा भविष्य के लोगों को।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही शोध-कार्य को चलाया गया है। हम प्रथम अध्याय में इसका आभास पा चुके थे कि नयी कविता, अपनी आप में कोई नयी विधा नहीं है। उसके लेखक स्वयं मान चुके थे कि वे राही नहीं, राहों के अपी अन्वेषी हैं। इस अन्वेषण में उन लेखकों के हाथ क्या लग चुका है और साथ-साथ पाठकों के दिमाग और दिल को क्या मिला है, इसकी उन्होंने आगे कहीं चर्चा नहीं की, पाठकों के व्दारा इस कविता के स्वागत के कारण उसमें स्थित सामाग्री

भी रह सकती है, उसके आविर्भाव के उल्लेख का चमत्कार भी हो सकता है अथवा उसका नामकरण भी हो सकता है। वस्तु या सामग्री मात्र कविता का मूल्य नहीं है, भाषा-सैली भी एक विशेषता मात्र होती है, मूल्य नहीं; वेसे ही नामकरण के बारे में भी मानना चाहिये। जैसे हमने देखा है, वीरगाथाकाल अथवा आदिकाल से लेकर आज तक की कविता उसके पूर्व की कविता की अपेक्षा अपने में कोई न कोई खासियत निभाती ही आयी है। यह बात सभी भाषाओं के सम्बन्ध में सामान्य है। ध्यान देने की दूसरी बात एक यह है कि नये कवि स्वयं मान युके थे कि प्रयोक्ता भी वे ही रहे और जज भी उन्हीं को रहना पड़ा। उनके अनुसार उनका न्याय-निर्णय पाठकों को नहीं करना चाहिए। हर एक को अपनी चीज़ अच्छी लगती है। लेखक को अपनी रचना सर्वोत्तम महसूस होती है। पाठकों के दिमाग में जाकर विचारों-अनुभूतियों की टीका-टिप्पणी उनके मुहँ से जब तक नहीं होती, तब तक वह हेतुबद्ध आलोचना नहीं कहलाती। हर एक लेखक अपनी कृति के बारे में कहने लग जाय, तो आलोचक की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। प्रायः नयी कविता की समग्र रूप से आलोचना आज तक नहीं निकली है, तार सप्तकों की संख्या आगे भी आती रहेगी पाठक उनमें नयेपन की आशा करते ही रहेंगे, पढ़ते भी रहेंगे, सार-सर्वस्व को स्वीकार भी करेंगे और निर्मूल्यता पर झुँझुलायेंगे भी।

नयी कविता के आविर्भाव एवं चलन से लेकर, क्या उससे भिन्न और किसी प्रकार की कविता हिन्दी साहित्य में आज तक नहीं आयी है? इन इक्कीसों कवियों से भिन्न अन्य कवियों ने क्या नया कुछ संसार को नहीं दिया है? उनकी कविताओं में नयापन नहीं रहा है? क्या नयेपन का भी वर्गीकरण किया जा सकता है? अगर किया जा सकता है तो तद्भिन्न कविताओं की नयी विशेषताएँ क्या हैं? ये सब विचारणीय विषय हैं।

4. अतः कविता के दोनों प्रचलित लक्ष्यों में-वैयक्तिक आनन्द का अनुभव-चाहे वह विचारात्मकता का हो अथवा भावात्मकतायुक्त, अर्थात, मन को सचेत करने की प्रवृत्तिवाला हो अथवा हृदयगत भावों का शमन करनेवाला हो या सामाजिक प्रयोजन के उद्देश्य से विरचित हुई हो, उसके मूल्य का कभी निराकरण नहीं किया जा सकता है। 'कला कला केलिए' कहने के पीछे समाज-सुधारवादियों व्दारा सामाजिकता के अभाव का आरोप लगाया गया है। कला- वादियों ने व्यक्ति-आनंद को अपना लक्ष्य निर्धारित

किया था। व्यक्ति समाज का ही एक अंग है। व्यक्ति का आनन्द समाज के एक अंश का ही आनन्द है। यों विचार करें, तो कलावादी भी समाजवादी अथवा व्यवहारवादी ही ठहरते हैं।

5. भावात्मक शमन के सम्बन्ध में चर्चा करते समय एक प्रश्न उठता है। दलितों-पीड़ितों, भूखों-भिखमँगों, किसानों-मजदूरों इत्यादि के प्रति व्यक्त सहानु भूति का क्या मूल्य होता है? यह किस प्रकार की सामाजिकता का वाहक होता है? प्रगतिवादी कविता के विषय में उठाये जानेवाले इस प्रश्न का सीधा उत्तर यही है जो कलावादी की कोटि की कविता के सम्बन्ध में दिया जा चुका है। उनसे सहानुभूति का प्रकटीकरण एवं उनके प्रति सामाजिकों में कर्तव्य की चेतना की प्रेरणा, क्या सामाजिक दायित्व निभाना नहीं होता? इस दृष्टि से इसे आगे की सीढ़ी ही समझना चाहिये। इस अवसर पर हम भाषा-शैली के बारे में कुछ भी नहीं कहेंगे क्योंकि भाषाई विशेषता सामाजिकता या असामाजिकता के अन्तर्गत नहीं आती जब तक वह प्रेषणीय रहा करे। नयी कविता के अन्तर्गत निहित सामग्री में सामाजिकता का हमने चतुर्थ अध्याय में विस्तृत रूप से वर्णन किया है। किन्तु यह धारा भविष्य में किस दिशा में चलेगी और किस प्रकार गतिशील रहेगी, इसे देखने केलिए अभी हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

6. इसी प्रकार अनेक विवादास्पद आक्षेपों के शिकार दिगम्बर कवियों ने अपने लक्ष्यों का जनता में प्रचार करके अपनी कविताओं व्दारा उसे सचेत करना चाहा। अब प्रश्न यह उठता है कि वे अपने इस यत्न में कहाँ तक सफ़ल हुए हैं। अर्थात जनता कहाँ तक चेत गयी है? जैसे नयी कविता या दिगम्बर कविता की उसके पूर्व की कविता से तुलना करके इसकी देन में नयेपन का हम मूल्यांकन-निर्धारण की जनता और उनके पठन के पश्चात् की उसी जनता की चित्तवृत्ति में अन्तर का निर्धारण करना सच्चे आलोचक का कर्तव्य है। कहते हैं कि जब सिसिरो भाषण देता था, तो श्रोता लोग आपस में कहते थे-वाह वाह सिसिरो महाशय क्या ही अच्छा बोलते हैं! लेकिन जब डेमोस्थनीज़ भाषण देता था, तो श्रोता अपस में कह उठते थे-चलिये, हम सब युद्ध भूमि में मार्च कर लें। इसी प्रकार क्या, दिगम्बर कविता के पाठकों को क्रांति एवं बगावत की ठानने से आविष्ट होकर वर्तमान व्यवस्था के ठेकेदारों से सामूहिक संघर्ष करने को सन्नद्ध हो जाना नहीं चाहिये था? श्री अंम्बेद्कर, ने नारा दिया था कि 'जाग उठो, संगठित हो जाओ और संधर्ष करो' जाग पड़ना तो अपेक्षित ही है, संगठित हो जाना भी आवश्यक है, लेकिन लड़ना

कितनी व कैसी बुद्धिमानी की बात है, यब सोचना चाहिए। किससे लड़ना चाहिये? जाग पड़ने का साधन क्या है? और कहाँ पर है? वह साहित्य कितनों की पहुँच में है और ये लड़ने के साधन भी-किताबें-कितनों के पास में हैं? उस साहित्य के पठन का, इस व्यस्ततामय जीवन में, कितनों के पास समय है? सुबहो-शाम अपने पेट की खातिर हाथ-पाँव चलाते-चलाते शरीर को जर्जर से जर्जरतर बना लेनेवाले **निरक्षर मज़दूर व श्रमिकों की ठठरियाँ क्या पढ़ लेंगी।** ऐसी दशा में **ये जागेंगे कैसे।** चेतेंगे कैसे? फिर सरकार ने इन लेखकों पर निगरानी रखी थी, श्री चेरबंडराजु और श्री वरवरराव सालों जेल में रखे गये थे। ऐसे त्यागशील उच्य कोटि के साहित्यकार निरीह मदमस्त जनता को साथ में लेकर लूट-खसोटखोर शासकों-शोषण-वर्ग से कब और कैसे लड़े? मेधावी वर्ग के लोगों से इन कवियों की ओर दो तीन सहानुभूतिपूर्ण वाक्य उद्धाटित हुये थे, फिर समाचार पत्रों में किसी सभा के एक दसवें भाग के स्तम्भ में उनकी प्रशंसा या उनसे सहानुभ्ति के शब्द छपे थे कि अमुक को जेल से रिहा करने की माँग का प्रस्ताव किया गया था। इन सब से क्या हुआ। स्पष्ट है कि **दिगम्बर कविता अपने लक्ष्य की पूर्ति में पूर्णतः असफल ही रही।** एक तो वे कवि छे ही रहे और आज बँट गये, दूसरे उनके पीछे-पीछे कोई नहीं चले, यही बात नहीं, खुद उन्होंने अपनी संख्या को सीमित रख लिया था। ऐसी स्थिति में वे लोगों को जागृत क्या करते? और संगठित भी क्या करते? स्पष्ट है कि दिगम्बर कविता एक तरफ़ लोगों में अपने ऊपर किये जानेवाले अत्याचारों के विरुद्ध उनमें निद्राण क्रोधाग्नि के प्रज्वलन को भड़कावा देती है और वर्तमान समाज में फैली गन्दगी की दुर्गन्धि से दम घुटनेवाले व्यथितों को दूसरी तरफ़ आश्वासन भी देती है। परस्पर-विरोधी इन कर्मों का वाहक यह कविता इसी कारण से किसी आन्दोलन का साधन न बन सकी।

हम आज भी अवतारों में विश्वास करनेवाले अकर्मण्य हैं। हम चाहते हैं कि कोई और हमारे उद्धार केलिये जन्म ले ले और लड़ मरे। ऐसी अकर्मण्यता से भरे समाज को कौन समुन्नत कर सकेगा? वह भी चंद पंक्तिोवाले पन्नों को काला बनाने केलिये चन्द बूँदों की स्याही को साधन बनाकर? **जब हम कर्मठ बनेंगे, हेतुबद्ध विचारवान बनेंगे और मानवतावादी बनेंगे, तभी योग्य रचनाओं का हम पर क्रियात्मक प्रभाव रहेगा।**

7. विवेच्य दोनों कविताओं की उभय सामान्य प्रवृत्तियों से हमें यह अवगत हो जाता है कि **शारीरिक रूप से दूर रह कर भी देश के लोग मानसिक एवं हार्दिक रुप से एक हैं,** वेष-धारण, रहन-सहन एवं आचार-प्रथाएँ भिन्न होकर भारत के सभी प्रांतों के लोगों की **विचारने की पद्धति एक समान है,** जहाँ कही थोड़ा-सा अन्तर दिख पड़े उसे वहाँ का परिस्थिति-विशेष-जन्य मात्र समझना चाहिये। सुख-दुखों की भिन्नताएँ व स्तरों की गाढ़ता या छिछलापन उनकी अनुभूति के क्रम में कोई अवरोध नहीं डालते। एक वाक्य में, भाषाई भिन्नता एक ही देश में रहनेवाली जनता को विचारात्मक अथवा आत्मिक रूप से कदापि पृथक नहीं करती।

उक्त तथ्य-निरूपण का एक मात्र माध्यम साहित्य है। प्रस्तुत शोध-कार्य के पूर्व अनेक विव्दानों ने हिन्दी हिन्दीतर भाषाओं के भिन्न-भिन्न कवियों अथवा विधाओं या युगों इत्यादि की तुलना का शोध-कार्य करके उक्त तथ्यों को प्रमाणित कर ही दिया था। मुझे लगा कि मैं भी अब तक अस्पृष्ट अद्यतन अथवा नव्यतम कोई विधा क्यों न लूँ? क्यों न अनुसन्धान का कार्य चलाऊँ और शोध-साहित्य की श्रीवृद्धि में सेवा का एक फूल क्यों न चढाऊँ? यह विचार उठते ही मुझे हिन्दी की नयी कविता सूझी और युगपत तेलगु की दिगंबर कविता भी मन में आ गयी। नयी कविता का तो एम.ए.में हल्का अध्ययन किया था और साहित्य-प्रेमी होने के नाते तेलुगु की दिगंबर कविता का भी पठन-अध्ययन करता रहा। मित्रों एवं विव्दान गुरुजनों से परामर्श लिया, तो उन्होंने मेरी पीठ ठोंकी, यह शोध-प्रबंध उन्हीं गुरुजनों के परामर्श का फल है जो योग्य निर्देशिका के पथ-प्रदर्शन में निभाया गया है।

अन्ततः इतना भर निवेदन कर लूँ कि मुझे उक्त तथ्य-निरूपण का परामर्श देनेवाले गुरुजनों तथा निरन्तर पथ-प्रदर्शन का सहारा देनेवाली डॉ. योगोश्वरी शास्त्री को ही प्रस्तुत प्रबंध की उपलब्धियों का श्रेय मिलेगा, मैं. तो केवल एक अकिंचन साधन मात्र हूँ, अस्तु।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची
परिशिष्टः

हिन्दी :

ग्रंथ का नाम		लेखक/संपादक/प्रकाशक सर्वश्री
अकाल में सारास	–	केदारनाथ सिंह
अज्ञेयः सृजन और संघर्ष	–	डॉ. राम कमल राय
अनामिका	–	निराला
अनुसंधान की प्रक्रिया	–	डॉ. सावित्री सिन्हा
अपने सामने	–	कुँवर नारायण
अपरा	–	निराला
अहेरी	–	अज्ञेय
आँसू	–	जयशंकर प्रसाद
आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना	–	डॉ. रामविलासशर्मा
आज के लोक प्रिय कवि अज्ञेय	–	दुर्गाशंकर मिक्ष
आत्मनेपद	–	अज्ञेय
आत्महत्या के विरुद्ध	–	रधुवीर सहाय
आधुनिक समीक्षा	–	डॉ. देवराज
आलोचना के सिद्धान्त	–	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
आलोचना के सिद्धान्त	–	शिवदानसिंह चौहान
आस्था और सौंदर्य	–	डॉ. रामविलास शर्मा
इतिहास	–	श्री गिरिजाकुमार माथुर
इतिहास और आलोचना	–	डॉ. नामवर सिंह
कविता के नये प्रतिमान	–	डॉ. नामवर सिंह
कवि-दृष्टि	–	अज्ञेय
काव्य-प्रकाश	–	आचार्य मम्मट

काव्य-यथार्थ और प्रगति	-	डॉ.रांगेयराघव
केशव की काव्य कला	-	पं कृष्णशंकर शुक्ल
खूंटियों टँगे लोग	-	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
चयनिका	-	रामानंद शर्मा
चिंता	-	अज्ञेय
तारसप्तक	-	अज्ञेय
तीसरा सप्तक	-	अज्ञेय
त्रिशंकु	-	अज्ञेय
दूसरा सप्तक	-	अज्ञेय
नन्ददुलारे वाजपेयी: स्वच्छन्दतावादी आलोचना के सन्दर्भ में	-	डॉ. योगेश्वरी शास्त्री
नया सप्तक	-	राकेशगुप्त और ऋषिकुमार चतुर्वेदी
कविता	-	पद्मधर
नयी कविताएँ, एक साक्ष्य	-	डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
नयी कविता का आत्मसंघर्ष	-	गाजानन माधव मुक्तिबोध
नयी कविता और अस्तित्ववाद	-	डॉ. रामविलास शर्मा
नयी कविता: नये कवि	-	विश्वम्भर मानव
नयी कविता: सीमाएँ और सम्भावनाएँ	-	गिरिजा कुमार माथुर
नये मान-पुराने प्रतिमान	-	डॉ. रामेश्वर शर्मा
नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र	-	गजानन माधव मुक्तिबोध
नव्य पथ में नग्नता तक	-	डी.वी. रामकृष्णराव
नाश निर्माण	-	गिरिजाकुमार माथुर
पाया पत्र तुम्हारा	-	नेमिचन्द्र जैन
प्रगतिवाद की रूप रेखा	-	मन्मथनाथ गुप्त
प्रगतिवादी समीक्षा	-	रामप्रसाद त्रिवेदी

भग्नदूत	-	अज्ञेय
मंजीर	-	गिरिजाकुमार माथुर
महाकवि सुब्रह्मण्य भारती एवं महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन	-	डॉ.पी.जयरामन
मानव मूल्य और साहित्य	-	डॉ. धर्मवीर भारती
मानव - समाज	-	राहुल सांकृत्यायन
मार्क्स और पिछडे हुए समाज	-	डॉ. रामविलास शार्मा
मान्यता	-	डॉ. रामेश्वर शर्मा
युगान्त	-	पन्त
रसगंगाधर	-	जगन्नाथ पंडित
राष्ट्र - भाषा की समस्या	-	डॉ. रामविलास शर्मा
राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध	-	नन्द दुलारे वाजपेयी
राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य	-	डॉ. रामेश्वर शर्मा
लोक जीवन और साहित्य	-	डॉ. रामविलास शर्मा
लोग भूल गये हैं	-	रघुवीर सहाय
संसद से सड़क तक	-	धूमिल
स.ही.वा अज्ञेय	-	विद्यानिवास मिश्र
सन सत्तावन की राज्य क्रान्ति और मार्क्सवाद	-	डॉ. रामविलास शर्मा
साहित्य का मर्म	-	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
साहित्यः शोधसमीक्षा	-	डॉ. विनय मोहन शर्मा
साहित्य - सहचर	-	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
स्थापना	-	डॉ. रामेश्वर शर्मा
हरी घास पर क्षणभर	-	अज्ञेय
हिन्दी की सैद्धांतिक समीक्षा	-	राजनाथ शर्मा

हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि	-	डॉ. द्वारकाप्रसाद सक्सेना
हिन्दी के आलोचक	-	शचीरानी गुर्टू
हिन्दी साहित्यः एक आधुनक परिदृश्य	-	अज्ञेय
हिन्दी साहित्य का इतिहास	-	पं. रामचंद्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास	-	राजनाथ शर्मा
हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास भाग - 1	-	डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त
हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास भागा - 2	-	डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त
हिन्दी साहित्य की भूमिका	-	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य के प्रमुख वाद	-	राजनाथ शर्मा
हिन्दी साहित्य-दर्पण	-	(अनुः सत्यव्रतसिंह)
हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी	-	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।

तेलुगु

अग्निशिखलु	-	महास्वप्न
अमृतं कुरिसिन रात्रि	-	बालगंगाधर तिलक
ईनाटिकी दिगंबरकवुलु [कविता - संकलन]	-	निखिलेश्वर
उदयिंचनि उदयालु	-	नग्नमुनि
उद्यम दर्शनमु	-	डॉ. मुदिगोंड शिवप्रसाद
कविता संकलनालु	-	चेरबंडराजु
कांति युद्धम	-	चेरबंडराजु
कोय्य गुर्रं	-	नग्न मुनि

गम्यम	–	चेरबंडराजु
गोडलवेनुक	–	निखिलेश्वर
तूरूपु गालि	–	नग्नमुनि
तेलुगुलो विप्लवाला स्वरूपं	–	वेल्चेरु नारायण एव
दिक्सूचि	–	चेरबंडराजु
दिगंबरकवुलुः प्रथम संकलन	–	संयुक्त संकलन
दिगंबर कवुलु – द्वितीय संकलन	–	संयुक्त संकलन
दिगंबरकवुलु–तृतीय संकलन	–	संयुक्त संकलन
ना जीवित रेखलु [मेरी जीवन–रेखाएँ]	–	चेरबंडराजु
पल्लवि	–	चेरबंडाजु
मंचु जडुलु	–	महा स्वप्न
मंडुतुन्नतरमु	–	निखिलेश्वर
महाप्रस्थान	–	श्री श्री
मुट्टडि	–	चेरबंडराजु
रा	–	भैरवय्या
विषाद भैरवम [कविता संकलन]	–	भैरवय्या
स्वर्णधूलि	–	महास्वप्न

अंग्रेजी

An Introduction to the Study of Literature	-	William Henry Hudson
Heritage of Symbolism	-	Sri C.M. Bawra
The Influence of English Poetry on Modern Hindi Poetry [1900-1940]	-	Dr. Urmila Verma

पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दी :

आलोचना अंक
[जुलाई-सितंबर 87] - सं:नामवरसिंह

आलोचना अंक
[जुलाई-सितंबर 89 के अंक] - नामवरसिंह

जनवरी-मार्च 1990 - सं: नामवरसिंह

कल्पना:काव्य विम्ब:
एक समीक्षा - फरवरी, 1968

दिनमान - सित्तंबर, 76

धर्मयुग (कविता और
छन्दो बद्धता) - डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
3,मई 1964

धर्मयुग,उमई, 1964
(कविता और छन्दोबद्धता) - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

धर्मयुग, 6,13,20, आगस्त
1967 - वाजपेयी, नन्ददुलारे
धर्मयुग, 15, जुलाई 1976

नयी कविता अंक - 4,5,6,8 सं.डॉ जगदीशगुप्त एवं
विजयदेवनारायण साही

नयी कविता एक पुनरीक्षण
(धर्मयुग,6,अगस्त - 1967) - नन्द दुलारे वाजपेयी।

साहित्य - सन्देश फाइल, 1954 - 55

तेलुगु

विप्लव कवित्वमे निजमैन कवित्वं (क्रान्तिकारी कविता ही सच्ची कविता है	–	"उदयं" तेलुगु दैनिक 4, जून 89
चेरबंडराजुगुरिंचि (वरवरराव)	–	'उदयं' तेलुगु दैनिक, 2-4-89
तिरूगुबाटु नुंचि विप्लवानिकि दिगंबर कवुलु	–	'उदयं' दैनिक 29-4-90
[विद्रोह से क्रांति की ओर] निर्मित्	–	निखिलेश्वर ('आध्र प्रभा' दैनिक 27-8-89)